BEESVIN SHATABDI KE ANTIM DASHAK KE HINDI UPANYASON MEIN SHRAMIK JEEVAN

A Thesis submitted during 2012 to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the award of a Ph.D. degree in Department of Hindi,
School of Humanities

By

NAGINA BANO
07HHPH06

2012

Department of Hindi
School of Humanities

University of Hyderabad
(P.o) Central University,
Prof.C.R.Rao Road
Gachibowli
Hyderabad-500 046
Andhra Pradesh
INDIA.

C E R T I F I C A T E

This is to certify that the thesis entitled **"Beesvin Shatabdi ke Antim Dashak ke Hindi Upanyason mein Shramik Jeevan** (बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन) submitted by **Nagina Bano** bearing Reg. No. **07HHPH06** in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by her under my supervision and guidance.

The thesis has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of the Supervisor

Head of the Department

Dean of the School

DECLARATION

I, **NAGINA BANO**, hereby declare that this thesis entitled **“Beesvin Shatabdi ke Antim Dashak ke Hindi Upanyason mein Shramik Jeevan” (बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन)** submitted by me under the guidance and supervision of **Prof. Noorjahan Begum** is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Name: **NAGINA BANO**

(Signature of the Student)

Regd. No. **07HHPH06**

Date:

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना *I-IV*

प्रथम अध्याय *1-63*
श्रमिक जीवन : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप और इतिहास

1. श्रमिक जीवन :अर्थ और परिभाषा
2. श्रमिक जीवन का स्वरूप
   - 2.1 कम मजदूरी
   - 2.2 आवास की समस्या
   - 2.3 बेरोजगारी की समस्या
   - 2.4 ऋणग्रस्तता की समस्या
   - 2.5 व्यक्तिगत समस्याएँ
   - 2.6 प्रवास की समस्याएँ
   - 2.7 भर्ती की समस्या
   - 2.8 श्रमिक संगठनों का अभाव
3. भारत में पूँजीवाद का उदय और श्रमिक जीवन
   - 3.1 आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था में असंतुलन
   - 3.2 पूँजीवाद का प्रवेश
   - 3.3 उद्योगों की स्थापना और श्रमिक जीवन
4. श्रमिक आंदोलन का सूत्रपात
   - 4.1 श्रमिक संगठनों की स्थापना और विकास
   - 4.2 मार्क्सवादी विचारों का प्रवेश और श्रमिक जीवन
   - 4.3 हिंदी साहित्य और मार्क्सवाद
5. बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के उपन्यास : एक परिचय

द्वितीय अध्याय 64-134

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : शोषण व संघर्ष

1. पूँजीपतियों के शोषण का वीभत्स-रूप

   1.1 अमानवीय व्यवहार

   1.2 स्वार्थ की प्राथमिकता

   1.3 लूटपाट और दहशत

   1.4 बेईमानी और ईर्ष्या

   1.5 दिखावा और ढोंग

   1.6 बिचौलियों की भूमिका

2. श्रमिकों का संघर्ष

   2.1 पिछड़ापन और आत्मपीड़ा

   2.2 विवशता

   2.3 शोषण के विरुद्ध चेतना

   2.4 एकता और जागरण

   2.5 समस्याओं की प्रस्तुति

   2.6 आक्रोश

   2.7 विरोध एवं विद्रोह

   2.8 श्रमिकों का संगठित-रूप

   2.9 हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक मार्ग

3. श्रमिक जीवन और जीविका

तृतीय अध्याय 135-194

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : संगठन की भूमिका

1. संगठन का ज्ञान और निर्माण

2. संगठन-शक्ति और श्रमिक हड़ताल

3. संगठन का विरोध

4. संगठन का नकारात्मक पक्ष

5. प्रभावी मजदूर नेता

चतुर्थ अध्याय *195-256*

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : विविध परिस्थितियाँ

1. सामाजिक परिस्थितियाँ

1.1 आपसी संबंध

1.2 शहर का डर

1.3 विविध सामाजिक कार्यक्रम

1.4 समाज कल्याण की भावना

1.5 सरकारी उपेक्षाएँ

2. आर्थिक परिस्थितियाँ

2.1 गरीबी

2.2 मौलिक आवश्यकताओं का अभाव

2.3 इच्छाओं का दमन

2.4 वेतन जनित समस्याएँ

2.5 अर्थाभाव व मूल्य-विघटन

3. राजनैतिक परिस्थितियाँ

3.1 राजनीति और श्रमिक

3.2 राजनैतिक शोषण और श्रमिक

3.3 वोट

4. धार्मिक परिस्थितियाँ

4.1 धार्मिक भेदभाव

4.2 भगवान और भाग्य

4.3 धार्मिक समता का प्रयास

पंचम अध्याय *257-301*

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : विविध परिप्रेक्ष्य

1. स्त्री-श्रमिक

    1.1 कार्यक्षेत्र में शोषण

    1.2 व्यक्तिगत संघर्ष

    1.3 श्रमिक संगठन और स्त्री-श्रमिकाएँ

    1.4 स्त्री श्रमिकाओं का साहस

2. बाल श्रमिक

3. दलित और आदिवासी श्रमिक

4. भूमंडलीकरण और श्रमिक

5. विस्थापन और श्रमिक जीवन

षष्ठ अध्याय *302-339*

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : सांस्कृतिक संदर्भ और भाषा

1. त्यौहार और उत्सव

2. नृत्य-संगीत

3. रहन-सहन

4. अंधविश्वास

5. खान-पान

6. श्रमिकों की भाषा

    6.1 भाषा और मनोभाव

    6.2 श्रमिकों के गीत की भाषा

    6.3 लोकोक्तियाँ व मुहावरे

उपसंहार *340-350*

संदर्भ ग्रंथ सूची *351-361*

प्रस्तावना

व्यक्ति के जीवन के अनुभव उन घटनाओं से होते हैं जो उसका परिवेश उसे प्रदान करता है तथा उन भावनाओं की होती है जो हमें उद्वेलित करती रहती हैं। वर्ष 2006 में मैं ने चित्रा मुद्गल के सशक्त उपन्यास 'आवां' का पठन कार्य किया। इस उपन्यास की लगभग हर जगह स्त्रीवादी दृष्टिकोण से ही समीक्षा उपलब्ध थी लेकिन व्यक्तिगत रूप से उपन्यास की पृष्ठभूमि में नायकत्व की भूमिका निभा रहे श्रमिकों, उनकी समस्याओं, संगठन और इससे संबंधित पूरी व्यवस्था-तंत्र ने मुझे अधिक आकर्षित किया। इसके साथ ही भीष्म साहनी की कहानियों पर अपना एम.फिल. कार्य करने के दौरान आर्थिक दुरावस्था से पीड़ित इस वर्ग के स्वरूप और समस्याओं तथा साहित्य में उसके प्रस्तुतीकरण को जानने की जिज्ञासा लगातार मुझे उत्सुक बनाती रही। साहित्यिक रचना विधाओं में उपन्यास एक ऐसी विधा है जो विचारों को खुलकर और विस्तृत रूप से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करती है। अंतिम दशक तक आते-आते उपन्यास की अर्थवत्ता में परिवर्तन आए। उपन्यसा लेखन में नवीन दृष्टिकोण एवं विषयों का स्वागत हुआ जिन्हें कभी सामाजिक प्रतिबंधों या शक्तियों के विरोध के कारण अनछुआ रखा गया था। उपन्यास लेखन में आए इन परिवर्तनों और संभावनाओं के कारण शोध कार्य के लिए इस विधा का चयन किया गया।

शोध-कार्य में बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से तात्पर्य वर्ष 1991 से लेकर वर्ष 2000 तक का है। यह समयावधि समाज और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में अनेक परिवर्तनों को उपस्थित करता है। यह वही दशक है जब भारत में सूचना प्रौद्योगिकी अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँची। यह विकास जहाँ एक तरफ भारत देश को वैश्विक धरातल पर ऊपर उठा रहा था वहीं दूसरी तरफ देश में मशीनीकरण, शहरीकरण और महानगरीय सभ्यता ऊर्ध्व रूप से उभर रही थी।

प्रगति का यह रूप गाँव के बेरोजगारों और भूमिहीन किसानों को रोजगार की संभावनाओं के साथ आकर्षित कर रहा था। किसानों की आत्महत्या भी इसी दौर की शर्मनाक घटना थी जो इस आकर्षण को और बढ़ावा दे रही थी। शहरों में बढ़े रहे निर्माण कार्य, अनेक कारखानों की प्रतिष्ठा, उपभोक्तावादी संस्कृति की आड़ में पनप रही होटल संस्कृति आदि मुख्य रूप से अकुशल श्रमिकों की माँग कर रही थी। इसके साथ ही खनिज पदार्थों के व्यवसाय के उद्देश्य से अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन तथा सरकार की अनेक नवउदारवादी अर्थ-नीतियों से आदिवासियों को अपने मूल निवास क्षेत्र और जीविका से खदेड़ कर श्रमिक बनने पर विवश कर रहा था। इन सभी परिवर्तनों के फलस्वरूप भारत में अकुशल श्रमिकों की मात्रा बढ़ती गई। आज वह देश की श्रमशक्ति का 80 प्रतिशत भागीदार है।

शोधकार्य में श्रमिकों से तात्पर्य इन्हीं अकुशल और पूर्ण रूप से असंगठित श्रमिकों से है। श्रमिक से आशय केवल कारखानों व मिलों में काम करने वाले औद्योगिक श्रमिकों से नहीं है वरन् निर्माण कार्य में कार्यरत, होटलों में तथा अन्यन्य सहायक कार्य करनेवाले, घरेलू नौकर के रूप में, ठेके पर काम कर रहे दिहाड़ी-वे सभी श्रमिक हैं, जो बिना किसी कुशलता के केवल अपना श्रम बेचकर ही जीवन निर्वाह करते हैं। अंतिम दशक का उपन्यास साहित्य अनेक विमर्शों को प्रस्तुत करता है और इस कारण मुख्य धारा से अधिक जुड़ता है। इस बात में दो राय नहीं है कि साहित्य समाज के सभी पक्ष और समस्याओं को प्रस्तुत करता है। इस ‘सभी’ में समाज के एक बड़े हिस्से को अनछुआ नहीं रखा जा सकता। अंतिम दशक के उपन्यास साहित्य श्रमिक वर्ग के लिए कितना उत्सुक और कितना उदासीन रहा है, उस बात की परख ही इस शोध-कार्य का मुख्य लक्ष्य रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को अध्ययन की सुविधा एवं विषय विश्लेषण की दृष्टि से उपसंहार के अतिरिक्त छः अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है।

प्रथम अध्याय ‘बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप व इतिहास’ है। इसके अंतर्गत श्रमिक शब्द की

अवधारणा एवं उसके निकटवर्ती अर्थ-संदर्भों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही भारत में श्रमिक वर्ग के उद्‌भव, विकास और श्रमिक आंदोलनों के कारणों को स्पष्ट करते हुए, चयनित उपन्यासों का सम्यक् परिचय भी प्रस्तुत है।

द्वितीय अध्याय 'बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : शोषण व संघर्ष' है जिसके अंतर्गत पूँजीपतियों के शोषण के विभत्स रूप को प्रस्तुत किया गया है। इसके फलस्वरूप वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रिया, श्रमिकों के संघर्ष को उभारा गया है। चयनित उपन्यासों में उपस्थित विभिन्न प्रकार की जीविकाओं और उससे संबंधित श्रमिकों की समस्याओं को भी प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय 'बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : संगठनों की भूमिका' है। इसके अंतर्गत संगठनों के निर्माण और श्रमिकों में उसकी समझ और जागरूकता के पक्ष को प्रस्तुत किया गया है। संगठनों के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष को उभारते हुए उपन्यास में उपस्थित कतिपय प्रभावी मजदूर नेताओं के व्यक्तित्व का अवलोकन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय 'बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : विविध परिस्थितियाँ' हैं। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते श्रमिक जीवन की विविध परिस्थितियों जैसे-सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक-सभी पक्ष पर उपन्यासों के आधार पर चर्चा की गई है। इन सभी परिस्थितियों में श्रमिकों की समस्याओं और कुंठाओं को प्रस्तुत किया गया है।

शोध कार्य का पंचम अध्याय 'बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : विविध परिप्रेक्ष्य' है। इसके अंतर्गत स्त्री-श्रमिक, बाल-श्रमिक, दलित व आदिवासी श्रमिक तथा विस्थापित श्रमिकों के जीवन, स्वरूप और समस्याओं को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। भूमंडलीकरण का श्रमिक जीवन पर पड़ रहे प्रभाव को भी इसी अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय 'बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवनः सांस्कृतिक संदर्भ और भाषा' है, जिसके अंतर्गत श्रमिकों के रहन-सहन, पर्व-त्यौहार, खान-पान, नृत्य-संगीत आदि सांस्कृतिक पक्ष को प्रस्तुत किया गया है। अपने मनोभाव को प्रस्तुत करने में श्रमिकों की भाषा पर विचार विमर्श किया गया है।

सहायता व समर्थन के आगे धन्यवाद शब्द कभी-कभी गौण रूप में अवतरित होता है। साहित्य में एक अलग तथा चुनौतीपूर्ण विषय पर शोधकार्य करने के लिए प्रोत्साहित करने तथा हर क्षण मेरा मार्गदर्शन करने के कारण मैं अपनी शोध निर्देशिका प्रो.नूरजहाँ बेगम के प्रति आजीवन ऋणी रहूँगी। इनके समर्थन व सहायता के बिना शोध-कार्य को अंतिम रूप देना असंभव था।

विभागाध्यक्ष तथा विभाग के अन्य सभी गुरुजनों के प्रति आभार प्रकट करना चाहती हूँ जिन्होंने मेरे चयनित विषय को स्वीकृति प्रदान कर इस विषय पर कार्य करने के लिए मुझे प्रोत्साहित किया। अपनी शोध-समिति के प्राध्यापकों को धन्यवाद देना चाहूँगी जिन्होंने शोध-कार्य की प्रगति को सराहा तथा इसे प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की।

मैं अपनी माता सईदा खातून तथा पिता सन्नाल्ला खाँ के प्रति तथा अपने भाई-बहन तबस्सुम, मेहजबों, आफताब-सभी की आभारी हूँ जिनके समर्थन और आशीर्वाद तथा सहयोग के बिना पी-एच.डी. में आना ही मेरे लिए असंभव था।

शोध-कार्य के दौरान मानसिक संतुलन और साहस को बनाए रखने तथा संबंधित विषय पर विचार-विमर्श के लिए मैं अपने साथियों-प्रतिश्रुति, सस्मिता, शताब्दी, सीमा, स्वयंप्रभा, दत्ता, इला, प्रणव-सभी को धन्यवाद देना चाहूँगी। मित्रों की स्वभावतः सहयोग और सहायता से मेरे उत्साह तथा मनोबल को बढ़ावा मिलता रहा है।

\- **नगीना बानो**

प्रथम अध्याय

श्रमिक जीवन : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप और इतिहास

1. श्रमिक जीवन :अर्थ और परिभाषा
2. श्रमिक जीवन का स्वरूप
    - 2.1 कम मजदूरी
    - 2.2 आवास की समस्या
    - 2.3 बेरोजगारी की समस्या
    - 2.4 ऋणग्रस्तता की समस्या
    - 2.5 व्यक्तिगत समस्याएँ
    - 2.6 प्रवास की समस्याएँ
    - 2.7 भर्ती की समस्या
    - 2.8 श्रमिक संगठनों का अभाव
3. भारत में पूँजीवाद का उदय और श्रमिक जीवन
    - 3.1 आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था में असंतुलन
    - 3.2 पूँजीवाद का प्रवेश
    - 3.3 उद्योगों की स्थापना और श्रमिक जीवन
4. श्रमिक आंदोलन का सूत्रपात
    - 4.1 श्रमिक संगठनों की स्थापना और विकास
    - 4.2 मार्क्सवादी विचारों का प्रवेश और श्रमिक जीवन
    - 4.3 हिंदी साहित्य और मार्क्सवाद
5. बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के उपन्यास : एक परिचय

प्रथम अध्याय

श्रमिक जीवन : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप और इतिहास

विकास और प्रगति की सतत् प्रक्रिया के अनुरूप यह प्रमाणित हो चुका है कि जहाँ परिवर्तन है वहाँ संघर्ष उसकी पृष्ठभूमि है। पूँजीवाद के तानाशाही और औद्योगिक क्रांति के विकास क्रम में अपने परिश्रम को इसकी नीव-निर्माण में आहुति देता तथा इसके विपरीत शोषित होता एक वर्ग, जो सदैव हाशिये में रह जाता है- श्रमिक वर्ग है। समाज के विकास क्रम में इतनी बड़ी भूमिका निभाने के बावजूद यह वर्ग पिछड़ा हुआ रहा और आज भी बहुत हद तक इसकी स्थिति में कोई अधिक सुधार नहीं हुआ। औद्योगिक विकास क्रम के इतिहास में इस वर्ग ने यह प्रमाणित कर दिया है कि उसका अस्तित्व और परिचय प्रगति के लिए उतना ही मूल्यवान है जितना पूँजीवाद या पूँजी स्वयं। अपने संघर्ष के माध्यम से श्रमिक वर्ग ने पूरे विश्व की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित की। इस क्रांतिकारी वर्ग के संघर्षों को जानने से पहले इसके अर्थ, स्वरूप और उदय के कारणों को समझना आवश्यक है।

1. श्रमिक जीवन :अर्थ और परिभाषा

'श्रमिक' शब्द 'श्रम' शब्द में 'इक्' प्रत्यय के योग से बना है। अतः श्रमिक शब्द का अर्थ समझने और उसे परिभाषित करने से पूर्व हमें 'श्रम' के स्वरूप को समझना आवश्यक है। 'श्रम' मुख्यतः किसी कार्य को करने के दौरान होने वाली थकान, अभ्यास, मेहनत, तपस्या आदि का सूचक है। यह मुख्यतः किसी काम को करते समय होनेवाले विभिन्न भवों का द्योतक है। 'श्रम' का अर्थ व्यापक है। इसके

स्वरूप को अधिक व्यापकता एवं गंभीरता से समझने के लिए इसके विभिन्न अर्थों को प्रस्तुत किया गया है। 'श्रम' का अर्थ साहित्य, अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान, राजनीति विज्ञान आदि में अपने-अपने परिप्रेक्ष्य के कारण विभिन्न अर्थों में ग्रहण किया गया है। 'श्रम' की विकसित परिधि को समझने के लिए इन सभी संदर्भों के अर्थ को ग्रहण करना आवश्यक है।

'संस्कृत-हिंदी कोश' में 'श्रम' को (श्रम+घञ्) का योग बताया गया है। इसमें 'श्रम्' का अर्थ है-चेष्टा करना, उद्योग करना, मेहनत करना, परिश्रम करना, तपस्या करना, इंद्रिय दमन करना। इसके साथ ही श्रान्न होना, थकना, परिश्रान्त होना-'रतिश्रान्त शेते रजनिरमणी गाढ़मुरसी', 'श्रम्' का अर्थ कष्टग्रस्त होना, दुःखी होना भी कहा गया है-(यो वृंदानि त्वरयति पथि श्रम्यतां प्रोषितानाम्)। □ब 'श्रम्' में 'घञ्' प्रत्यय मिलकर 'श्रम' बनता है तब उसका अर्थ इस प्रकार है-मेहनत, परिश्रम, चेष्टा, थकावट, थकान, साधना परिश्रान्ति, कष्ट, दुःख, तपस्या, साधना, इंद्रियद मन, व्यायाम, विशेषतः सैनिक व्यायाम, घोर अध्ययन आदि अर्थ बताये गये हैं।"[1]

'संस्कृत-अंग्रेज़ी कोश' में 'श्रम' का अर्थ है-थका हुआ या थक जाना या क्लांत होना, किसी काम को करने के कारण कलांत हो जाना, प्रयास करना, अपनी दक्षता को काम में लाना, प्रयोग करना, थकावट, कठोर-काम, क्लांत; अभिभूत करना, पराजित करना, वश में लाना, अधीन में लाना आदि। 'श्रम' का अर्थ थकना, परिश्रांत, चेष्टा, कठोर काम, शारीरिक या मानसिक रूप से किया गया कोई प्रयत्न या प्रयास, किसी भी प्रकार का कठोर काम, सैनिक व्यायाम आदि।"[2]

इस प्रकार दोनों ही संदर्भ में 'श्रम' मूल रूप से शारीरिक या मानसिक तौर पर किया गया कोई काम है जिसे करने के लिए हमें चेष्टा, अभ्यास, तपस्या, साधना, अपनी दक्षता को प्रयोग में लाना आदि करना पड़ता है। साथ ही इसे करते समय हमें

[1] संस्कृत-हिंदी कोष, वामन शिवराम आप्टे-पृ.1034
[2] संस्कृत-अंग्रेजी कोश-Monier Williams-p.1096

थकान, क्लांति, कठोर मेहनत, कष्ट आदि का अनुभव होता है। 'श्रम' के समय हमें अपनी दक्षता को प्रस्तुत करना पड़ता है।

'हिंदी साहित्य कोश' में 'श्रम' के अर्थ को समझाते हुए उसे प्र□लित तैंतीस में से एक संचारी भाव कहा गया है। भरत के आधार पर विश्वनाथ ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है 'खेदो रत्यग्ध्वगत्यादेः श्वासनिद्रादिकृच्छ्रमः' अर्थात् रति ओर मार्ग चलने आदि से उत्पन्न खेद का नाम श्रम है। श्वास का चढ़ना, निद्रा आदि इसके अनुभाव हैं। इसी परंपरा में हिंदी के रीतिकालीन आचार्यों ने श्रम का लक्षण दिया है-"अति रति अवगतिते जहाँ उपजै अति तन स्वेद।"[3]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने श्रम के दो अर्थ माने हैं-एक तो व्यापाराधिकार या किसी क्रिया की निरंतर साधना। दूसरा उससे उत्पन्न अंतरग्लानि या थकावट। अपने अर्थ पर जोर देते हुए शुक्ल जी ने कहा-"किसी के प्रेम में यदि कोई दौड़ धूप करे, विद्या की प्राप्ति के लिए रात-दिन बैठकर पढ़ता रहे, गढ़ा हुआ खजाना पाने के लिए दिन भर मिट्टी खोदता रहे तो उसका यह दौड़ना-धूपना, रात-रात भर बैठना या दिन भर मिट्टी खोदना क्रमशः व्यक्ति, विद्या या धन के प्रति रति भाव का संचारी भाव कहा जा सकता है। पर इस दौड़-धूप के कारण कोई थककर बैठ जाय या रात भर मेहनत करने से शिथिल हो जाय तो यह थकान या शिथिल होना रति भाव से दूर पड़ जाने के कारण, संचारी भाव से दूर पड़ जाने के कारण संचारी नहीं कहा □ा सकता।"[4] उपरोक्त दोनों ही परिभाषओं से यह स्पष्ट होता है कि श्रम का काव्यशास्त्रीय अर्थ संचारी-भाव का प्रतीक है। किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए किए जाने वाली चेष्टाओं का द्योतक है। अतः यहाँ श्रम केवल प्राप्ति के आग्रह और उनसे उत्पन्न खेद के अर्थ को ग्रहण किए हुए है।

भार्गव आदर्श हिंदी शब्दकोश में भी 'श्रम' का अर्थ इसी प्रकार ही दिया गया है। 'श्रम' को साहित्य के संचारी भावों में से एक बताया गया है। इसके साथ ही

---

[3] हिंदी साहित्य कोश, भाग-2, सं.डॉ.धीरेंद्र वर्मा-पृ.683
[4] हिंदी साहित्य कोश, भाग-2, सं.डॉ.धीरेंद्र वर्मा-पृ.683

इसके संज्ञा रूप के अर्थों को प्रयास, अभ्याास, परिश्रम, थकावट, शास्त्रों का अभ्यास, तपस्या, चिकित्सा, व्यायाम, स्वेद, पसीना आदि के रूप में प्रस्तुत किया गया है।"[5] राजपाल हिंदी शब्द-कोश में 'श्रम' का अर्थ-मेहनत (जैसे-श्रम करना), काम (जैसे-जीविका हेतु श्रम करना), थकावट, क्लांति (जैसे-अत्यधिक श्रम होना), कसरत, व्यायाम (जैसे-शरीर को स्वस्थ रखने हेतु श्रम करना) के रूप में व्याख्यायित किया गया है।"[6] अतः श्रम वह कार्य प्रक्रिया है जिसे मेहनत, प्रयास, अभ्यास आदि से की जाती है तथा इसके उपरांत फल प्राप्ति होती है।

मानक हिंदी कोश में 'श्रम' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-कोई ऐसा शारीरिक या मानसिक काम जिसे लगातार कुछ समय तक करते-करते शरीर में थकावट या शिथिलता आने लगती हो, शरीर को थकानेवाला काम, परिश्रम, मेहनत।"[7] डॉ.हरदेव बाहरी ने 'मानक हिंदी प्रयोग' कोश में 'श्रम' को परिश्रम, मेहनत, उद्यम, उद्योग, अध्यवसान, श्रांति, क्लांति, थकावट, दौड़-धूप, प्रयास, प्रयत्न, कसरत, व्यायाम आदि अर्थ दिया है।"[8] इसके आधार पर कहा जा सकता है कि श्रम केवल शारीरिक क्रिया ही नहीं है वरन वह एक मानसिक प्रक्रिया भी है तथा यह मुख्यतः परिश्रम, मेहनत, थकावट, प्रयास आदि अर्थ को प्रस्तुत करता है।

अंग्रेज़ी में 'श्रम' के लिए 'लेबर' (Labour) शब्द का प्रयोग किया जाता है। बृहत् अंग्रेज़ी हिंदी कोश में इस शब्द के अर्थ को उभय संज्ञा और क्रिया के रूप में समझाया गया है। संज्ञा के रूप में इसका अर्थ-श्रम, परिश्रम, उद्यम, प्रयत्न, मेहनत, मजदूरी तथा कृषि के विशेष संदर्भ में श्रमिक, श्रमिक वर्ग, मजदूर के अर्थ में प्रस्तुत किया गया है। क्रिया के रूप में 'लेबर' का अर्थ है-श्रम करना, कठोर श्रम करना, मेहनत करना, मजदूरी करना, चेष्टा करना, प्रयत्न करना, कठिनाई से आगे बढ़ना, कष्ट झेलना, कष्ट उठाना, कष्ट भोगना, दुःख सहना आदि।"[9] मानक अंग्रेज़ी

---

[5] भार्गव आदर्श हिंदी कोश, सं.पंडित रामचंद्र पाठक-पृ.314

[6] राजपाल हिंदी शब्द कोश, डॉ.हरदेव बाहरी-पृ.718

[7] मानक हिंदी कोश, पाँचवाँ खंड, सं.रामचंद्र वर्मा-पृ.200

[8] राजपाल हिंदी शब्द कोश, सं.डॉ.हरदेव बाहरी-पृ.718

[9] बृहत् अंग्रेज़ी हिंदी कोश, सं.डॉ.हरदेव बाहरी-पृ.401

हिंदी कोश में-लेबर का अर्थ शारीरिक या मानसिक परिश्रम, मेहनत-मजदूरी और उद्यम, उद्योग, धंधा, प्रयास, मजदूर-वर्ग, मजदूर लोग, मजदूर/श्रमिक, श्रमिक-वर्ग आदि तीन अर्थों में समझाया है। क्रिया-रूप में इसके अर्थ को समझाते हुए इसे श्रम लगाना, मेहनत करना, मजदूरी करना, कठिनाई से आगे बढ़ना आदि कहा गया है।"[10] मीनाक्षी हिंदी अंग्रेज़ी कोश में 'लेबर' को ऐसा काम जिसे करते-करते शरीर में शिथिलता या थकावट आने लगे-कहा गया है।"[11] इन कोशगत अर्थों के आधार पर श्रम व कार्य या कार्य प्रक्रिया है जो मूलतः शारीरिक होती है तथा जिसे करने से शरीर में थकावट आती है। इस प्रकार का कठोर शारीरिक काम, मेहनत या श्रम करने वाला मजदूर या श्रमिक कहलाता है।

अर्थशास्त्र में श्रम को तथा इस कारण श्रमिक-वर्ग को विशेष महत्व दिया गया है। इसे अनेक स्तरों में परिभाषित भी किया गया है। अर्थशास्त्रीय शब्दकोश में 'लेबर' को उत्पादन की प्रक्रिया के मूलभूत कारकों में से एक माना गया है। 'श्रम' उत्पादनकारी आपूर्तियों को मूर्त रूप देने के लिए मानव के शारीरिक प्रयास, दक्षता, प्रज्ञात्मक शक्ति आदि का सामूहिक नाम है।"[12] 'श्रम' मनुष्य द्वारा किया गया वह आर्थिक प्रयास है जो शारीरिक या मानसिक, कुशल या अकुशल रूप से धन उत्पादन के लिए प्रयुक्त होता है। जिसके बदले में कुछ पारिश्रमिक या पुरस्कार मिले। अर्थशास्त्र के जनक 'आदम स्मिथ' तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने यह माना कि 'श्रम' वही है जो उत्पादन के वस्तु के मूल्य को बढ़ाने में सहायक है।"[13] श्रम वह शारीरिक या मानसिक परिश्रम (चेष्टा) है जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन प्रक्रिया में व्यवहृत की जाती है। यह शब्द उन लोगों के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है जो सामूहिक रूप से मज़दूरी पाने के लिए कोई काम करते हैं।"[14]

---

[10] मानक अंग्रेज़ी हिंदी कोश, सं.सत्यप्रकाश-पृ.765

[11] मीनाक्षी हिंदी-अंग्रेजी कोश, सं.डॉ.ब्रजमोहन-पृ.222

[12] The penguine Dictionary of economics, by.G.Bannack-p.245

[13] A New Dictionary of Economics, Ed.Philip A.S.Tylor-p.174

[14] New Standard Encyclopedia-Vol.8, p.8

'□विन्स' ने 'श्रम' को एक ऐसी शारीरिक मानसिक किय्रा के रूप में परिभाषित किया जिसका मूल उद्देश्य किसी आर्थिक प्राप्ति से संबंधित होता है।"[15]

'टामस' ने ऐसे किसी भी शारीरिक या मानसिक प्रयास को श्रम का नाम दिया □ो किसी भी प्रकार के पुरस्कार की आशा से किया गया हो।"[16]

पीगू के मतानुसार "जिस कार्य को द्रव्य या मुद्रा द्वारा नापा जा सके 'श्रम' कहलाता है।"[17]

इस प्रकार अर्थशास्त्र में श्रम वह कारक है जो उत्पादन के मूल में विशेष भूमिका निभाता है। श्रम और श्रमिक वह कारक है जो उत्पादन को मूल्य प्रदान करते हैं। इसके साथ ही अर्थशास्त्र में 'कुशल' और 'अकुशल' श्रम को अलग-अलग महत्व दिया गया है। आदम स्मिथ का यह मानना है कि-"कुशल या उत्पदनकारी श्रम ही वस्तु को मूल्य प्रदान करता है। तथा जो वह नहीं कर पाता वह अकुशल कहा □ाता है।"[18] इसके साथ ही अर्थशास्त्र में बाजार के अनुसार 'श्रम संतुलन' बनाए रखना भी आवश्यक है। 'लेबर मोबिलिटी' (Labour Mobility) को भी प्राधान्य दिया जाता है। यह मुख्यतः दो प्रकार से होता है। एक तो श्रम की गतिशीलता काम की प्राप्तता या मजदूरी के आधिक्य के कारण एक से दूसरे भौगोलिक क्षेत्रों एवं स्थानों पर होता है तथा दूसरा तब होता है जब एक आजीविका को छोड़कर दूसरे को किया जाता है।"[19]

मूल रूप से अर्थ शास्त्र में श्रम उत्पादन के मूलभूत कारकों में से एक है जो उत्पाद को मूल्य देता है तथा उसके मूल्य को निर्धारित भी करता है। इसमें मज़दूरी या श्रम के बदले मिलने वाला प्राप्य महत्व रखता है। अर्थशास्त्र कुशल एवं उत्पादनकारी आपूर्तियों के माँग के अनुसार श्रम को महत्व देता है।

[15] भारतीय समाज की संरचना, श्री हेमलता श्रीवास्तव-पृ.405
[16] भारतीय समाज की संरचना, हेमलता श्रीवास्तव-पृ.215
[17] The Penguine Dictionary of Economics-p.245
[18] The Penguine Dictionary of Economics-p.245
[19] The Penguine Dictionary of Economics-p.245

विभिन्न संदर्भों में 'श्रम' का अर्थ समझने के उपरांत 'श्रमिक' शब्द के अर्थ को समझना आवश्यक हो गया है। 'श्रमिक' मुख्य रूप से वह व्यक्ति है जो श्रम करता है। जो परिश्रम, मेहनत, प्रयास, प्रयत्न, अध्यवसाय के माध्यम से अपनी दक्षता को प्रमाणित करता हुआ किसी काम को अंजाम देता है। जब श्रम किसी व्यक्ति के द्वारा प्राप्त की आशा से किया जाता है जैसे श्रम करने के पश्चात् अर्थ (मुख्यतः) की प्राप्ति हो, तब श्रम करने वाला वह व्यक्ति श्रमिक कहलाता है।

अंग्रेज़ी में श्रमिक शब्द के लिए 'लेबरर' (Labourer) शब्द का प्रचलन है। 'लेबरर' का अर्थ श्रमिक, श्रमजीवी, कर्मकार, कामगार, मजदूर, कुली आदि बताया गया।"[20] 'मानक अंग्रेज़ी-हिंदी कोश' में 'लेबरर' का क्रियागत अर्थ मेहनत करनेवाला या श्रम करने वाला, ऐसा काम करनेवाला व्यक्ति जिसमें कौशल या प्रशिक्षण की नहीं वरन शारीरिक शक्ति की अधिक आवश्यकता होती हो, श्रमिक कहलाता है। श्रमिक के विशेषण वाले अर्थ को समझाते हुए, वेतन के लिए मेहनत या श्रम करनेवाले को श्रमिक कहा गया है।"[21]

इन अर्थों के आधार पर श्रमिक वह कर्मकार, मजदूर या श्रमजीवी है जो अपनी शारीरिक शक्ति के माध्यम से कोई काम करता है। इसमें मूल रूप से शारीरिक क्षमता ही अधिक महत्व रखती है।

हिंदी में 'श्रमिक' शब्द के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। इस कारण हिंदी में 'श्रमिक' का अर्थ समझने के लिए इसके पर्यायवाची शब्दों में 'श्रमिक' का अर्थ समझने के लिए मजदूर, कामगार, श्रमजीवी आदि अनेक शब्दों का प्रयोग होता है। डॉ.हरदेव बाहरी ने "श्रमिक के लिए-श्रमजीवी, मजदूर, कामगार आदि पर्यायों को बताया है।"[22] साथ ही "'मजदूर' के लिए-श्रमिक, सेवक, मजूर, कुली, परिचारक, कामजीवी, दास आदि पर्याय बनाते हैं।"[23]

---

[20] बृहत् अंग्रेज़ी-हिंदी कोश-Vol-I, डॉ.हरदेव बाहरी-पृ.

[21] मानक अंग्रेज़ी-हिंदी कोश, सं.सत्यप्रकाश-पृ.765

[22] मानक हिंदी पर्याय कोश, डॉ.हरदेव बाहरी-पृ.227

[23] मानक हिंदी पर्याय कोश, डॉ.हरदेव बाहरी-पृ.179

'हिंदी पर्याय कोश' में मजदूर के पर्याय हैं-कामकर, कामगार, कूली, दिहाड़ीदार, मजूर, मेहनतकश, लेबर, श्रमजीवी, श्रमिक।"[24] 'हिंदी पर्यायवाची कोश' में श्रमिक का पर्याय है-कर्मकार, कामगार, बेलदार, मजदूर मेहनतकश, लेबर, लेबरर, श्रमजीवि।"[25] इसके साथ ही मजदूर का पर्याय है-कामकर, कामगार, बेलदार, मजूर, बेबर, श्रमिक।"[26] अर्थात् श्रमिक और मजदूर एक दूसरे के पर्याय हैं और इनके अर्थ में भी समानता है। "मजदूर वह व्यक्ति जो माडे पर शारीरिक संबंधी कार्य करता है तो अथवा शारीरिक श्रम के द्वारा जीविका कमानेवाला कोई व्यक्ति है।"[27]

यह सारी परिभाषाएँ 'श्रमिक' के व्यापक अर्थ को प्रस्तुत करती हैं। श्रमिक हर वह व्यक्ति है जो अपनी जीविका निर्वाह कुछ पैसों के लिए करता है तथा इस पैसे से ही अपनी मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करता है। श्रमिक अपना श्रम किसी कार्य में प्रयोग कर के या कह सकते हैं कि अपना श्रम बेच कर जीवन बिताते हैं। श्रमिक के अंतर्गत कारखानों के मजदूर, बुनकर, घरों में काम करनेवाले नौकर, खदानों के श्रमिक, निर्माण कार्य में लगे श्रमिक, पहाड़ों पर काम करनेवाले मज़दूर, बैरा (Waiter), दिहाड़ी मजदूर आदि सभी आते हैं। सभ्यता के विकास के साथ ही 'श्रमिक' का अर्थ संकुचित होने लगा एवं यह केवल कारखानों, मिलों जैसे औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वाले मजदूरों तक सीमित होकर रह गया। अगर औद्योगिक श्रमिक के अर्थ और परिभाषा को देखा जाए तो साधारण श्रमिक और औद्योगिक श्रमिक का अर्थ एक ही निकलता है।

रेनाल्ड्स के अनुसार-"शारीरिक श्रम करने वाले तथा निम्न स्तर के श्वेत-वस्त्र-कर्मचारी ही औद्योगिक श्रमिक है।" निकाल्सन के अनुसार-"औद्योगिक श्रमिक के अंतर्गत उच्चतम व्यावसायिक कुशलता से लेकर अकुशल मजदूर तक

[24] हिंदी पर्यायकोश, भोलानाथ तिवारी-पृ.474
[25] हिंदी पर्यायवाची कोश, डॉ.भोलानाथ तिवारी-पृ.613
[26] हिंदी पर्यायवाची कोश, डॉ.भोलानाथ तिवारी-पृ.474
[27] मानक हिदी कोश, चतुर्थ खंड, डॉ.रामकुमार वर्मा-पृ.268

सम्मिलित किये जा सकते हैं।"[28] डॉ.विलियम्स के शब्दों में "प्रत्येक वह मजदूर जो दिये हुए समय, दी हुई परिस्थितियों तथा पूर्व निर्धारित दैनिक अथवा मासिक वेतन पर किसी उत्पादन प्रणाली में कार्यरत होता है, औद्योगिक श्रमिक कहलाता है।"[29] अतः साधारण श्रमिक और औद्योगिक श्रमिकों के बीच एक ही अंतर है कि साधारण श्रमिक किसी भी प्रकार का श्रम करता है जबकि औद्योगिक श्रमिक केवल उद्योग तथा उससे संबंधित श्रम कार्य करते हैं। लेकिन इस सामान्य अंतर के कारण हमें श्रमिक के अर्थ को संकुचित नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार 'कृषक' तथा 'कृषि' क्षेत्र में कार्य करनेवाले लोगों को श्रमिक वर्ग से अलग रखा जाता है। लेकिन भारतीय कृषक समाज में कृषि-श्रमिक (Agricultural Labourers) भी होते हैं। निर्धन कृषक, भूमिहीन कृषक तथा संपूर्ण कृषि कार्य में अन्य प्रकार के काम करनेवाले लोग जो मूल रूप में कृषक ही होते हैं कृषि-श्रमिक कहलाते हैं। "भारत में साधारणतः दो प्रकार के कृषि श्रमिक पाए जाते हैं-सामयिक तथा संबद्ध।"[30] अतः कृषि-श्रमिक भी कई अर्थों में श्रमिक वर्ग में आते हैं।

वस्तुतः इन चर्चाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि श्रमिक वह है जो मूलतः श्रम करता है। जिस श्रम का मूल्य आर्थिक आधारों पर आँका जा सकता हो, उस श्रम का निर्वाह करनेवालों को श्रमिक कहा जाता है। जो व्यक्ति श्रम की चेष्टा या श्रम का कार्यान्वयन कुछ पाने के उद्देश्य से करता है ताकि अपना जीवन और जीविका निर्वाह कर सके, 'श्रमिक' कहलाता है। इस शोध कार्य में श्रमिक के व्यापक अर्थ को ग्रहण कर शोध कार्य किया जा रहा है, जिससे हर प्रकार के श्रमिकों की अवस्था को हर दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जा सके तथा इसके साथ ही इस शोधकार्य के लक्ष्य तक पहुँचा जा सके।

---

[28] भारतीय समाज की संरचना, हेमलता श्रीवास्तव-पृ.405

[29] भारतीय समाज की संरचना, हेमलता श्रीवास्तव-पृ.405

[30] भारतीय समाज की संरचना, हेमलता श्रीवास्तव-पृ.13

2. श्रमिक जीवन का स्वरूप

इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि पूँजीवाद के जन्म, विकास एवं विश्व-व्यापकता के साथ ही इसके अस्तित्व को बचाए रखने के लिए अपने जीवन को तिलांजलि देता हुआ श्रमिक वर्ग सामने उभरकर आया। उद्योगों की स्थापना एवं पूँजीवाद के विस्तार के साथ ही श्रमिक वर्ग का भी विकास होता गया। इस विकासचक्र के आरंभिक काल में श्रमिक वर्ग और उसके जीवन का स्वरूप अत्याचार, शोषण, दयनीय परिस्थिति, कठोर परिश्रम, अनाहार जैसे अमानवीय पर्यायों के साथ ही जुड़ा रहा तथा इन पर्यायों में ही विकसित होता रहा। जहाँ एक तरफ अपनी शोचनीय आर्थिक परिस्थिति से हारकर जीवन की मौलिक आवश्यकताओं को जैसे-तैसे प्राप्त करने के लिए किसान और कारीगर श्रमिक बन रहे थे वहीं इन श्रमिकों के मालिक बने पूँजीपति इनका भरसक शोषण कर रहे थे। पूँजीवाद और उद्योगों के निरंतर विकास और आधिपत्य के साथ ही यंत्रों एवं शहरों का भी विकास हुआ। यंत्रों के आगमन के कारण जहाँ एक तरफ श्रमिकों की स्थिति और भी दयनीय होती गई, वहीं सहरों की स्थापना ने किसानों और कारीगरों को भूमिहीन श्रमिक बनाकर रख दिया। साथ ही लोग अपने गाँव, अपने कस्बे से बाहर निकल कर शहर में उद्योगपतियों के शिकंजे में और भी अधिक शोषित अवस्था में श्रमिक बने रहे।

भारत में मजदूर वर्ग का जन्म पूँजीवादी समाज की सहगामी परिस्थितियों में हुआ जिसकी स्थापना उपनिवेशिक प्रभावों के कारण हुआ था। उपनिवेशक के रूप में अंग्रेज़ों का भारत में आगमन एवं व्यापार विस्तार ही भारतीय समाज की आर्थिक-सामाजिक संरचना को पूर्ण रूप से परिवर्तित एवं असंतुलित करता है। अंग्रेज़ों ने भारत में आते ही इसके गौरवमय ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का ध्वसं किया और अपने देश की नीतियों का प्रचलन भारत में करना आरंभ किया। वाणिज्य के विस्तार एवं भारत को लूटने की प्रक्रिया में अंग्रेज़ जैसे-जैसे उद्योगों का विकास करते रहे वैसे-वैसे भारतीय श्रमिक वर्ग का स्वरूप अपने पहचान को प्राप्त करता गया। इस

वर्ग का जन्म इस प्रकार हुआ कि उसके पास केवल अपनी श्रम-शक्ति ही शेष-मात्र अस्त्र या कहें कि उसकी अपनी एकमात्र पूँजी बनकर रह गई। क्योंकि घटनाक्रम में फँसकर उसके पास से अपनी जमीन, अपना कारोबार यहाँ तक कि दो वक्त की रोटी भी छीनी जा चुकी थी। न ही उसके पास संबल था और न ही उसके पास आर्थिक सबलता, जिसकी सहायता से वह अपने आपको समाज में रहने लायक बना पाए और इन सबके फलस्वरूप उसे चाहे-अनचाहे श्रमिक बनना ही पड़ा।

प्रारंभिक अवस्था में भारतीय मजदूर-वर्ग के अंतर्गत वे ही लोग आते हैं जो मुख्य रूप से किसान या हस्तकला के कारीगर रह चुके थे। क्योंकि अंग्रेज़ों के आगमन के साथ ही अनेक प्रकार की भूमि व्यवस्था के कारण किसानों को अपनी ही जमीन छोड़नी पड़ी थी और वे किसान से खेतीहर या भूमिहीन मजदूर बनकर रह गये थे। इसके साथ ही हस्तकला उद्योग के क्षेत्रों में मशीनों के घुसपैठ के कारण कुशल एवं निपुण कारीगरों को हटाया गया और ये बेरोजगार होते गए और अंततः परिस्थिति से हारकर श्रमिक बने रहे। मजदूरी और रोजी-रोटी के संधान में जब ये लोग शहर के तरफ बढ़े तो इनके पास निबटतम गरीबी, गाँवों का मोह, अजनबीपन और अंधविश्वासों का एक पूरा कारवाँ साथ चला। पूँजीपतियों एवं अंग्रेज़ शासकों ने इन कमजोरियों को खूब अच्छी तरह और शीघ्र ही पहचाना तथा जितना हो सकता था उतना लाभ उठाया। इस कारण भारत के मजदूरों की हालत विश्व के अन्य मजदूर वर्ग से अलग रही। भारतीय मजदूर वर्ग एवं यूरोपीय मजदूर वर्ग के बीच एक मौलिक अंतर रहा। यूरोप के मजदूरों में ज्यादातर वे कारीगर थे जो कारखानों की प्रतिद्वंद्विता के कारण तबाह हो कर मजदूर बने हुए थे। उनके पास हाथों का हुनर तो था ही साथ में शहरों की सभ्यता थी ही। लेकिन इससे अलग और लगभग विपरीत "भारतीय मजदूर प्रायः दो पीढ़ी पूर्व उजाड़े गये उन कारीगरों की संतानों से बना था जो गाँवों के निकृष्टतम जीवन से बचने के लिए नौकरियों में आये थे। इनके पास कारीगरी तो नहीं थी। साथ ही इनको गाँवों की हालत, जाति नस्लवाद, अंधविश्वास और पिछड़ापन विरासत में मिला था। इन

सबने भरतीय मजदूर आंदोलन को संगठित करने में विशेष बाधा पहुँचायी। भारतीय सर्वहारा आज भी गाँवों के मोह से मुक्त नहीं है। ... और यही कारण रहा है कि भारत के मजदूर वर्ग पर राष्ट्रीय सुधारवादी विचारधारा का घातक असर कायम रहा है। इसी की आड़ लेकर पूँजीपति विचारधारओं ने भारतीय परंपरा की श्रेष्ठता के छलाव द्वारा, इसको गहरे परिवर्तनकारी संघर्षों से विमुख रखने में सफलता पाई है।"[31] इन सभी कारण से भारतीय मजदूर-वर्ग को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा और साथ ही वह एक अपेक्षित, अविकसित और दरिद्र वर्ग बनकर रह गया।

श्रमिक एक मानव है अतः मानवीयता के नाते उसकी समस्याओं को समझना आवश्यक है। एक सामाजिक प्राणी होने के कारण उसके सामाजिक संबंधों में उत्पन्न होनेवाले तनावों का अध्ययन तथा उनसे मुक्ति के साधन ढूँढ़ने का प्रयास होना चाहिए। किसी भी देश की आर्थिक प्रगति तथा विकास के लिए श्रमिकों का समस्या मुक्त रहना अत्यावश्यक होता है। क्योंकि समस्यओं से जूझते हुए वे अपनी संपूर्ण दक्षता का परिचय नहीं दे पाते। समस्याओं से मुक्ति के उपाय तभी ढूँढ़े जा सकते हैं जब समस्याओं के जन्म, उनके कारणों तथा उनके दुष्प्रभावों की सम्यक विवेचना की जाय। इन समस्त तथ्यों के संकलन के लिए श्रमिक समस्याओं का अध्ययन आवश्यक है। क्योंकि यह अध्ययन ही किसी देश की वास्तविक आर्थिक स्थिति से परिचित कराता है। अतः यह माना जा सकता है कि श्रमिक समस्याएँ जितनी अधिक होंगी उस देश का आर्थिक विकास उतना ही धीमा होगा तथा जिस देश में ये समस्याएँ कम होंगी वहाँ का आर्थिक विकास तीव्र गति से होगा। इस कारण विकासशील देशों में इसी कारण श्रमिक-समस्याओं के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता है। श्रमिकों की कुछ प्रमुख एवं मूलभूत समस्याओं के विश्लेषण से पूर्व इस तथ्य को स्पष्ट करना आवश्यक है कि नगदीकरण और उद्योगीकरण के विकास के साथ ही श्रमिकों की समस्याओं में मूल रूप से दो प्रकार बन गई है। एक तो

[31] भारत का मजदूर आंदोलन, सुकोमल सेन-पृ.9

खेतिहर-किसान मजदूर और दूसरा औद्योगिक श्रमिक वर्ग। लेकिन श्रमिक चाहे कारखानों में काम करते हों अथवा चाय-बागानों में, घरानों में कार्यरत थे, कल-कारखानों में हों या खेतों में काम करनेवाला कृषि श्रमिक-इनकी मौलिक समस्याओं में समानता है। कारण यह है कि इसके मूल में सभी समस्याओं से जूझता हुआ व्यक्ति एक ही है-‘श्रमिक’। श्रमिक वर्ग की कुछ प्रमुख समस्याएँ कुछ इस प्रकार है-

2.1 कम मजदूरी

कृषि श्रमिक हो या औद्योगिक श्रमिक-इनकी सबसे बड़ी समस्या है मजदूरी की दर का अत्यंत कम होना। कई बार यह मजदूरी भी लगातार नहीं दी जाती। देश के अलग-अलग भागों में भुगतान पद्धति भी पृथक है। कहीं यह मुद्रा में है कहीं फसल के रूप में तो कहीं वस्तु-विनिमय के रूप में। पहले शहरों के सामान्य श्रमिक को जहाँ 12 से 15 रुपये के बीच मजदूरी आसानी से मिल जाती थीं वहीं कृषि श्रमिक को आज भी कोई भूपति 5 से 7 रुपये से अधिक मजदूरी नहीं देता।

2.2 आवास की समस्या

आवासजनित समस्या हर प्रकार के श्रमिकों के लिए एक बड़ी समस्या है। औद्योगिक श्रमिकों का आवास प्रायः असंतोषजनक, अपर्याप्त तथा महँगा होता है। ये लोग मुख्यतः घनी तथा गंदी बस्तियों में रहने पर विवश होते हैं। इनके आवास स्थानों पर सड़क, जलनिकासी, जल आपूर्ति, बिजली, खेल के मैदान, स्कूल, कूड़ेदान, शौचालय, स्नानगृह तथा कल्याण केंद्रों की सुविधा नहीं होती। मकान कच्चे और गंदे होते हैं। गंदे पानी के निकास के लिए नालियों का समुचित प्रबंध नहीं होता। गोपनीयता के अभाव के कारण युवक-युवतियों में यौन-अपराधों की प्रवृत्ति बढ़ती है तथा कभी-कभी वह श्रमिक बस्तियाँ देह-व्यापार के अड्डों में परिवर्तित हो होती है। भारत में कृषि-श्रमिकों के आवास समस्या भी विकराल है। ये भूमिहीन होने के साथ-साथ इनके पास प्रायः मकान भी नहीं होते। अधिकांश को उनके मालिकों की ओर से जमीन का कोई टुकड़ा दे दिया जाता है और उसी पर ही उन्हें झोपड़ी बना कर रहना पड़ता है। इनके घर प्रायः कच्चे होते हैं, बरसात तथा तूफान

में इनके ढहने या बहने का भय रहता है। अनेक घर तो ऐसे भी हैं जहाँ सर्दी तथा बरसात में मनुष्य एवं पालतू पशु एक साथ, एक ही कमरे या झोपड़ी तले रात गुजारते हैं।

2.3 बेरोजगारी की समस्या

कृषि श्रमिकों को सामान्यतः दो प्रकार की बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। एक बेरोजगारी के कारण-कुटीर उद्योगों अथवा अन्य उद्योगों के अभाव में कार्य के नए अवसर उत्पन्न नहीं होते किंतु गाँव की जनसंख्या निरंतर बढ़ती रहती है। एक स्थिति यह आती है कि कृषि कार्यों के लिए जितने श्रमिक अवश्यक होते हैं उनसे अधिक श्रमिक उपलब्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक को रोजगार मिलना कठिन हो जाता है। दूसरे प्रकार की बेरोजगारी मौसमी है। यह मौसम बेरोजगारी उभय कृषि श्रमिकों एवं औद्योगिक श्रमिकों के लिए एक बड़ी एवं क्रूर समस्या है। कृषि श्रमिकों के पास सामान्यतः दीर्घकालीन काम या मजदूरी का अभाव रहता है। क्योंकि कृषि का काम मौसम के अनुसार ही होता है। कम से कम तीन माह का समय ऐसा होता है जब श्रमिक एकदम बेकार हो जाते हैं। "कृषि श्रमिकों के निरंतर रोजगार संबंधी अध्ययनों से यह पता चलता है कि पंजाब तथा तमिलनाडु में 200 दिन, बंगाल तथा महाराष्ट्र एवं गुजरात में लगभग 220 दिन, बिहार, कर्नाटक तथा मध्यप्रदेश में 200 से 250 दिन तथा कुछ प्रातों में औसतन 200 से 225 दिनों तक का काम ही कृषि श्रमिकों की आय का साधन बनता है। कुछ ही क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ 300 दिनों से अधिक का कार्य उपलब्ध रहता है।"[32] इसी प्रकार उद्योगों के निर्माण कार्य, कारखानों के निर्माण कार्य आदि में लगे हुए श्रमिकों की अवस्था भी ऐसी ही होती है। निर्माण कार्य समाप्त होने के बाद ये श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं। इन्हें दूसरे किसी निर्माण कार्य के आरंभ की अपेक्षा करनी पड़ती है। लेकिन वहाँ पर भी सभी को काम मिलना संभव नहीं होता और वे बेरोजगार हो जाते हैं। कारखानों में भी किसी बड़े उत्पादन के कार्य को पूरा करने के लिए कुछ अधिक श्रमिकों को ठेके पर लिया

[32] भारतीय समाज की संरचना, हेमलता श्रीवास्तव-पृ.14

जाता है एवं काम समाप्त होने के साथ ही उन्हें निकाल दिया जाता है, जिसके कारण उन्हें बेरोजगार होना पड़ता है।

2.4 ऋणग्रस्तता की समस्या

आय के सीमित स्रोत तथा कम मजदूरी के कारण श्रमिक की आर्थिक दशा दयनीय हो जाती है। पारिवारिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति के लिए तथा जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन श्रमिकों को उधार लेना पड़ता है। इस कारण ऋण का ब्याज चुकाने में ही वे परेशान रहते हैं, मूल चुकाने की बात तो स्वप्न मात्र बनकर रह जाता है। इस कारण कभी-कभी उन्हें बंधुआ मजदूर भी बनना पड़ता है। "एक सर्वेक्षण के अनुसार श्रमिकों की 4/6 आमदनी ऋण चुकाने में ही समाप्त हो □ाती है।"[33] ऋणग्रस्तता कृषि श्रमिकों के लिए और भी शोचनीय होती है। कई कृषि श्रमिकों का संपूर्ण जीवन ऋणग्रस्तता में ही व्यतीत हो जाता है। ब्याज पर ब्याज चढ़ता जाता है और मूल चुका पाने की असमर्थता उसे कर्जे के भँवर में डुबो देती है। ऋणग्रस्तता का मूल कारण यह होता है कि ये कृषि श्रमिक निरक्षर होते हैं। अतः महाजनों द्वारा लिखा-पढ़ी में भरपूर बेईमानी कर इन कृषि श्रमिकों का शोषण करते रहते हैं। ऋणग्रस्तता की समस्या मूल रूप से श्रमिक को बंधुआ मजदूर बनने पर मजबूर कर देती है। यह समस्या श्रमिकों में अपराध की मनोवृत्ति को भी जागृत कर देता है।

2.5 व्यक्तिगत समस्याएँ

श्रमिक, समाज की आर्थिक संरचना में उत्पादक भी होता है और बहुत हद तक उपभोक्ता भी। उसके व्यक्तिगत जीवन की समस्याएँ श्रम समस्याओं से पृथक् नहीं हो सकतीं। बीमार रहने के कारण अवकाश काल का समाप्त हो जाना, अधिक तनाव के कारण मानसिक कुंठाओं में जीवित रहना, काम की अनिश्चितता के कारण चिंताग्रस्त रहना, विवाह के दायित्व से मुक्त होने के लिए ऋणग्रस्त होने की

---

[33] भारतीय समाज की संरचना, हेमलता श्रीवास्तव-पृ.414

विवशता, स्थायी आवास के अभाव के कारण पत्नी तथा बच्चों को साथ न रख पाने की कुण्ठा और इन सब से उत्पन्न उसके व्यक्तित्व का विघटनात्मक पक्ष उसकी कार्यकुशलता को प्रभावित करता है। उसकी नितांत व्यक्तिगत समस्याएँ वस्तुतः सामूहिक श्रमिक समस्याओं का रूप धारण कर लेती हैं। उचित मजदूरी और निश्चित कार्य के अभाव में औद्योगिक श्रमिकों का जीवन स्तर काफी नीचा हो जाता है। न तो उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है न ही संतुलित तथा पर्याप्त भोजन मिल पाता है। गंदी बस्तियों का निवास इस स्तर को और भी नीचे गिरा देता है। अपने हालातों से समझौता करने के लिए इन्हें बुरी आदतों की लत लग जाती है और जुएबाजी, शराब खोरी तथा वैश्यावृत्ति जैसे अपराधों में डूबकर भी ये अपने जीवन स्तर को सुधारने के प्रयास में असफल सिद्ध होते हैं। नगरों में ईंधन, साबुन तथा तेल महंगे मिलने के कारण यह समस्या औद्योगिक श्रमिकों के लिए और भी विकट हो जाती है। मूल रूप में कहें तो भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा के स्तर पर श्रमिकों की व्यक्तिगत स्थिति शोचनीय होती है।

2.6 प्रवास की समस्याएँ

पूँजीवाद के प्रवेश एवं अंग्रेज़ी शासन के आगमन के साथ ही भारतीय श्रमिक वर्ग का जन्म गाँव में ही हुआ। इसके बाद औद्योगिक क्रांति के प्रभाव एवं नगरीकरण के कारण गाँव के श्रमिक शहरों को प्रवासित होते गए। इस कारण प्रवासिता भारतीय श्रमिकों की सबसे बड़ी समस्या बन कर रह गयी है। यह समस्या अनेक अन्य प्रकार की समस्याओं को भी जन्म देती है। प्रवासित श्रमिकों की सबसे बड़ी समस्या भाषा की होती है। एक जगह से दूसरे जगह पर जा कर काम करते समय उस नए जगह की भाषागत अज्ञानता श्रमिकों के लिए मुश्किलें पैदा करती हैं। औद्योगीकरण के फलस्वरूप जब कुटीर उद्योगों का पतन होता है तो बड़े उद्योग जन्म लेते हैं। नये उद्योग धंधे खुलने पर जनसंख्या में वृद्धि होती है जो मूलतः गाँव से आती है। भूमि पर जनसंख्या के अधिक दबाव के कारण आवास की समस्या बनी रहती है। यह समस्या सामान्य श्रमिक को अपने परिवारों से दूर रहने पर विवश

करती है जिसके कारण वे अवसर पाते ही प्रवास करते हैं। प्रवास जनित समस्याओं के कारण भारतीय श्रमिक संगठन के निर्माण में भी अनेक बाधाएँ आई थीं। प्रवासिता स्वयं श्रमिकों के लिए समस्या बन जाती है। क्योंकि इसके कारण उनकी कार्य-कुशलता में कमी, काम की अनिश्चितता, वेतन में कटौती, स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव, एकाग्रता की कमी तथा भावनात्मक असंतुष्टि की मात्रा बढ़ती है।

2.7 भर्ती की समस्या

भर्ती की समस्या मुख्य रूप से औद्योगिक श्रमिकों को अधिक भोगना पड़ता है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों जैसे कारखानों, खादानों या बागानों आदि में प्रायः श्रमिकों की भर्ती का कार्य मध्यस्थों या बिचौलियों द्वारा किया जाता है। ये मध्यस्थ विभिन्न नामों से पुकारे जाते हैं जैसे सरदार, चौधरी, जाबर, मुकद्दम, मिस्त्री या ठेकेदार। भर्ती के नाम पर ये लोग पक्षपात भी करते हैं और शोषण भी। एक तरफ जहाँ पुरुष श्रमिकों से घूस लेते हैं वहीं दूसरी तरफ स्त्री श्रमिकों का दैहिक शोषण भी करते हैं। आज के परिप्रेक्ष्य में ये मध्यस्थ ही श्रमिकों के लिए सबसे बड़ी समस्या बन रहे हैं। श्रमिकों का शोषण ये लोग उभय शारीरिक और मानसिक स्तर पर करते हैं। श्रमिकों को नौकरी पर रखवाना और पक्का करवाना, निकाल देना और पदोन्नति कराना आदि सभी काम इन्हीं की मर्जी पर निर्भर करता है। इस कारण ये लोग केवल उन्हीं श्रमिकों की भर्ती करवाते हैं जो इन बिचौलियों की चापलूसी करते हैं और घी-वेल की आपूर्ति भी। फलस्वरूप अकुशल श्रमिकों को काम मिल जाता है और दक्ष तथा कुशल श्रमिक बेरोजगार रह जाते हैं। ये मध्यस्थ भर्ती के समय जाति-धर्म के आधार पर पक्षपात करते हैं। कभी-कभी अपने ही राज्य, गाँव या कस्बे के लोगों को भर्ती कर लेते हैं और शेष को छोड़ देते हैं। इन्हीं मध्यस्थों के कारण श्रमिकों तथा मालिकों का प्रत्यक्ष संबंध नहीं हो पाता। इसका लाभ उठाकर भर्ती करनेवाले ये लोग श्रमिकों तथा मालिकों के कान एक दूसरे के विरुद्ध भरते रहते हैं, जिस कारण मतभेद की स्थिति बनी रहती है। मध्यस्थों की कूटनीति के कारण अथवा कई बार मालिकों की चतुरता के कारण औद्योगिक श्रमिकों को स्थाई नहीं किया जाता।

आर्थिक लाभों से वंचित होकर ये श्रमिक सदैव ही अनिश्चितता की स्थिति में जीते हैं और मालिकों की ओर से लगातार पुराने श्रमिकों की छँटनी तथा नए श्रमिकों की भर्ती होती रहती है।

2.8 श्रमिक संगठनों का अभाव

औद्योगिक श्रमिक हो चाहे कृषि श्रमिक इन सभी के लिए श्रमिक-संगठन की आवश्यकता होती है। आज के समय में सभी औद्योगिक प्रतिष्ठानों में श्रमिक संगठन विद्यमान हैं। क्योंकि इन संगठनों का मुख्य काम श्रमिकों के हर प्रकार की समस्याओं को मालिकों के सामने प्रस्तुत करना तथा उनका निराकरण करना है। लेकिन यह संगठन या संघ प्रायः अपने कर्तव्य से हट जाते हैं। अपने लाभ के लिए श्रमिकों को डरा-धमकाकर अनावश्यक हड़तालें करते हैं और आम समस्याओं को छोड़ देते हैं। इस कारण एक ईमानदार एवं कर्तव्यपरायण श्रमिक संघ का अभाव प्रायः औद्योगिक संगठनों में देखी जाती है। श्रमिक संघ का अभाव कृषि-श्रमिकों के बीच अधिक देखा जाता है। भारत के कृषि श्रमिकों की एक महत्वपूर्ण समस्या इनकी संगठनात्मक शक्ति का अभाव है। औद्योगिक श्रमिकों के जितने संगठन तथा उनकी जितनी संगठनात्मक शक्ति है उतना इन श्रमिकों में नहीं। मौका पड़ने पर सम्मिलित रूप से इन्होंने आंदोलन चलाए हैं किंतु कभी किसी संगठनात्मक संस्था के निर्माण का प्रयास नहीं किया। "बंगाल तथा बिहार के कृषक आंदोलनों में सहभाग भी लिया किंतु पृथक् रूप से मात्र कृषि-श्रमिकों का अपना कोई संगठन न बना सके। तात्पर्य यह है कि बाहरी लोगों के साथ होने वाले संघर्ष में कृषक समाज के रूप में तो इन्होंने संगठनों में भागीदारी की किंतु कृषि श्रमिकों के रूप में धनी कृषकों या भूपतियों के खिलाफ संघर्ष करने के लिए कोई शक्तिशाली संगठन नहीं बनाया।"[34] इस प्रकार एक अच्छे और संगठनात्मक श्रमिक संघ के अभाव के कारण न तो ये श्रमिक अपनी समस्याओं का निदान कर पाते हैं और न ही अपना विकास कर पाते हें।

---

[34] भारतीय समाज की संरचना, हेमलता श्रीवास्तव-पृ.15

श्रमिक चाहे औद्योगिक क्षेत्र का हो या कृषि क्षेत्र का, सभी को इन समस्याओं से सम्मुखीन होना पड़ता है। भारतीय मजदूर वर्ग की प्रारंभिक परिस्थितियाँ यूरोपीय मजदूरों के प्रारंभिक शोषण, कम वेतन, आवास की हीनता और कार्य घंटों तथा महिला एवं बाल श्रमिकों की प्रचुरता से कहीं अधिक विभीषिकामय रही है। कम वेतन एवं कार्य घंटों का आधिक्य प्रारंभ से ही श्रमिकों के लिए विकराल स्थितियाँ पैदा करती रही है। औपनिवेशिक अधिशासन के समय से ही कामकरने की समय-विधि एवं आवास जनित समस्याएँ श्रमिकों को भोगनी पड़ती रही हैं। शुरुआत में पुरुषों, महिलाओं तथा बच्चों सभी प्रकार के श्रमिकों के लिए 16 घंटों का एक सा कार्य दिन तय था। वेतन वही दो आना और सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। कारखाना श्रमिक आयोग के एक सर्वेक्षण के अनुसार अहमदाबाद और बाबई में कार्यदिवस 12 घंटों का था। कलकत्ता के ब्रिटिश स्वामित्व की जूट मिलों में कार्य दिवस 16 घंटों तक भी पहुँच जाते थे। आटा मिलों व छापाखानों में कार्यदिवस 20 से 22 घंटों के होते थे। बाल श्रमिक कारखाने की पूरी कार्यविधि 10 से 14 घंटे तक का काम करते थे। कई मील दूर रहने वाले बच्चे 3 बजे प्रातः का सायरन सुन कर अंधेरी रात में पैदल चलकर कारखाने पहुँचते थे। पूरी-पूरी रात काम करने के कारण अनेक महिला श्रमिकों की मृत्यु भी हो जाती थी। इन तथ्यों की पूर्ति 1931 के श्रम आयोग ने भी की थी। जहाँ एक तरफ इस कार्य-दिवस की अवधि के आधिक्य के कारण कोई नरक भी इन कारखानों की खून चूसने वाली प्रणालियों से अधिक भ्यानक नहीं हो सकता था, वहीं दूसरी तरफ कम वेतन की समस्या इन श्रमिकों के जीवन को और भी नारकीय बनाती जा रही थी। भारतीय श्रमिकों का वेतन स्तर 1830 के उद्योगों के पहले के वर्षों में भी वही था जो उत्कर्षित श्रमिक वर्ग को 1895 में मिल रहा था। वास्तव में यह वेतन स्तर ग्रामीण श्रमिक का वेतन स्तर था।

इस पूरे दौरान श्रमिकों के आवास की हालत यह थी कि एक परिवार के पास एक पूरा कमरा भी नहीं था। खिड़की व रोशनदान के बिना गंदगी से भरी तंग ‘कोठरी’ में कई-कई परिवार निवास करते थे। भारत के नव औद्योगीकरण के कर्ता

ये श्रमिक, स्वास्थ्य और नैतिक अधःपतन के नारकीय कोठरों में रहते थे। 1931 की जनगणना से ज्ञात हुआ कि 15 हजार लोग प्रति कमरा 20 लोगों की संख्या में भी रहते थे। "मजदूर नेता शिवराव ने इन हौलियों का विवरण यों दिया है-'गंदी, महामारियों से लदी और सडांध से परिपूर्ण श्रमिक बस्तियाँ, हावड़ा व उत्तरी-कलकत्ता के निवासी जूट श्रमिकों का घर है। इनमें खिड़की, चिमनियाँ नहीं हैं और दबे दरवाजों में आप कोहनियों के सहारे ही जा सकते हैं। मलके और शौचालय नहीं हैं। बस्तियों में प्रविष्ट होने के लिए आप को सडांध भरी सुरंग से गुजरना पड़ता है। बरसात में यह सुरंग कीचड़ का नाला बन जाता है और इसमें मच्छरों-मक्खियों के अनगिनत झुंड पोषित होते हैं। यह बंगाल की सबसे बड़ी म्यूनिसिपैलटी, हावड़ा की हालत है।'"[35] इस प्रकार के अस्वास्थ्यकर माहौल में वास करने के उपरांत भी इन श्रमिकों को न तो सही वेतन मिल पाता था और न ही आराम। बंबई और मद्रास के हजारों श्रमिकों का घर फुटपाथ ही होता था। इन विडंबनाओं, शोषण और संघर्ष के साथ ही श्रमिक अपनी समस्याओं के साथ ही जीते थे। क्योंकि न तो इनके पास इन समस्याओं का समाधान था और न ही विद्रोह करने का साहस।

3. भारत में पूँजीवाद का उदय और श्रमिक जीवन

भारतीय श्रमिक वर्ग के इतिहास में पूँजीवाद का आगमन और विकास अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विदेशी पूँजी के आगमन के साथ ही भारत में 'श्रमिक वर्ग' का स्वरूप अपेन अस्तित्व में आता है। 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के आगमन के साथ ही भारत में विदेशी पूँजी का प्रवेश माना जाता है। पूँजी के इस आगमन ने न केवल अपने लाभ को ही महत्व दिया वरन् भारत के सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को तोड़कर उस पर अपनी नीतियों की स्थापना करना चाहता था और सत्ताधिकार की मनसूबों के साथ वर्चस्व स्थापित करने का उद्देश्य भी था। पूँजीवाद समाज भौतिक संस्कृति, जो उत्पादन, यंत्र, संपत्ति लाभ से संपर्क रखता है, के आधार पर बनता और विकसित भी होता है। पूँजीवाद को सामंतवाद का विकसित रूप माना जाता है।

[35] भारत का मजदूर आंदोलन, सुकोमल सेन-पृ.13

पूँजीवाद मूलतः अपनी पूँजी के आधार पर उत्पादक शक्तियों के विकास और प्रकारों को प्रस्तुत करता है। इसके परिणामस्वरूप श्रम उत्पादकता में वृद्धि सामूहिक-श्रम के बजाय व्यक्तिगत श्रम के माध्यम से भी संभव हो जाता है। पूँजीवादी उत्पादन पद्धति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए डॉ.रामविलास शर्मा ने कहा है-"16 वीं से लेकर 20 वीं सदी के उत्तरार्द्ध के अंतिम चरण तक इंग्लैंड और यूरोप के सामाजिक विकास की मंजिल पूँजीवाद की है। पूँजीवाद कई तरह का होता है और उसकी कई मंजिलें हैं। माल तैयार करना, मुनाफे पर उसे बेचना और उसे बेचने के लिए पूँजी एकत्रित करना, ये तीनों काम साथ-साथ होते हें। माल तैयार करने का काम पूँजीवाद से पहले भी होता था। पर वह बड़े पैमाने पर मुनाफा कमाने के लिए न किया जाता था। विनिमय के लिए सोना-चाँदी या सिक्कों से पहले भी काम किया जाता था। बहुत से लोगों का धन एक जगह बटोरकर बैंकों के माध्यम से उद्योग-धंधों और व्यापार में लगाने के लिए बड़ी-बड़ी रकम उधार देने की व्यवस्था पहले न थी। उद्योग-व्यापार और महाजनी, पूँजीवाद में यह तीनों होते थे। कारीगर जो माल बनाते हैं, उस पर उनका अधिकार नहीं होता। सौदागर पेशगी धन देकर कारीगर की श्रम-शक्ति खरीद लेता है, इन दो विशेषताओं के कारण उत्पादन का यह तरीका 'पूँजीवाद' कहलाता है।"[36] इस प्रकार देखा जाए तो पूँजीवाद वह है जो हर संभव ढंग से अपने लाभ के लिए श्रम-शक्ति को खरीदता है और उत्पादन प्रणाली को ही अधिक महत्व देता है। पूँजीवाद का सूत्रधार पूँजीपति ही होता है। मार्क्स ने इसे बुर्जुआ वर्ग कहा है। उसके अनुसार-"बुर्जुआ से मतलब आधुनिक पूँजीपति वर्ग से, अर्थात् सामाजिक उत्पादन के साधनों के स्वामियों, उजरती श्रम का उपयोग करनेवालों से है।"[37]

भारत में पूँजीवाद का आगमन भी इसी प्रकार भौतिक उत्पाद-प्रणालियों को अपने साथ लिए आता है। सामूहिकता के स्थान पर व्यक्तिगत-श्रम की स्थापना

---

[36] भारत में अंग्रेज़ राज और मार्क्सवाद-पृ.18
[37] कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र, मार्क्स-एंगेल्स-पृ.30

और महत्व ने भारत के सामाजिक, आर्थिक तंत्र को पूरी तरह तहस-नहस कर दिया और विभिन्न कारकों की उत्पत्ति और प्रक्रिया के फलस्रूप भारत का श्रमिक वर्ग अपने अस्तित्व में आता रहा। भारत में पूँजीवाद के आगमन के साथ ही उद्योगों की स्थापना, शहरीकरण आदि कुछ ऐसे कारक हैं जो न केवल श्रमिक वर्ग को प्रतिष्ठित करते हैं बल्कि उसे हर दृष्टिकोण से प्रभावित भी करते हैं।

3.1 आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था में असंतुलन

भारत में हजारों वर्षों से एक विशेष प्रकार की आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था चली आ रही थी, जो इसे अपने आप में विशेष बनाए रखे हुए थी। वह थी खेती की व्यवस्था एवं घरेलू उद्योग-धंधों का अन्योन्याश्रित संबंध। भारत मूलतः एक गाँव-प्रधान देश रहा है। अतः भारतीय ग्राम्य-जीवन अर्थतंत्र की इस विशेष प्रणाली पर निर्भर कतरी थी और यह इसकी विशेषता भी थी। गाँव के निवासी या तो कृषक थे या अपने लघु-उद्योग-धंधों में कार्यरत शिल्पकार या कारीगर थे। इस कारण प्रत्येक गाँव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन एवं निर्माण स्वयं कर लेने में समर्थ था। कार्य-व्यापार की संपूर्णता में गाँव स्वयं एक इकाई था। इस प्रक्रिया में सामूहिक श्रम को ही अधिक महत्व दिया जाता था। क्रय-विक्रय का माध्यम धन नहीं था, अपितु एक-दूसरे द्वारा निर्मित वस्तुओं का आदान-प्रदान था। "इतिहासकारों का यह मानना था कि कार्य-विभाजन की यह सुनिश्चित एवं सुदृढ़ प्रणाली थी जिस पर संपूर्ण भारतीय जीवन की स्थिरता एवं संतुलन निर्भर था। व्यवस्था की यह सहज पद्धति ही वही कारण है, जो भारतीय ग्राम-समाज की एकरूपता को विच्छिन्न होने से बचाता रहा है।"[38] क्योंकि यह एकरूपता भारत में आए भयंकर राजनीतिक प्रभंजनों से अछूत रहती आई थी। लेकिन अंग्रेज़ों के निरंकुश शासन ने भारत की इस व्यवस्था के नींव को खोखला करने का हर संभव प्रयास किया।

[38] मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास, डॉ.एन.रविंद्रनाथ-पृ.68

भारत के इस पारंपरिक आर्थिक व्यवस्था पर सूक्ष्म टिप्पणी करते हुए मार्क्स कहते हैं-"बहुत पहले से ही भारतीय समाज में सुस्थापित ग्राम समाजों का जाल था। प्रत्येक ग्राम समाज का आधार एक सार्वजनिक भूमि संपदा थी। साथ ही कृषक जीवन को सुगम बनाती हुई दस्तकारी का संपुट था। विशिष्ट सामाजिक कर्मी का बटावारा अपरिवर्तनीय था। x x x आवश्यकता से अधिक की कोई भी वस्तु बेची नहीं जाती थी, केवल आपस में आदान-प्रदान या 'व्यहृत' कर ली जाती थी। हाँ, आवश्कयता से अधिक वह उत्पादन जो राज्यकर बनता था अवश्य क्रय-विक्रय होता था। सामुदायिक कृषि भूमि को सब मिलकर बोते थे और फसल को बाँट लेते थे-चर्खा-करघा हर घर में चलता था। चौकसी, करों की उगाही हर प्रकार का लेखा-जोखा व हर प्रकार के निर्णय आदि सारे गाँव का बंदोबस्त गाँव का मुखिया करता था। एक दूसरा वर्ग अपराध निवारण, पड़ोसी ग्राम-समाज से सीमा प्रतिपालन व यात्रियों की सुरक्षा-व्यवस्था करता था। एक तीसरा वर्ग तालाबों व अन्य जल साधनों का प्रबंध करता था। x x x लोहार, बढ़ई, नाई, धोबी तथा यत्र-तत्र कवि भी इसमें होते थे। ... यह कार्य विभाजन पूँजीवादी व्यवस्था जिसमें तैयार माल की खपत के 'बा□ार' बनते-बिगड़ते रहते हैं, से कहीं अधिक श्रेष्ठ था, क्योंकि लोहार बढ़ई के शिल्प का उपयोग करने वाले (ग्राम-समाज के किसान) निश्चित थे। इन ग्राम समाजों के संगठन की सरलता ही उनकी मजबूती थी। ... ऊपर ही ऊपर गरजकर निकल जाने वाले, एक के बाद एक आते शहंशाही तूफान और युद्ध, इन ग्राम समाजों के ढाँचों के आर्थिक स्वरूप को कभी ढीला नहीं कर पाए।"[39] यह टिप्पणी इस बात को पुख्ता करती है कि भारतीय ग्राम-व्यवस्था संपूर्णता की इकाई के रूप में कार्यरत थी जहाँ न कोई स्वामी था और न कोई सेवक या दास।

ग्राम व्यवस्था की सामाजिक, आर्थिक दृढ़ता को अधिक उभारते हुए मार्क्स 'भारत में ब्रिटिश शासन' लेख में कहते हैं कि भारत के अतीत का राजनीतिक स्वरूप चाहे कितना भी बदला हुआ दिखलाई देता हो, पर प्राचीन काल से लेकर 19

---

[39] पूँजी भाग-1, कार्ल मार्क्स (1954)-पृ.357-58, अनुवाद-ओमप्रकाश संगल

वीं शताब्दी के पहले दशक तक, उसकी सामाजिक स्थिति अपरिवर्तित ही बनी रही।"[40] शक, हूण, यवन जो भी विदेशी यहाँ पर आये वे या तो धन-लूटने की इच्छा से प्रेरित होकर आए या फिर भारतीय राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की मनसा से आए। लेकिन अंग्रेज़ों ने भारत में जो नीतियाँ अपनाई वह विदेशियों द्वारा अपनाई गई नीतियों से सर्वथा भिन्न थीं। 'ईस्ट इंडिया कंपनी' ने भारतीय जीवन के धरातल पर अपनी दृष्टि को स्थिर या सीमित नहीं किया, अपितु अनःस्थल में प्रवेश कर भारतीय ग्राम व्यवस्था को ही विच्छृंखलित कर दिया। उसने गाँव की इस आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था की आधार की तह में जाकर प्रहार किया। उसने घरेलू उद्योग-धंधों और किसानी व्यवस्था को ही अपना निशाना बनाया। परिणाम यह हुआ कि खेती और उद्योग-धंधों का अन्योन्याश्रित संबंध टूटा, भारतीय जीवन असंतुलित हुआ और यहाँ की जनता दिन-ब-दिन निबट कंगाली में डूबती गयी।

सन् 1757 के प्लासी युद्ध की विजय के बाद अंग्रेज़ शासकों ने इन्हीं ग्राम-समाजों के अतिरिक्त उत्पादनों पर बहुत ज्यादा चौथ लगाकर, तथा प्रायः मनचाही लूटों के जरिए भारत की दौलत को समुद्र पार भेजना शुरू कर दिया। उन्होंने कर्ज देने व उगाही के महाजनी धंधों को भी अपनी भारी लूट का बहाना बनाया। "सन् 1757 के बाद के प्रथम 50 वर्षों में ईस्ट इंडिया कंपनी के लुटेरे यहाँ अपने आधिपत्य के छोटे से क्षेत्र से उस जमाने में 2 करोड़ रुपये प्रति वर्ष ढो ले गये।"[41] आकर्षण का कारण यह भी था कि यह पैसे वे लाभ के आकार में ढो लेते थे। प्लासी युद्ध में विजय के बाद भारत में अंग्रेज़ों के शासन की नींव गहरे जम चुकी थी। विभिन्न नीतियों और कर-वसूलन की प्रणालियों के माध्यम से वे किसानों और शिल्पकारों से लगान वसूलने लगे। उनकी नीतियाँ सदैव बदलती रहती थीं। इन नीतियों के साथ-साथ देश में पड़ रहे अकाल (जैसे-सन् 1770 का अकाल, सन् 1776 का सूखा और अकाल)[42] भारतीयों को और अधिक दरिद्र बनाता जा रहा था

---

[40] मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास, डॉ.एन.रवींद्रनाथ-पृ.69

[41] भारत का मजदूर आंदोलन, सुकोमल सेन, अनुवाद-आर.एस.यादव-पृ.6

[42] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, सव्यसाची भट्टाचार्य-पृ.45

और अंग्रेज उन्हें अपनी आवश्यकता अनुसार काम में प्रयोग कर पाते थे। इन किसानों-शिल्पकारों के प्रति किसी प्रकार की छूट की कोई संभावना नहीं थी। "भू-राजस्व की वसूली ऐसी कठोरता से की गई थी कि 1770 के अकाल वर्ष में, बंगाल के एक तिहाई बाशिंदों की मौत के बावजूद, भू-राजस्व एकदम ठीक जमा हुआ था।"[43]

परंतु सन् 1857 के विद्रोह के बाद परिदृश्य में कुछ परिवर्तन आए। अंग्रेज़ शासकों ने अपनी नीतियों को बदला और साम्राज्यवादी हथकंडों को अपना कर देशी सामंतों का संरक्षक बन गया। बंगाल और उत्तर पश्चिम के अवध आदि सूबों में एक नवीन जमींदार वर्ग को उत्पन्न किया गया, जो जनता के विरुद्ध ब्रिटिश शासन का, अपने स्वार्थों के कारण प्रबल समर्थक बना। विभिन्न आर्थिक और सामाजिक हथकंडों को अपनाकर अंग्रेज़ शासकों ने भारत की आत्मनिर्भर ग्रामीण-व्यवस्था की कमर तोड़ दी तथा भारत का संबंध विश्व-बाज़ार से जोड़ा। इसके साथ ही उन नवीन वर्ग-जमींदार वर्ग को उत्पन्न किया जो औद्योगिक विकास में उनका सहायक हो सकता था और ऐसा ही हुआ।

3.2 पूँजीवाद का प्रवेश

भारत में पूँजी तथा पूँजीवाद का प्रवेश और उदय-सभी का उत्तरदायी अंग्रेज़ शासन तंत्र तथा ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यवसाय व्यापकता ही है। किसानी और लघु उद्योगों पर से मूल निवासियों की प्रभुत्व को हटा अपने अधिकार और अपनी पूँजी को स्थापित करने के लिए वह अपने हितों में नीतियों और व्यवस्थाओं का संयोजन करता रहा। सबसे पहले उसने किसानी और भूमि व्यवस्था पर सीधा प्रहार किया। स्थायी मंडी बनाने और स्थिर राज्यकर हथियाने की नियत से 18 वीं सदी के अंतिम चरण में अंग्रेज़ शासकों ने सन् 1979 में 'पक्का बंदोबस्त'[44] जैसे विध्वंसकारी भूमि-विधेयक लागू किए। इसके अंतर्गत ग्राम समाजों और किसानों से

[43] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, सव्यसाची भट्टाचार्य-पृ.46

[44] भारत का मजदूर आंदोलन, सुकोमल सेन-पृ.6

जमीन की संपत्ति-अधिकार छीन कर, अंग्रेज़ों के एक दलाल को सारी भूमि का स्वामी बना दिया गया। यह 'दलाल' ही आगे चलकर देश के 'जमींदार' बने। इनका काम लगान या मालगुजारी वसूल करना ही था। लेकिन इस दलाल पर अपना नियंत्रण रखने के लिए, उस पर भी एक वार्षिक मालगुजारी नियत कर दी गई, जिसे न अदा करने पर उसकी जगह दूसरा दलाल लगा दिए जाने का विधान था। इसके चलते इन दलालों ने, जो गाँववालों के लिए जमींदार बन गए थे, अपनी दलाली बचाने के लिए हर संभव प्रयास करते थे। पहले अनाज के रूप में लगान चुकाने की पद्धति के कारण किसान को अपनी पैदावार का विनिमय बाजार में करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन अब गाँव का समस्त उत्पादन बाजार में जाने लगा और किसान का जीवन बाजार पर अवलंबित हो गया। इस कारण किसान बाजार का दास बनकर रह गया और उसकी दृष्टि धीरे-धीरे व्यापारिक पैदावार की ओर आकर्षित होने लगा। इधर दक्षिण भारत में अंग्रेज़ों ने 'पक्का बंदोबस्त' की तरह ही 'शच्चाबाड़ी'[45] व्यवस्था को लागू किया। इसके अंतर्गत किसान पट्टेदार तो था पर उसे अपनी कठिन मेहनत से अनेक प्रकार के राजकीय व सामंती नजराने चुकाने पड़ते थे। ये नजराने उसके व्यक्तिगत दायित्व थे, चाहे वह जमीन जोते या नहीं। यह बंदोबस्त किसान को अपनी ही जमीन में भूमि-दास बनाने की एक प्रक्रिया थी। इन दोनों ही विधेयकों के आधार पर संपूर्ण पैदावार और निर्मित वस्तुएँ बाजार के अधिकार में आने लगीं और पैसे वाले बाज़ार के स्वामी बन गए। अपनी पैदावार को बेचकर भी जब किसान की आवश्यकताएँ पूर्ण न हो सकीं तो वह साहूकार से कर्ज लेने लगा। परिणामस्वरूप किसान गरीबी का शिकार होता चला गया और क्रमशः उसकी जमीन गई, औजार गए और वह श्रमिक बनकर रह गया।

भूमि-विधेयकों की इन नीतियों के बाद अंग्रेज़ी शसकों का शिल्पकारों और कारीगरों पर तीसरा आघात था-'उन्मुक्त व्यापार'। "सन् 1813 में अंग्रेज़ी पूँजीपतियों ने भारत को ईस्ट इंडिया कंपनी के एकमात्र शिकंजे से मुक्त करवा

[45] भारत का मजदूर आंदोलन, सुकोमल सेन-पृ.6

लिया। इसके बाद के 15 वर्षों में ही भारत के लिए ब्रिटिश कपड़े का निर्यात चार गुना बढ़कर 11 करोड़ रुपया तक पहुँच गया। ... इस श्री वृद्धि के लिए अंग्रेज़ शासकों ने भारतीय वस्त्र उद्योग कारीगरों के केवल अंगूठे ही नहीं काटे, बल्कि भारतीय रेशम और मलमल पर पैनी चौथ भी लगा दी।"[46] भारत के अन्यान्य शिल्प उद्योगों के साथ भी यही हुआ। यहाँ के गृह उद्योगों का विनाश करके एवं अपनी आवश्यकता अनुसार कच्चे माल की जरूरत को पूरा करने के लिए कृषि-शिल्प के संतुलन को तोड़ दिया और बेकार कारीगरों को कृषि पर निर्भर करने पर बाध्य कर दिया जबकि किसान पहले ही भूमि-व्यवस्थाओं के कारण श्रमिक बनने पर मजबूर हो रहा था। "भारत के पूँजीवाद के विकास का प्रकरण गाँवों की इसी दैन्यपूर्ण, शोषित और निकर्मण्य बनाये गये दस्तकारों के भार-वहन के परिवेश में संपादित होना था।"[47]

किसान और शिल्पकार धीरे-धीरे गरीबी और बेरोजगारी के अंधकार में फँसता जा रहा था। कर्ज और लगान का बोझ अलग ही अपनी भूमिका अदा कर रहे थे। अतः किसानों और श्रकिों को इन पूँजीपतियों के पास, अपना श्रम बेचना ही पड़ा। इन परिस्थितियों में वे हर प्रकार का कार्य करने के लिए प्रस्तुत थे। श्रम के बदले उन्हें उजरत के नाम पर कुछ पैसे या फिर सामान दिया जाता था। यह दौर पूँजीवाद को अपने जड़ें जमाने के लिए आवश्यक भूमि प्रदान कर रहा था, क्योंकि अपने भौतिक उत्पादन प्रणाली में इन्हें जहाँ एक तरफ सत्ता श्रम मिल रहा था वहीं कम लागत में अधिक मुनाफा कमाने का अवसर भी।

मूल रूप से भारत की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था का विनाश कृषि-शिल्प संबंध का टूटना, किसानों और कारीगरों का श्रमिक बन जाना, जमींदारों और दलालों की संख्या में वृद्धि तथा बाजार की संकल्पनाओं और स्वरूप के विकास के फलस्वरूप भारत में पूँजीवाद की स्थापना होती गई। एक ओर अंग्रेज़ अपनी

---

[46] भारत का मजदूर आंदोलन, सुकोमल सेन-पृ.6
[47] भारत का मजदूर आंदोलन, सुकोमल सेन-पृ.7

विदेशी पूँजीवादी नीतियों के साथ घुसपैठ कर रहे थे, वहीं जमींदार, साहूकार, दलाल आदि के रूप में ये लोग भारत के प्रथम पूँजीपति बने और भारत में पूँजीवाद अपना वर्चस्व विस्तार करता जा रहा था।

3.3 उद्योगों की स्थापना और श्रमिक जीवन

पूँजीवाद के आगमन और विकास के साथ ही भारत में उद्योगों की संकल्पना सामने आई। भारतीय समाज का इतिहास यह बताता है कि लगभग 1760 तक उद्योगों का स्वरूप हस्तकलाओं के अधीन नहीं था। समस्त प्रयुक्त होनेवाले वस्तु और उपकरणों का निर्माण मनुष्य स्वयं अपने हाथों से करता था। कार्य करने वाला स्वयं ही पूँजी लगाता था और स्वयं श्रम भी करता था। दूसरे शब्दों में कहें तो उस युग में हस्तकला-उद्योग में पूँजीपति और श्रमिक एक ही व्यक्ति होता था। बा□ारों की परंपरा न रहने के कारण निर्माता उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष संपर्क रखता था। उपभोक्ता के निर्देश पर कारीगर निर्माण कार्य करता था और वस्तु के बदले वस्तु अथवा मुद्रा प्राप्त करके अपनी आवश्यकताओं की आपूर्ति करता था। उस समय यही उद्योगों की परिभाषा थी। लेकिन मानव समाज के इस इतिहास को ब्रिटेन के औद्योगिक क्रांति ने पूर्ण रूप से बदल कर रख दिया। "1785 में जब ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति घटित हुई तो जेम्स हवाट के खोजी गई चमत्कारी वाष्प-शक्ति के चमत्कार ने कपड़ा मिलों में मशीनों को हटाकर तहलका मचा दिया। मशीनों और यंत्रों ने समस्त संसार को प्रभावित किया और औद्योगिक क्रांति की मशाल का प्रकाश धीरे-धीरे समस्त देशों की सीमाओं तक पहुँच गया... भारत पर भी इसका प्रभाव पड़ा।"[48]

मूल रूप से भारत में उद्योगों की संकल्पना और स्वरूप को अंग्रेज़ों ने ही मूर्त रूप दिया और भारत में उद्योगों का प्रवेश ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के साथ ही हो गया था एवं औद्योगिक क्रांति के प्रभावों का प्रवेश भी इसी कंपनी की देन ही है। अंग्रेज़ों ने भारत की मूल आर्थिक सामाजिक व्यवस्था को नष्ट कर उसके

---

[48] भारतीय समाज की संरचना, हेमलता श्रीवास्तव-पृ.384

स्थान पर पूँजीवादी उद्योगों का निर्माण कार्य आरंभ कर दिया। लेकिन इस निर्माण कार्य के पीछे अपने देश की तरह विकास या गठन की मनोवृत्ति नहीं थी वरन् साम्राज्य विस्तार की अभिलाषा थी। अंग्रेज़ी पूँजी का उद्देश्य ही उपनिवेश को अपने लाभ और हित में प्रयोग करना है। भारत में उद्योगों की स्थापना के पीछे अंग्रेज़ी पूँजी का उद्देश्य इस प्रकार था-"(1) रेल कंपनियों की तरह के राष्ट्रीय परिवहन विनियोग, जिनसे देश के बाजार में औद्योगिक पदार्थों का आयात और विदेश में कच्चे माल का निर्यात हो सके, (2) प्राकृतिक दान, जैसे खनिज और खासकर बगीचों के उत्पादनों जैसे चाय, काफी, रबड़ आदि का देश से निर्यात करना, (3) व्यापारिक कारोबार जैसे बैंक, बीमा कंपनियाँ आदि जो विदेशोन्मुख व्यापार को चालू रखने के लिए जरूरी है (4) सरकारी व अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं को ऋण देना, (5) और कुछ हल्के उद्योगों में पूँजी लगाना जो ज्यादातर निर्यात योग्य होते हैं।"[49] इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अंग्रेज़ी पूँजीवाद ने अपनी पूँजी का विनियोग वहीं किया जहाँ उसे अधिक से अधिक लाभ मिलने की संभावना नज़र आई तथा कच्चा माल अपने देश को कम पूँजी विनिमय में अधिक से अधिक निर्यात कर पाएँ। भारत में अंग्रेज़ों द्वारा उद्योग निर्माण के लाभ के पीछे दूसरे कारण को बताते हुए अमर्त्य सेन का कहना है कि-"क्योंकि केवल लाभ से नहीं, समग्र रूप से अंग्रेज़ पूँजीपतियों के आकांक्षित उद्देश्यों में यह निहित था कि उनका अपना उद्योग मार न खाए और अंततः उनके अपने देश के उद्योगों के साथ उनकी पूँजी प्रतियोगिता में न उतरे। x x x अतः कहा जा सकता है कि अपने देश के उद्योग अथवा पूँजी के साथ प्रतियोगिता से बचना अंग्रेज़ी पूँजी विनियोग संस्थाओं का एक मूलभूत कौशल था।"[50] इस प्रकार देखा जा सकता है कि मूल रूप से अपनी पूँजी विनियोग से अधिक मुनाफा कमाने तथा औद्योगीकरण से पिछड़े देश भारत में उद्योगों की स्थापना करने के पीछे अंग्रेज़ पूँजीपतियों का उद्देश्य केवल एक ही था-

[49] भारत का आर्थिक इतिहास-पृ.107

[50] भारत का आर्थिक इतिहास-पृ.107

अपनी पूँजी का विकास करना। इसके फलस्वरूप भारत में अनेक उद्योगों की स्थापना हुई। इन्हीं परिवेशों में पल रहा भारत का नवोदित पूँजीपति वर्ग भी इस होड़ में शामिल होता है तथा आगे चलकर यह दोनों ही पूँजीपति वर्ग एक दूसरे के प्रतिस्पर्धा बनते हैं।

भारत में रेल उद्योगों की स्थापना के साथ ही यह संकल्पना प्रक्रिया में आती है। "1853 से रेलों का सूत्रपात फौजों और आयात नियति को होने के उद्देश्य से किया गया। इस महत्वपूर्ण उद्योग की स्थापना के बाद रेलों की मरम्मत व इससे संबंधित अन्य उद्योगों की स्थापना अंग्रेज़ों के लिए एक मजबूरी थी। 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेज़ों को रेल परिवहन बेहद जरूरी हो गया और इसी के साथ इस उद्योग का बृहद पैमाने पर विकास हुआ। रेल निर्माण व संचालन से संबंधित श्रमिकों के माध्यम से श्रमिकों का जन्म हो रहा था।"[51] भारत से अधिक उत्कृष्ट कच्चा माल ले जाने के लिए कुछ विशेष मालों को सँवारना आवश्यक था। इस कारण अंग्रेज़ों ने □ावल, कपड़े, आटा पीसने, रुई धुनने व उन्हें गांठों में बाँधने तथा जूट के बोरे बनाने आदि के कारखाने स्थापित किए। ब्रिटिशों ने चाय बागानों के उद्योग को भी बहुत मात्रा में प्रतिष्ठित किया। भारत में ब्रिटिशों ने जूट उद्योग को बहुत अधिक सरमाया। "पहली जूट मिल आक्लैंड द्वारा 1854 में कलकत्ता के समीप स्थापित की गई। 1886 तक इतनी जूट मिलें स्थापित हो गयी थीं कि भारतीय जूट मालिक संघ की स्थापना हो चुकी थी।"[52] बहुत ही कम समयावधि में अनेक भारी संख्या में कपड़े और जूट की मिलों की स्थापना हो चुकी थी। "सन् 1914 तक कपड़े की 264 तथा जूट की 64 मिलें खुल चुकी थीा। सन् 1935 तक आते-आते यह संख्या और अधिक हो गई।"[53] इन तथ्यों और आँकड़ों के माध्यम से कहा जा सकता है कि अपने वाणिज्य विस्तार के लिए अंग्रेज़ी और भारतीय दोनों ही पूँजीपति तेज़ी से उद्योगों की स्थापना कर रहे थे। भारतीय श्रमिक वर्ग का उदय भारत में रेल उद्योगों

---

[51] भारत का मजदूर आंदोलन, सुकोमल सेन-पृ.7
[52] भारत का मजदूर आंदोलन, सुकोमल सेन-पृ.7
[53] हिंदी की प्रगतिवादी कविता, डॉ.सुरेंद्र प्रसाद-पृ.30

के आगमन से हुआ तथा इस उद्योगों में कार्यरत श्रमिक ही भारतीय श्रमिक वर्ग के निर्माण का सूत्रधार बनता जा रहा था।

भारत में उद्योगों की स्थापना और प्राधिक्य के पीछे भारतीय सूती वस्त्र उद्योगों की विशेष भूमिका रही है। यहाँ तक कि भारतीय पूँजीवाद के स्वरूप एवं पूँजीपतियों के जन्म और विकास के लिए भी यही उद्योग सबसे अधिक जिम्मेदार थे। "भारत की पहली सूती मिल 1818 में बौड़िया (कलकत्ता) में स्थापित हुआ जबकि कपास के उत्पादन क्षेत्र महाराष्ट्र में होने के बावजूद भी बंबई की पहली सूती कावसवी नानाभाई डाबर ने 1854 में लगाई। अगले 25 वर्षों में इस क्षेत्र में 60 सूती मिलें स्थापित हो गयीं।"[54] जूट मिलों और सूती वस्त्र उद्योगों की इस बढ़ती संख्या ने बेकार कारीगरों जिनके पास कुशलता थी तथा भूमिहीन कृषकों जिनके पास श्रमशक्ति थी, इन उद्योगों की ओर आकर्षित होते रहे। बहरहाल इन उद्योगों के लग जाने के कारण एवं व्यापार में हो रहे उन्नत लाभ के कारण काम बढ़ता गया। उद्योगपति अधिक से अधिक लोगों को काम पर रखने लगे। उद्योग किसानों-शिल्पकारों के लिए श्रम और रोजगार के अवसर जुटा रहे थे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में श्रमिकों की संख्या कुछ ही वर्षों में लाखों में पहुँच गयी।

सन् 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेज़ सरकार एवं ब्रिटिश पूँजीपतियों ने ईस्ट इंडिया कंपनी की अनेक कपटी एवं स्वहितकारी नीतियों को उखाड़ फेंका तथा ऐसे नियमों को लागू किया जिससे भारतीय पूँजीपति भी खुश थे। यह बदलाव पुनः उनके ही पक्ष में रहा और भारत में उद्योगों की श्रीवृद्धि तथा भारतीय श्रमिक वर्ग की संख्या बढ़ती गई। भारत का कच्चा माल और सबसे अधिक भारत में मिल रहे सस्ते एवं निरीह श्रम ने भी ब्रिटिशों को भारत में उद्योग स्थापित करने के प्रति आकर्षित करता रहा। कलकत्ता ब्रिटिशों तथा बंबई भारतीय पूँजीपतियों का

---

[54] भारत का मजदूर आंदोलन, सुकोमल सेन-पृ.8

औद्योगिक केंद्र बनता जा रहा था। "1854 में बंबई में सूती वस्त्र उद्योग स्थापित हुए तथा 1855 में कलकत्ता में पटसन उद्योग।"[55]

भारत में देशी पूँजीपतियों द्वारा उद्योगों की स्थापना का एक और प्रमुख कारण स्वदेशी आंदोलनों के प्रभाव थे। सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। लार्ड कार्जन ने सन् 1905 में बंगाल विभाजन का निर्णय लिया। इन सबके साथ स्वदेशी आंदोलनों की उपस्थिति के फलस्वरूप विलायती वस्तुओं का तिरस्कार और देशी वस्तुओं के उपयोग व व्यवहार के नारे लगे। इसके चलते देश में स्थापित उद्योगों, कारखानों आदि का आदर बढ़ता गया। यह वह समय था जब भारत में अनेक बड़े और समृद्ध उद्योगों की स्थापना हो रही थी। इसी दौरान सन् 1908 में जमशेदपुर में टाटा ने इस्पात कारखाने की स्थापना की। बंबई, अहमदाबाद आदि में सूती वस्त्र उद्योग काफी बढ़ गया। अनेक संख्या में उद्योगों की वृद्धि एवं अंग्रेज़ी पूँजी के बाहुल्य स्वरूप देश में वित्त व्यवस्था, मुद्रा व वाणिज्य की नीतियों को भी आधुनिक तौर-तरीकों के अनुसार बनाया जाने लगा। इन सभी प्रकार की परिवर्तनों की आड़ में भारतीय सामाजिक संरचना में एक बहुत बड़ा अंतर आया या कहें कि एक नवीन संकल्पना सामने उभर कर आयी। उद्योगों की स्थापना के प्रतिक्रिया-स्वरूप शहरों का उत्कर्ष हुआ। इन सभी प्रतिक्रियाओं और बदलाव के दौर में भारत की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ चाहें जो भी रही हों लेकिन भारतीय सर्वहारा वर्ग की वृद्धि इन्हीं परिस्थितियों के प्रभावों से बढ़ रही थीं।

भारतीय श्रमिक वर्ग के जन्म के पीछे अनेक कारणों ने काम किया। भारत में पूँजीवाद का प्रवेश और उसकी स्थापना ने ही इसे अधिक मृत रूप दिया। उद्योगों का निर्माण श्रमिक वर्ग को अधिक क्रियाशील बनाता गया। भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना और व्यवस्था का विघटन और विनाश ने अनेक भूमिहीन किसानों एवं बेरोजगार शिल्पकारों को पैदा किया। विदेशी तथा भारतीय पूँजीपतियों के उद्भव,

---

[55] भारतीय समाज की संरचना, हेमलता श्रीवास्तव-पृ.386

विकास एवं प्रतिस्पर्द्धा के कारण जहाँ उद्योगों को जड़ जमाने का उपयुक्त परिवेश प्रदान कर रहा था वहीं दूसरी तरफ इसके प्रभाव से भारत का श्रमिक वर्ग भी प्रकाश में आ रहा था। पूँजीवाद के आगमन ने दो प्रकार के समूहों को अपनी ओर आकर्षित किया। वे थे-अपनी ही जमीन से खदेड़े गए किसान और दूसरे घरेलू उद्योगों के विनाश में जन्में बेरोजगार शिल्पकार। यह दोनों ही समूह परिस्थितिवश विकल्पहीनता के शिकार थे।

4. श्रमिक आंदोलन का सूत्रपात

भारतीय परिप्रेक्ष्य में श्रमिक आंदोलन का सूत्रपात एक लंबे समयावधि के इतिहास को समेटे हुए है। आंदोलन की बुनियादी जमीन होती है-एकता और जागरूकता। भारतीय श्रमिक वर्ग इन दोनों ही पक्षों से अपरिचित था। पूँजीवाद के आगमन और उद्योगों की स्थापना के साथ ही श्रम के क्रय-विक्रय का व्यापार आरंभ होता है तथा इसके साथ शोषण की प्रक्रिया भी अपनी उपस्थिति को प्रस्तुत करता है। शोषण-तंत्र के विरुद्ध अपने आपको खड़ा करने तथा अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करने की मनोभावना श्रमिकों को आंदोलन की ओर आकर्षित करती है। भारतीय श्रमिक आंदोलन के सूत्रपात के पीछे दो प्रमुख कारण अपना विशेष महत्व रखते हैं। एक तो भारतीय श्रमिकों में संगठन के प्रति जागरूकता तथा उनका संगठित होना तथा भारत में मार्क्सवादी विचारधाराओं का आगमन। इन दोनों ही कारणों ने न केवल देश के श्रमिक वर्ग बल्कि उस समय के राजनैतिक परिदृश्य एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को भी बहुत ज्यादा प्रभावित किया। श्रमिक संगठन के रूप में श्रमिकों का एक ऐसा समूह एकत्रित किया जाता है जो अपने अधिकारों की लड़ाई में प्रत्येक श्रमिक के सहयोग की अपेक्षा रखता है। श्रमिक संघ मूलतः श्रमिक आंदोलन के संचालन का दायित्व उठाने के लिए रचे गए थे। किंतु कालांतर में इनका रूप अधिक रचनात्मक तथा संगठनात्मक हो गया। श्रमिक संगठन आर्थिक एवं औद्योगिक प्रगति की राह पर मालिक तथा मजदूर के बीच खाई को पाटने वाला स्रोत बना। इसके साथ ही रूस क्रांति की सफलता के साथ भारत में मार्क्सवादी

विचारधाराओं के प्रवेश ने मजदूरों में संघर्ष की प्रवृत्ति को जागृत किया, उन्हें राष्ट्रीय राजनैतिक शक्यिों तथा गतिविधियों से जोड़ा। मार्क्सवाद के आगमन के कारण भारतीय श्रमिक वर्ग राष्ट्रीय आंदोलन के साथ भी जुड़ा। इस प्रकार यह वह जो कारक तत्व थे जिनके चलते भारत का श्रमिक-वर्ग अधिक-से-अधिक संगठित हो पाया और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी। संगठन की शक्ति के ही उसे आपस में एकत्रित होने की शक्ति दी और मार्क्सवादी विचारधाराओं के प्रवेश तथा विश्व व्यापी सफलता में उसे संघर्ष करने की ऊर्जा दी। भारतीय साहित्य पर इसका गहरा असर पड़ा। हिंदी साहित्य की समस्त विधाओं पर समाज में हो रहे इस परिवर्तन का प्रभाव पड़ा। भारतीय श्रमिक आंदोलन को जानने और समझने के लिए हमें नैपथ्य के पीछे काम कर रहे इन कारणों को समझना और उन्हें परखने की आवश्यकता है।

4.1 श्रमिक संगठनों की स्थापना और विकास

श्रमिक संगठन की संकल्पना प्रमुखतः आधुनिक औद्योगीकरण का ही उत्पाद है। श्रमिक संगठन के लिए अंग्रेज़ी में 'ट्रेड यूनियन' (Trade Union) शब्द का प्रचलन है। श्रमिक संगठन मूलतः श्रमिकों या कारखानों के मज़दूरों के द्वारा संगठित एक प्रकार का व्यावसायिक संगठन है जो मालिकों और एक व्यापक धरातल पर सरकार के बीच संपर्क स्थापित करता है। श्रमिकों की समस्याओं, उनके समाधान की संभावनाओं तथा उनके विकास की शर्तों को मालिकों के सम्मुख प्रस्तुत करना इस संगठन का मुख्य उत्तरदायित्व होता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के मानचित्र पर मालिक तथा मजदूर दो विपरीत ध्रुव बन गए हैं। जहाँ एक तरफ मुनाफा कमाना, शोष्णण करना तथा विवशता का लाभ उठाना एक वर्ग का स्वभाव बन जाता है वहीं अपने अधिकारों और हितों की सुरक्षा के लिए अपर पख का संघर्ष करना एक स्वतः पूर्व प्रतिभा बन जाती है। पूँजीपति एक सशक्त तथा साधन संपन्न वर्ग होता है जिसका मुकाबला कोई भी श्रमिक अकेले नहीं कर सकता। फलतः श्रमिकों का संगठित होना आवश्यक है। शोषण और विरोध तथा दमन की प्रवृत्ति

पर अंकुश लगाने के लिए श्रमिकों का एकजुट हो संगठित रूप से कार्य करना ही श्रमिक संध या संगठन की स्वरूप को प्रस्तुत करता है। श्रमिकों के बीच संगठन की स्थापना की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए मार्क्स उसे इस प्रकार व्याख्यायित करते है- "मशीनों में लगातार सुधार, जिसमें निरंतर तेज़ी आती जाती है, मज़दूरों की जीविका को अधिकाधिक अनिश्चित बना देता है, अलग-अलग मजदूरों और अलग-अलग बुर्जुआओं के बीच तकरार अधिकाधिक दो वर्गों के बीच टकरावों की शक्ल अख्तियार करते जाते हैं। और तब मज़दूर बुर्जुआओं के विरुद्ध अपने संगठन (ट्रेड यूनियन) बनाने लगते हैं, मजदूरी की दर को कायम रखने के लिए वे संबद्ध होते हैं।"[56] मार्क्स के इस मंतव्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्रमिक वर्ग अपनी समस्याओं में सुधार लाने तथा पूँजीपतियों के शोषण से अपने आपको मुक्त करने के लिए वह संबद्ध होता है और संगठन का निर्माण इसी का फल है।

भारत में 'संगठन' अपने आप में पूर्णतः एक मौलिक संकल्पना थी। इसकी स्थापना के पहले भारत में शिल्प-संघ का स्वरूप जहाँ-तहाँ देखने को मिलता है। यह शिल्प-संघ (Guilds) मूलतः अलग-अलग व्यवसायों के लोगों द्वारा संचालित छोटी-छोटी स्वशासित इकाइयाँ थीं जिनका निर्माण वे व्यक्तिगत लाभ के लिए ही करते थे। इन शिल्प-संघों के मालिक स्वयं भी कर्मचारी हुआ करते थे। उत्पादन में लगनेवाली पूँजी और श्रम दोनों ही उनकी अपनी होती थी। सभी कार्य सामूहिकता और सहकारिता के आधार पर किया जाता था। इन शिल्प-संघों का मुख्य उद्देश्य था संपत्तियों की सुरक्षा तथा विचारों और व्यवहार की स्वतंत्रता की रक्षा करना। सभी प्रकार के आय, उत्पादन तथा लाभ समूह के लिए होता था न कि व्यक्ति विशेष के लिए। प्राचीन भारत में इस प्रकार की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के प्रचलन और दृढ़ता के कारण न तो वह संगठनों के प्रति आकर्षित हुआ और न ही

---

[56] कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र, मार्क्स एंगेल्स-पृ.40

कभी उसका उदय हो पाया। संगठनों का प्रवेश औरद्योगीकरण के उद्‌गमन के साथ ही होता है।"[57]

भारत में श्रमिक संगठनों का उद्‌भव मुख्यतः दो कारणों के प्रभाव से हुआ। इनमें पहला है प्रथम विश्वयुद्ध (सन्‌ 1919 से सन्‌ 1918) के बाद की आर्थिक परिस्थितियाँ। इन परिस्थितियों ने केवल पूरे विश्व को प्रभावित किया बल्कि भारत पर भी इसका गहरा असर पड़ रहा था। भारतीय और विदेशी पूँजीपतियों के बीच प्रतिस्पर्धा तथा उनके प्रभाव और अकाल, महामारी की त्रासदी देश को ऋण के बोझ तले चपेट रही थी, जिस कारण मजदूरी की दरें घटती जा रही थीं और शोषण नए-नए रूपों में सामने आ रहा था। संगठनों के उद्‌भव का दूसरा कारण था तात्कालिक राजनीतिक और स्वतंत्रता संग्राम की उत्तेजनाएँ। ये दो कारण श्रमिकों को एकत्रित और संघबद्ध होने का परोक्ष प्रोत्साहन देते रहे।

श्रमिक आंदोलन का सूत्रपात और संगठनों के निर्माण का प्रारंभ समांतर प्रक्रिया के रूप में होता है। सुकोमल सेन ने श्रमिक वर्ग के उत्थान, संगठनों के निर्माण और आंदोलन की प्रक्रिया को मूलतः चार चरणों में विभाजित कर उसका विश्लेषण किया है। वे कहते हैं-"प्रथम चरण 1850 से 1900 तक का है जो भारतीय श्रमिक और भारतीय श्रम आंदोलन का प्रारंभिक पड़ाव था। द्वितीय □रण 1901 से 1914 अर्थात्‌ प्रथम विश्वयुद्ध तक का है, जिसमें यूनियनों का रचनात्मक और व्यापक विकास हुआ। तीसरा चरण 1915 से 1947 तक का है। यह □रण श्रमिक आंदोलन के चेतनात्मक विकास का चरण है, जिसमें ट्रेड यूनियन बहुत अधिक संगठित हुए एवं स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी सक्रिय भूमिका को निभाया तथा श्रमजीवी वर्ग को राजनीतिक प्रवेश, प्रश्रय और क्षमताएँ भी प्राप्त हुईं। □तुर्थ चरण स्वतंत्रता के बाद से ले कर वर्तमान समय तक का है, जहाँ श्रमिक वर्ग

---

[57] Indian Trade Uniions, V.B.Karnik-p.2

राजनीतिक शक्तियों को धारण कर अपनी भूमिका को निर्धारित कर, उसे अधिक संगठित रूप प्रदान करने में प्रयासरत है।"[58]

श्रमिक संगठनों की स्थापना का सूत्रपात उद्योगों व कारखानों के श्रमिकों के हड़तालों से शुरू होता है। इस कारण कतिपय प्रमुख हड़तालों और उनके परिवेश तथा प्रभावों में बंबई में बना था तथा इस स्तर का पहला श्रमिक आंदोलन घटित हुआ था 1877 में।"[59] यह हड़ताल नागपुर के एंप्रेस मिल के मजदूरों ने अपनी वेदन दर की वृद्धि के लिए किया था। यह हड़ताल अपने आप में उल्लेखनीय था। इसके पहले भी भारत के श्रमिक वर्ग कुछ हड़तालों का अनुभव कर चुके थे। ैसे- "1823 में कलकत्ता के पालकी वाहकों की हड़ताल, 1853 में कलकत्ता की नदी-मार्ग नाविक कुलियों की हड़ताल। कदाचित पहली हड़ताल रेल मजदूरों ने की। इनकी माँगें 8 घंटा कार्य-दिवस की थीं। रेलवे उद्योग की स्थापना के 9 वर्षों के अंदर ही यह हड़ताल हुई थी।"[60] सन् 1882 से 1890 के बीच बंबई और मद्रास के केंद्रों में 25 महत्वपूर्ण हड़तालों का उल्लेख मिलता ह। इन हड़तालों का मुख्य मुद्दा था वेतन। "काम के घंटों और आर्थिक सुविधाओं को लेकर सन् 1882 से सन् 1890 तक लगभग 25 हड़तालें देश के विभिन्न स्थानों में हो चुकी थीं।"[61]

इन हड़तालों की प्रतिक्रिया स्वरूप जुर्मानों के माध्यम से मालिक श्रमिकों से उनकी वेतन में कटौती का फायदा लेते हैं। सर्वाधिक समस्या बिना किसी नोटिस के वेतन घटा दिए जाने का होता था। महाराष्ट्र और बंगाल दोनों ही जगहों में यह स्थिति थी, जो औद्योगिक शहरों का रूप धारण कर चुके थे। इस समय तक किसी भी शहर या कारखानों में श्रमिकों के सामूहिक हड़ताल की घटना सामने नहीं आई। फलतः मालिकों के विवादास्पद कार्य योजनाओं को रोका नहीं जा सका। मोटे तौर

---

[58] Working class of India-p.66
[59] भारतीय समाज की संरचना, हेमलता श्रीवास्तव-पृ.417
[60] भारत का मज़दूर आंदोलन, सुकोमल सेन-पृ.25
[61] हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना, जनेश्वर वर्मा-पृ.214

पर कहें तो ये सारे हड़ताल भीषण शोषण के विरुद्ध बिखरे-अबिखरे प्रतिरोध मात्र थे, जो कुछ ही दिनों तक चलते और निष्फल प्रमाणित होते।

भारतीय श्रमिकों के द्वारा हो रहे यह सारे हड़ताल या संघर्ष तब तक आंदोलन का रूप धारण नहीं कर पा रहे थे ब तक वे एकत्रित नहीं हो पाए थे तथा जब तक उसमें राजनैतिक शक्तियों का संगम नहीं हुआ था। श्रमिकों के बीच यूनियन की भूमिका एवं महत्व संबंधी उतनी जानकारी नहीं थी जो उन्हें एक क्रांतिकारी आंदोलन के मार्ग में आगे बढ़ाने के लिए एकजुट या प्रेरित कर पाती। इसके पीछे भारतीय श्रमिकों की निबटतम गरीबी और व्यक्तित्व संघर्ष महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसके साथ ही क्षेत्रीयता, धर्म, भाषा आदि की विविधता ने इन्हें आपस में बाँटे रखा था। भाषा की वैविध्यता अपने आप में एक प्रमुख कारण थी। "बंबई और कलकत्ता जैसे प्रमुख औद्योगिक शहरों में काम करनेवाले विषमजातीय श्रमिकों का संकट के समय भी भाषा के कारण एक दूसरे से अलग रहना।"[62] इस प्रकार की विविधताएँ जहाँ एक तरफ ट्रेड यूनियन बनाने में प्रतिरोधक थी वहीं आंदोलन को जन्म देने में असफल। भाषा, अशिक्षा और अरुचि के कारण भारतीय श्रमिक वर्ग की स्थापना किसी श्रमिक के हाथों न होकर उस समय के मध्यवर्गीय बरिष्टरों तथा समाजसेवियों के हाथों हुई थी। "भारतीय श्रमसंघों का प्रारंभ 18 वीं शताब्दी के लिए श्री पी.सी.मजूमदार ने रात्रि कालेज नाम पर मजदूरों को संगठित करके संगठन बनाया और 1878 में कार्यशील मनुष्य की नींव डाली।" [63] सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। डब्ल्यू.सी.बनर्जी (W.C.Banargee) तथा दादा भाई नैरोजी जैसे धनाढ्य व्यक्ति इसके संचालक थे। पर 80 प्रतिशत भारतवासियों से कांग्रेस का कोई संबंध नहीं था, क्योंकि श्रमिक वर्ग अभी तक सामाजिक बल नहीं बन पाया था। भारत में संगठनों का प्रभावी उदय आज़ादी के आंदोलनों एवं तिलक, बी.पी.वादिया, श्री एम.एन.लोखंड़े, अश्विनी

---

[62] Trade Union Movements in India, Jawaid Sahil-p.2

[63] भारतीय समाज की संरचना-पृ.423

कुमार बानर्जी जैसे राजनीतिक एवं सामाजिक व्यक्तित्वों का इनसे जुड़ाव था। इसके साथ ही प्रथम विश्वयुद्ध, रूसी क्रांति की सफलता तथा सर्वहारा वर्ग के विश्वव्यापी संघर्षों से इसे जागृति और संगठन निर्माण के गुट मिल रहे थे।

19 वीं सदी समाप्त होते-होते आज़ादी का आंदोलन विकसित होने लगा। बंगाल व महाराष्ट्र शताब्दी के मोड़ पर अपने विकसित राजनीतिक आंदोलनों के द्वारा पूरे देश का राष्ट्रीय जागरण कर रहे थे। 1905 के बंगाल विभाजन ने सार्वजनिक कटुता और क्षोभ के माध्यम से एक विशाल जन उत्कर्ष पैदा किया। इसके साथ ही कांग्रेस का नेतृत्व भी नरम दलदल के हाथ से निकलकर तिलक, लाजपत राय जैसे नेताओं के हाथ में पहुँच गया। इन सभी परिस्थितियों और संघर्षों के दौरान भारत में यूनियन संस्कृति की नींव भी गहरी होती गई। साथ ही साथ औद्योगीकरण के प्रसार के कारण श्रमिकों की संख्या 10 लाख तक पहुँच गयी थी। बंगाल विभाजन के परिणामों से श्रमिक संघर्ष को प्रेरणा मिली। "यह संघर्ष भारत के राजनीतिक इतिहास में प्रथम जागृति और संगठित जन-आंदोलन का रूप बन गया था। इसी स्वरूप को प्राप्त करने के लिए बंगाल के राष्ट्रीय नेताओं ने श्रमिक वर्ग की तत्कालीन आर्थिक व सामाजिक मांगों का समर्थन किया था। राजनीतिक आंदोलनों में मजदूर वर्ग के शामिल होने से जुझारी संघर्ष की निष्पत्ति होती है।"[64]

सन् 1906 में ईस्ट इंडियन रेलवे में एक बड़ी हड़ताल हुई थी। लेकिन राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत यह पहली हड़ताल बेकार नहीं गई। भारतीय श्रमिकों द्वारा संगठित इस हड़ताल से राष्ट्रीय नेता बहुत प्रभावित हुए थे। श्रमिक शक्ति की क्रांतिकारी परिणति की संभावनाओं के तौर पर जुलाई 1908 की बंबई श्रमिक हड़ताल का बहुत अधिक महत्व है। यह हड़ताल बाल गंगाधर तिलक पर मुकदमा चलाये जाने के कारण भड़का था। "सन् 1908 में लोकमान्य तिलक की गिरफ्तारी और छः वर्ष के कारावास दंड के विरोध में होने वाली बंबई के मज़दूरों की आम

[64] भारत का मजदूर आंदोलन-पृ.30

हड़ताल जो छः दिनों तक चली थी।"[65] 60 कारखानों के 65 हज़ार मजदूरों के साथ बाजारों, बंदरगाहों तथा दुकानों के मेहनतकश श्रमिक भी सड़कों पर उतर आए। भारतीय सर्वहारा वर्ग का यह पहला राजनीतिक हड़ताल थी। इस आम राजनीतिक हड़ताल का मूल आधार मज़दूरों के अंदर जागी यह चेतना थी कि उनकी दयनीय स्थिति की जिम्मेदारी ब्रिटिश साम्राज्यशाही से बोझिल पूँजीवाद पर है। इसलिए स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लेना जरूरी है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्रमिक संगठनों का उदय अनेक समस्याओं को झेलता हुआ और हड़तालों का समष्टिगत रूप ही संगठन निर्माण में सहायक बने। संगठन के उदय ने श्रमिकों को समाज एवं विकास की प्रक्रिया में अपने महत्व समझने में सहायता प्रदान की। साथ ही इसे राष्ट्रीय आंदोलन एवं राजनीतिक शक्तियों के साथ जोड़ा।

4.2 मार्क्सवादी विचारों का प्रवेश और श्रमिक जीवन

विश्व सर्वहारा-वर्ग के आंदोलनों और क्रांतियों के इतिहास में मार्क्सवादी विचारधाराओं का उदय हुआ। इस वर्ग के लिए जहाँ मार्गदर्शक एवं उत्साह स्रोत का काम कर रहा था वहीं उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागृत भी करा रहा था। मार्क्सवाद न केवल आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं के आधार पर खड़ा है बल्कि उसका एक दार्शनिक पक्ष भी है जो उसकी शक्ति और आधार है। मार्क्सवाद को समाज का वैज्ञानिक आधार माना जाता है। मार्क्सवाद को व्याख्यायित करते हुए जनेश्वर वर्मा कहते हैं-"इस प्रकार मार्क्सवादी दर्शन वह जीवन सूत्र है जो समाज के ऐतिहासिक, राजनीतिक और आर्थिक से लेकर सांस्कृतिक और साहित्यिक पक्षों तक में एक ऐसी एकसूत्रता स्थापित कर देता है कि फिर हम उन्हें एक दूसरे से अलग करके नहीं देख सकते। मार्क्सवाद का यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है।"[66] पूरे विश्व में पूँजीवाद के आगमन के साथ ही शोषक वर्ग और

---

[65] हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना-पृ.214

[66] हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना-पृ.21

सर्वहारा वर्ग की रेखा खींची जा चुकी थी। पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत समाहित विभिन्न विषमताएँ ही उसके लिए अभिशाप है। यह विषमताएँ अनेक रूपों में व्यक्त हो कर संघर्ष एवं विद्रोह को जन्म देती है, जिनका विस्तारित पक्ष युद्ध का रूप धारण करता है। वैश्विक धरातल पर पूँजीवाद के प्रादुर्भाव के साथ ही मूल रूप से आर्थिक क्षेत्र में अनेक विषमताओं, शोषण, आर्थिक संकट एवं अत्याचार एवं शोषण नीतियों का जन्म भी होने लगा। "कुल मिलाकर विश्व बाज़ार की हालत काफी अशांतिपूर्ण थी। गोरे उपनिवेशों के अलावा पराधीन और नीम पराधीन देशों की जनता अपनी आज़ादी के लिए बराबर लड़ती रही। विश्व बाज़ार की बहुसंख्यक जनता पिछड़े हुए देशों की है। जो दर्शन, जो विज्ञान इस जनता को अपनी आज़ादी के लिए लड़ना सिखाता है, अपने पिछड़ेपन से निकल अपनी आज़ादी के लिए लड़ना सिखाता है, नये जीवन का निर्माण करना सिखाता है, उसकानाम मार्क्सवाद है।"[67] कार्ल मार्क्स को इस विचारधारा का जनक माना जाता है। मार्क्स और ऐंगेल्स का प्रसिद्ध 'कम्यूनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र' सन् 1848 में विश्व मंच पर प्रस्तुत होता है। इसका प्रकाशन मार्क्सवादी विचारधाराओं को एक व्यवस्थित रूप प्रदान करता है तथा इससे प्रभावित हो समय-समय पर अनेक देशों में क्रांतियों का सूत्रपात भी हुआ है।

भारत में मार्क्सवादी विचारधाराओं का उदय और प्रवेश मूल रूप से सन् 1917 में हुई रूस क्रांति की सफलता के साथ ही होता है। "भारत में मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों का प्रवेश सही संदर्भों में उस समय से प्रारंभ होता है, जबकि सन् 1917 में, रूस में लेनिन के नेतृत्व में महान समाजवादी क्रांति सफल होती है और इसके परिणामस्वरूप विश्व में पहली बार किसी राष्ट्र में मजदूर-किसानों की वास्तविक सत्ता कायम होती है।"[68] विश्व इतिहास की यह समाजवादी क्रांति एक सफल एवं ऐतिहासिक घटना है जिसने न केवल रूस को एक प्रतिरूप प्रदान किया

---

[67] मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, इतिहास और सिद्धांत, शिवकुमार मिश्र-भूमिका
[68] मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, इतिहास और सिद्धांत, शिवकुमार मिश्र-भूमिका

था वरन् पूरे विश्व की शोषित-पीड़ित मानवता के सामने मुक्ति के द्वार खोले थे। मार्क्सवादी-समाजवादी आधार पर सफल हुई इस क्रांति से विश्व की पददलित मनुष्यता मुक्ति की आशा में उसकी ओर आकर्षित हो रही थी तथा उससे परिचित भी। भारत में मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों का प्रवेश और भारतीय जन-मानस की उसके प्रति जिज्ञासा का वास्तविक और ठोस संदर्भ यही है।

समाजवादी क्रांति की सफलता को देखकर विश्व का पूँजीवादी शासक अपनी प्रभुता के प्रति आतंकित हो उठा। यह एक कारण था जिसके चलते इसने जन-सामान्य के बीच मार्क्सवादी विचारों को रोकने का भरसक प्रयत्न किया। लेकिन क्रांति की हर खबर अनेक स्रोतों से संपूर्ण विश्व में फैली और भारत में भी आई। इस समय भारतीय श्रमिक वर्ग और संगठन का विकास जोरों पर था। इस विचारधारा का प्रभाव हमारे राष्ट्रीय आंदोलन पर भी पड़ा और एक नये गरम दल का अभ्युदय हुआ।

"विश्व इतिहास में मानवता के लिए एक नया मोड़ लेकर आई, इस क्रांति के रूप में विश्व के उन स्वप्न-द्रष्टाओं के स्वप्न मूक हुए। जो युगों-युगों से शोषित जनता के अभ्युदय के स्वप्न देखते आ रहे थे। यह क्रांति मार्क्स की विचारधारा की पूर्ति का सुंदर फलितार्थ थी।"[69] इस क्रांति के प्रभाव में सन् 1918 में भारतीय मजदूर आंदोलन एक नई चेतना लेकर जाग उठा और हड़तालों का देशव्यापी क्रम आरंभ हुआ। "सन् 1920-21 में बंबई, कलकत्ता, लखनऊ, अहमदाबाद और असाम के चाय बागानों में बड़ी-बड़ी हड़तालें हुईं। अखिल भारतीय स्तर पर एक मजदूर संगठन बनाने के प्रयत्न प्रारंभ हुए और 30 अक्तूबर 1920 को बंबई में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का पहला अधिवेशन लाला लजपत राय की अध्यक्षता में हुआ।"[70] यह वह समय था जब किसान आंदोलन ने विशेष तीव्र रूप धारण कर लिया।

---

[69] लेनिन : भारत के संदर्भ में, हरिदत्त शर्मा-पृ.19

[70] मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास, डॉ.एन.रविंद्रनाथ-पृ.80

भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना, भारतीय नवयुवकों में मार्क्सवादी विचारों को प्रचारित करने में काफी सफल रही। इसकी स्थापना सन् 1921-22 के दौरान हुई। अब तक भारत में तथा भारतीय जनता के बीच मार्क्सवादी विचारों का व्यापक प्रसार हो चुका था। कांग्रेस में ही एक ऐसा वर्ग भी निर्मित होने लगा था, जो कम्युनिस्ट विचारधाराओं के अंतर्राष्ट्रीय स्तर के प्रचार-प्रसार से बेहद प्रभावित था। भारत में आ रहे कम्यूनिस्ट पत्रिकाओं के माध्यम से यहाँ का युवा-वर्ग इससे सर्वाधिक आकर्षित हुआ। एस.एन.रॉय द्वारा 'Vanguard and Masses'[71] ऐसी पत्रिकाओं को देश में भेजना इसी की प्रक्रिया थी। इसके साथ ही "बंबई में श्रीपाद अमृत डांगे ने 1921 में 'गांधी बनाम लेनिन' पुस्तक प्रकाशित करायी और 1922 में 'सोशलिस्ट' पत्र भी निकाला। बंबई के नौजवानों में मार्क्सवादी विचारों के प्रचार में इस पत्र ने काफी योग दिया। बाद में यहाँ एक मार्क्सवादी प्रकाशन गृह और एक पुस्तकालय तथा छात्रावास की भी व्यवस्था की गई।"[72] इस प्रकार देश की आगामी युवा पीढ़ी मार्क्सवादी विचारधाराओं से सबसे अधिक प्रभावित हुई एवं एक नयी विचारशक्ति, एक नया दर्शन तथा एक नए दृष्टिकोण से ही उसने समय के राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों को परखा।

भारत के राजनैतिक फलक में हो रहे इस परिवर्तन से राष्ट्रीय कांग्रेस भी सचेतित हो उठा। सन् 1931 के कराची अधिवेशन में देश में लाखों भूखे मरने वालों की आर्थिक स्वतंत्रता को निहित किया गया तथा इसे प्राधान्य दिया गया। आर्थिक स्वतंत्रता को भारत की गरीब-जनता का मौलिक अधिकार कहा गया तथा मजदूरों के अधिकारों की बात की गयी। कांग्रेस के इस बदल से स्वभाव के बारे में पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है-"इसके पहले कांग्रेस पूँजीपतियों, जमींदारों और मजदूर-किसानों के बीच किसी संघर्ष का अवसर आने पर भी कोई पक्ष ग्रहण करने में कतराती थी, अब पहले कांग्रेस ने देश के शोषित मजदूर-किसानों का पक्ष ग्रहण

---

71 Indian Trade Union, V.B.Karnik-p.57

72 मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास, डॉ.एन.रविंद्रनाथ-पृ.82

करने की भावना व्यक्त की और इस प्रकार उसकी नीति स्पष्टतया समाजवाद की ओर उन्मुख हुई।"[73] इन्हीं परिवेशों में समाजवादी-मार्क्सवादी विचारों का उदय हो रहा था।

सन् 1934 तक आते-आते परिदृश्य काफी बदला। एक तरफ जहाँ जनता में मोह भंग की स्थिति थी वहीं सरकार साम्यवादी दलों को गैर-कानूनी घोषित कर चुकी थी। इससे मजदूर किसान वर्ग में क्रांति की भावना एवं विचारों का प्रचार रुका नहीं। इसी समय एक साथ ऐसे अनेक नये संगठन सामने आये जिन्होंने जन-जीवन में समाजवादी विचारों के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इन संगठनों के माध्यम से जहाँ गरीब जनता एकत्रित हो कर आंदोलन करने पर आतुर थी वहीं जनता एवं प्रबुद्ध नेता दोनों के बीच ही मार्क्सवादी-समाजवादी विचारधाराएँ अपना स्थान बना रही थीं। सन् 1934 में कांग्रेस-संगठन केभीतर ही समाजवादी विचारधारा के लोगों ने कांग्रेस-समाजवादी दल की नींव डाली और किसान-मजदूरों के बीच सक्रिय हुए।

मज़दूर आंदोलन जहाँ एक तरफ जोरशोर से चल रहा था वहीं किसान-आंदोलन ने भी सन् 1934 के आस-पास गति पकड़ी। 'किसान सभा' नामक किसानों के अखिल भारतीय संगठन की स्थापना सन् 1936 में हुई। यह संगठन कम या अधिक मात्रा में कांग्रेस का विरोधी था। विद्रोह के लिए उन्हें एक उद्देश्य, एक झंडा और नेता मिल गए थे। इस बार देश का मेहनतकश वर्ग लाल रंग के सोवियत झंडे को अपनाया। नेताओं ने देहातों में दूर-दूर तक दौरे कर लोगों में मार्क्सवादी विचारों के उत्साह को प्रसारित किया।

भारतीय जनता में मार्क्सवादी विचारधाराओं के आगमन से जहाँ भारतीय श्रमिक वर्ग साम्राज्यवाद के विरुद्ध आंदोलन करना चाहता था वहीं देशी सामंतवाद तथा पूँजीवाद की जड़ों को भी उखाड़ने की मनसा रखता था। ऐसी सशक्त मनोबल एवं उत्साह के समय ही राष्ट्रीय आंदोलन का दक्षिण-पंथी नेतृत्व मात्र समझौतों के

---

[73] मार्क्सवादी साहित्य चिंतन, डॉ.शिवकुमार शर्मा-पृ.487

आधार पर ही अंग्रेज़ों से लड़ाई करने का पक्षधर था। रूस क्रांति की सफलता एवं विश्वव्यापी इसकी प्रशंसा के कारण क्रांतिकारी भारत इससे दूर हट रहा था एवं मार्क्सवादी विचारों का खुलकर समर्थन भी हुआ तथा उसे प्रयोग में लाया जाने लगा।

4.3 हिंदी साहित्य और मार्क्सवाद

भारत में मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों के प्रचार-प्रसार का प्रभाव हम तत्कालीन आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में देख सकते हैं। देश का राष्ट्रीय आंदोलन भी इससे प्रभावित हो रहा था। श्रमिक वर्ग, ट्रेड यूनियन की स्थापना तथा विद्रोह की भावना जोर पकड़ रही थी। समाज में हो रही इन प्रतिक्रियाओं और परिवर्तनों से देश का साहित्य भला कैसे अछूता रह जाता। भारतीय साहित्य पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। साहित्य में मार्क्सवादी विचारों का प्रवेश उन्हीं परिस्थितिवश हुआ, जो देश की राजनीति में प्रवेश के लिए उत्तरदायी थे। इस समय में देश काल का पढ़ा-लिखा वर्ग इस विचारधारा के प्रति आकर्षित हो उसकी सैद्धांतिकी को जानने-समझने का प्रयास हो रहा था। सन् 1918 से 1922 तक जहाँ-जहाँ जो भी रचना (मूलतः निबंध) प्राप्त हैं वे या तो प्रशंसात्मक हैं या प्रचारात्मक और उनमें व्यवस्थित विचारधारा की कमी है। भारतीय साहित्य में मार्क्सवाद के प्रभाव पर अवलोकन करते हुए जनेश्वर वर्मा ने लिखा है-"मार्क्सवादी संगठनों के सूत्रपात के प्रथम प्रयास कलकत्ता, बंबई, मद्रास और लाहौर आदि अहिंदी भाषी क्षेत्रों से आरंभ हुए। फलतः मार्क्सवादी साहित्य का प्रादुर्भाव भी अंग्रेज़ी तथा संबंधित प्रांतीय भाषाओं के माध्यम से पहले इन्हीं स्थानों पर हुआ जिनमें बंगाल का नाम अग्रगण्य है। रूसी क्रांति से बहुत पहले ही बंकिम बाबू ने जो कार्ल मार्क्स के समकालीन थे 'साम्य' शीर्षक निबंध लिखा था, जिसमें उन्होंने पूँजी, मजदूरी और लाभ आदि पर विचार करते हुए विभिन्न सामाजिक विषमताओं की

अपने ढंग से व्याख्या की थी और एक सीमा तक सामाजिक साम्य का समर्थन किया था।"[74]

हिंदी साहित्य में मार्क्सवादी विचारों का प्रवेश अनेक प्रकार की पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ। "वास्तविकता यह है कि सन् 1918 के बाद के भारत में मार्क्सवाद की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आरंभ हुई थी। इस संबंध में सन् 1920 में कलकत्ते से प्रकाशित होने वाली बंगाल के दैनिक 'नवयुग' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस पत्र का प्रकाशन बंगाल के प्रसिद्ध जनकवि काजी नजरूल इस्लाम और कम्यूनिस्ट पार्टी के संस्थापक मुजफ्फर अहमद की देख-रेख में आरंभ हुआ।"[75] हिंदी जगत् में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रथम निबंध लिखने का श्रेय श्री जनार्दन भट्ट को है जिन्होंने रूस क्रांति से कई वर्ष पूर्व सन् 1914 में 'हमारे गरीब किसान और मजदूर' शीर्षक निबंध में श्रेणियों की व्याख्या कर सामाजिक-आर्थिक विसंगतियों को प्रस्तुत किया था। सन् 1918 में हिंदी काव्य जगत में पूँजीवाद और उसके शोषक तंत्र के विरुद्ध तथा मार्क्सवादी विचार के आकर्षण को प्रस्तुत किया जा रहा था। इनमें 'श्री गंगाप्रसाद शुक्ल स्नेही' का नाम उल्लेखनीय है।

हिंदी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधाराओं का प्रवेश एवं स्थापना में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रगतिवाद का पूरा साहित्य ही मार्क्सवादी विचारधाराओं से ओतप्रात है। इस समय के साहित्य में समाज की आर्थिक, राजनीतिक परिदृेश्य को तो प्रस्तुत किया ही गया साथ ही में मजदूरों के शोषण, उनकी सामाजिक अवस्था तथा वर्ग संघर्ष के कारणों को भी उभारा गया। प्रगतिवादी साहित्यिक आंदोलन में हिंदी की इन पत्र-पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा है-"'रूपाभ', 'हंस', 'जागरण', 'जनशक्ति', 'नया साहित्य', 'विप्लव', 'प्रगति', 'लोकयुद्ध' आदि हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेखनीय स्थान

---

[74] हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना-पृ.224

[75] हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना-पृ.224

है।"[76] 'प्रगतिवादी लेखक संघ' के अधिवेशनों से भी इस साहित्य को भरपूर प्रश्रय मिला। कहानीकार, कवि, उपन्यासकार और निबंधकारों ने अपनी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा को प्रमुख स्थान दिया है। रामधारी सिंह 'दिनकर', नरेंद्र शर्मा 'अंचल', भगवतीचरण वर्मा, डॉ.रामविलास शर्मा, प्रकाशचंद्र गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, शिवदान सिंह चौहान, यशपाल, अमृतराय आदि हिंदी के वे प्रसिद्ध रचनाकार हैं जिन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा को अपने साहित्य में भूमिका के तौर पर लिया।

इस प्रकार हिंदी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधाराओं की उपस्थिति भारत के सर्वहारा वर्ग की करुण गाथा को प्रस्तुत करती है। श्रमिक वर्ग के शोषण, उसके विद्रोह तथा उसके सामाजिक-सांस्कृतिक सभी पक्ष का उल्लेख इन रचनाओं में उपलब्ध है। इसके साथ ही संगठनों की भूमिका को भी प्रस्तुत किया। भारत में मार्क्सवादी विचारधाराओं की प्रतिक्रियाओं, प्रभाव एवं औचित्य के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही पक्ष को प्रस्तुत किया गया है। साहित्य का विषय समाज के परिवर्तन के साथ ही बदलता है। अतः मार्क्सवाद की निष्क्रियता के साथ ही साहित्य में भी इसकी उपस्थिति कम ही होती गई।

5. बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के उपन्यास : एक परिचय

अंतिम दशक उपन्यास के क्षेत्र में सार्थकता को उपस्थित करता है। इस दौर में उपन्यास साहित्य अनेक विमर्शों के साथ जुड़ा। उपन्यास में उन वर्गों को पूरी तरह से अपनी अस्मिता के साथ जगह दी गई जो समाज में उपेक्षित थे तथा हाशिए पर ढकेल दिए गए थे। पूँजीवाद के नये शिकंजों जैसे अनेकतावादी संस्कृति, बाजारवाद आदि के सकारात्मक एवं नकारात्मक सभी पक्षों की वास्तविकता को उपन्यास साहित्य प्रस्तुत करता है। शताब्दियों से दबी-कुचली स्त्री का स्वर रचनात्मक उन्मेष के साथ भी मुखरित होता है। दलित और आदिवासियों की पीड़ा का उत्कृष्ट प्रस्तुतीकरण भी इसी दौर की उपलब्धि है। उपन्यास साहित्य अधिक से

---

[76] हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना-पृ.224

अधिक समाज और उसकी विसंगतियों तथा अनीतियों के साथ जुड़ता है। जिन विषयों को अ-साहित्यिक माना जाता था उन्हें मुख्य धारा के साथ जोड़ कर उपन्यासों की रचना होने लगी। अंचल विशेष की समस्याओं, उनकी भाषा का वैविध्य तथा लोक-जीवन पर भी उपन्यास की दृष्टि गई। यह कहना संदर्भगत होगा कि उपनयास ने समाज के प्रायोगिक पक्ष को अधिक प्रस्तुत किया। लेकिन इस दौर में लिखे उपन्यासों में भारत की जनसंख्या और भारत के श्रम शक्ति का 60 से अधिक प्रतिशत भागीदार यहाँ का श्रमिक-वर्ग अनुपस्थित ही नज़र आता है। उपन्यास और उपन्यासकार इस वर्ग के प्रति उदासीन ही रहे। अंतिम दशक के उपन्यासों को आधार बना शोधकार्य करने के दौरान इस तथ्य का सामने आना चौंका देने वाली बात थी। श्रमिक समस्याओं और उनके सामाजिक पख को विषय बनाकर, न के बराबर ही उपन्यासों की रचना हुई है।

'आवां' तथा 'इदन्नमम' जैसी उपन्यासों में श्रमिक जीवन की अभिव्यक्ति के बावजूद हर जगह इनकी समीक्षा प्रमुखतः स्त्री-मुक्ति या स्त्रीवादी दृष्टिकोण से की गई है और श्रमिक जीवन के पक्ष के पृष्ठभूमि पर धकेला गया है। अंतिम दशक के उपन्यासों के अध्ययन के बाद शोध कार्य के लिए चौदह उपन्यासों का चयन किया गया है। चयनित उपन्यासों का सम्यक परिचय इस प्रकार है-

नदी फिर लौट आई (1991)

रज्जन त्रिवेदी द्वारा रचित यह उपन्यास मूलतः बाँध निर्माण कार्य में कार्यरत ठेका मजदूरों की समस्याओं पर केंद्रित है। बाँध निर्माण कार्य के दौरान यह श्रमिक बाँध के पास ही बस्ती का निर्माण कर रहने लगते हैं। निर्माण कार्य की प्रक्रिया में अनेक ओवरसीयर, इंजिनीयर और ठेकेदार बदलते रहते हैं। लेकिन श्रमिकों का जीवन और उनकी समस्याएँ जैसी की तैसी रह जाती हैं। मजदूरी का काम ठेके में होने के कारण इन श्रमिकों को निर्धारित समय में अपनी दक्षता से भी अधिक काम करने पड़ते हैं। लेकिन अपने ठेकेदारों और मालिकों के भ्रष्टाचार के कारण बाँध

निर्माण का कार्य पूर्ण ही नहीं हो पाता। अतः बार-बार बाढ़ आती और बाँध के साथ बस्ती को भी उजाड़ जाती।

श्रमिकों का जीवन उच्च वर्ग के अधिकारियों और विशेषतः ठेकेदारों के भ्रष्टाचार के कारण कितना अधिक प्रभावित होता है उसका प्रस्तुतीकरण इस उपन्यास में है। ठेके का काम बार-बार मिलता रहे और उसके फलस्वरूप निर्माण कार्य कभी भी बंद न हो इस उद्देश्य से ठेकेदार और इंजीनियर मिल कर ही बार-बार बाँध में दरार सृष्टि करवाते हैं। इसके साथ ही सीमेंट, लोहा आदि की तस्करी भी करते हैं। लेकिन पुलिस बस्ती के श्रमिकों पर ही अकथनीय अत्याचार करता है। बड़े-बड़े अफसरों को प्रसन्न करने के लिए ठेकेदार बस्ती की मज़दूरनियों को उनके सामने भेंट करता है। स्त्री श्रमिकों के यौन-शोषण को इस उपन्यास में बड़े ही मार्मिक ढंग से दिखाया गया है।

कथापृष्ठ में ईमानदार इंजीनियर कुमार और उनके साथियों के आने से श्रमिकों की स्थिति में सुधार आते हैं। कुमार इन श्रमिकों में एकता और संगठन की भावना को जगाता है। वह ठेकेदारों के हाथों बिकता नहीं वरन श्रमिकों का हितैषी बनता है। उपन्यास में युवा श्रमिक गोविंदा और वृद्ध बाबा भी हैं जो शोषण और अनाचार की गहराई को समझ श्रमिकों को उसके विरुद्ध एकत्रित कर उनमें जागरण लाने का प्रयास करते हैं। श्रमिकों के विद्रोह और एकता तथा कुमार की सहकारिता के फलस्वरूप अनेक बाधाओं के बाद भी बाँध निर्माण कार्य संपन्न होता है तथा माधो जैसे ठेकेदार कानून के गिरफ्त में जाते हैं। उपन्यासकार ने न केवल श्रमिकों की समस्याओं और संघर्ष को प्रस्तुत किया है बल्कि उनके सांस्कृतिक पक्ष को भी उजागर किया है। इस उपन्यास की विशेषता श्रमिकों की एकता और सामाजिक सौहार्द पर टिकी है।

जुलूसवाला आदमी (1993)

'जुलूसवाला आदमी' उपन्यास रमाकांत की महत्वाकांक्षी उपन्यास थी, जो दुर्भाग्यवशतः उनके मृत्यु के उपरांत ही प्रकाशित हो पायी। इस उपन्यास का मुख्य स्रोत देश की राजनैतिक उथल-पुथल से जुड़ी है जिसके केंद्र में कम्यूनिस्ट और भारतीय कांग्रेस की राजनैतिक और वैचारिक संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही बहुत हद तक कम्यूनिस्ट पार्टी की अवसरवादी प्रवृत्ति को बखूबी उभारा गया है। सर्वहारा वर्ग को अनुप्राणित करता तथा उसके उद्धार के उद्देश्य से बना कम्यूनिज़म भारत जैसे श्रमिक बाहुल्य देश में उस समय विफल होता है जब यह वर्ग संक्रमण के व्यूह में फँसा हुआ था। स्वतंत्रता के उपरांत देश की राजनैतिक पृष्ठभूमि पर यह उपन्यास आधारित है। इस उपन्यास का एक पक्ष कम्यूनिस्ट और कांग्रेस की रणनीतियों पर आधारित है तो दूसरा पक्ष कॉमरेड़ और श्रमिकों की अवस्थाओं को प्रस्तुत करता है।

उपन्यास के दो भाग हैं। प्रथम भाग है-एक अतीत पुरुष और चंद छटपटाहटें तथा दूसरा है-भूरे शहर में लाल झंडा। पहले भाग में लेखक ने 'राकेश' नामक पात्र के माध्यम से युवा मानसिकता पर कम्यूनिजम् के प्रभाव को दर्शाया है। दूसरे भाग में यही राकेश जब पूर्ण रूप से इन विचारधाराओं को आत्मसात कर उसी मार्ग पर चलता है तो उसे राजनीति के तह में छुपे खोखले आदर्शों और अवसरवादी प्रवृत्ति से बेहद बाधा पहुँचती है। इन सबके बीच देश के किसानों, खेतिहर श्रमिकों तथा मज़दूरों और हड़ताल के विकास और प्रभाव को भी लेखक ने प्रस्तुत किया है। मशीनीकरण और सरकार की उदारवादी अर्थनीतियों का इस वर्ग पर प्रभाव को भी प्रस्तुत किया गया है। युवा वर्ग में श्रमिकों के उत्थान और देश के विकास तथा संगठन के प्रति समर्पित भाव को प्रस्तुत करने में यह उपन्यास सफल रहा है।

और पसीना बहता रहा (1993)

अभिमन्यु अनत द्वारा रचित अधिकांश उपन्यास मॉरिशस में स्थित भारतीयों के संघर्ष को अपने आप में समेटे हुए है। इस उपन्यास में मौरिशस के गन्ने के खेतों

तथा चीनी कारखानों में काम कर रहे असंख्य भारतीय बंधुआ मजदूरों की समस्याओं और संघर्ष की गाथा को प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास मजदूरों के संघर्ष के इतिहास की तीसरी कड़ी है। पहली कड़ी 'लाल पसीना' है जिसमें मजदूरों के क्रांति का बीजारोपण होता है। दूसरी कड़ी 'गाँधी जी बोले थे' है जिसमें क्रांति का वह बीज़ आकार ग्रहण करता हुआ पुष्पित होता है। 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास संघर्ष के गाथा की तीसरी और आखरी कड़ी है जिसमें श्रमिक संगठनबद्ध हो क्रांति के मार्ग को अपनाते हैं।

'और पसीना बहता रहा' उपन्यास मॉरिशस के मजदूर नेता पं.रामनारायण के आंदोलन पर आधारित है। इसके पात्र काल्पनिक होने के बावजूद भी वास्तविकता के बहुत करीब हैं। इस उपन्यास का मुख्य पात्र है हरि। हरि चीनी कारखाने में काम करने वाला एक श्रमिक है। उपन्यास का आरंभ इसके विद्रोहात्मक विचारधाराओं से होता है। वह पूँजीपतियों के बनाए नियमों को अन्याय की चरमसीमा मानता है। उसके अथक और समर्पित चेष्टाओं के माध्यम से श्रमिक जागृत होते हैं तथा संगठित भी होते हैं। अपने अधिकारों के लिए वे हड़ताल भी करते हैं। श्रमिकों की पहली हड़ताल विकल हो जाती है। लेकिन इससे उनका मनोबल हारता नहीं। वे पुनः संगठित होते हैं और अपने अधिकारों के लिए लड़ते हैं। इस उपन्यास में श्रमिकों की एकता है, संगठन निर्मित हुए हैं, हड़तालें होती हैं और साथ ही पूँजीपतियों के षडयंत्र और राजनैतिक दमन चक्र की गाथा भी है। लेकिन अंत में विजय श्रमिकों की ही होती है और उन्हें राजनैतिक शक्ति प्राप्त होती है तथा वे विधान सभा तक पहुँचते हैं।

अभिमन्यु अनत एक यथार्थवादी रचनाकार हैं। सभी घटनाओं को उन्होंने उसकी मार्मिकता के साथ बड़े ही सजीव ढंग से उभारा है। इस उपन्यास में साम्यवादी विचारधारा को अपनाया गया है। श्रमिक कहीं भी हिंसात्मक रूप धारण नहीं करते। वे पूरे धैर्य के साथ अपने संगठन के आदेशों और मार्गदर्शन के साथ एकत्रित हो अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ते हैं और सफल होते हैं।

धारा के बीच से (1993)

इस उपन्यास में एक तरफ बेगार प्रथा के कारण बंधुआ मजदूरों की समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है तो वहीं दूसरी तरफ कारखानों में कार्यरत श्रमिकों के संघर्ष को व्याख्यायित किया गया है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र गोविंद है जो बेगार पर श्रमिक बने शिवदास का बेटा है। श्रमिक का बेटा होने के बावजूद भी वह संघर्ष और स्वतंत्रता को ही अपना जीवन मानता है। उसकी विचारधारा अलग है और वह तात्कालिक राजनैतिक परिदृश्य से बहुत अधिक प्रभावित है। उपन्यास में जमींदारी टूट रही है, पूँजीपति उभर रहे हैं। गाँव के जमींदार जंगबहादुर सिंह भी पूँजीपति बन अनेक मिलों के मालिक बनते हैं। घटनाक्रम में गोविंद इन्हीं कारखानों में श्रमिक नेता बनता है। लेकिन 'वह स्वयं मजदूर नहीं, मजदूरों का नेता है। उसके पिता मजदूर हैं जिनका शोषण कर वह पेट पालता है। अपना नेतृत्व अक्षुण्ण रखने के लिए वह वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को क्रियान्वित करता है और अंततः स्वयं उसका शिकार हो जाता है। अंतिम समय वह सत्य का साक्षात् कर पाता है, पर तब तक वह इस दिशा में कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं रह जाता।' (फ्लैप से)।

उपन्यास में पूँजीपतियों के शोषण, भ्रष्टाचार व षडयंत्रों को दिखाया गया है। साथ ही संगठन की शक्ति, एकता और श्रमिकों के संघर्ष को भी प्रस्तुत किया गया है। भगवती राकेश ने उपन्यास में श्रमिकों के राजनीतिक महत्व को भी प्रस्तुत किया है। संगठन का राजनीति के साथ मेल एक सकारात्मक पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए किया गया है। लेकिन अंत में इसे भी पूँजीपतियों के भ्रष्टाचार का शिकार होना पड़ता है।

बीच में विनय (1994)

उपन्यास के शीर्षक के अनुसार ही निम्न-मध्यवर्गीय युवक विनय, एक ही आदर्श के आधार पर बने दो प्रतिगामी विचारधाराओं के बीच फँसा रहता है। प्रोफेसर भुवनेश चतुर्वेदी और कॉमरेड लक्ष्मण माधव दोनों ही मार्क्सवाद की सराहना करते हैं। लेकिन एक उसकी सैद्धांतिक पर अधिक महत्व देते हैं तो दूसरा

उसके आक्रामक और प्रायोगिक पक्ष पर अधिक विश्वास रखता है। इन दोनों से ही प्रभावित विनय के मन में श्रमिकों के उत्थान और विकास के लिए नवीन विचारधाराएँ जन्म लेती हैं। वह श्रमिकों में अपनी आज़ादी और विकास के लिए मार्क्सवादी विचारधारा के सैद्धांतिक पक्ष का प्रशिक्षण देना चाहता है। मन में एक ऐसी अवधारणा जागती है जिसकी सहायता से वह श्रमिकों की मानसिकता को ही बदल पाए। आनेवाली पीढ़ी को वह सशक्त विचारधारा प्रदान कर वैचारिक धरातल पर प्रगतिशील बना पाए। इस उपन्यास में गौण रूप से शिक्षा परिसर में व्याप्त भ्रष्टाचार, राजनीति और नैतिक अवमूल्यन का चित्रण भी बड़ी बेबाकी के साथ किया गया है।

उपन्यास का अंत एक फर्जी हाउसिंग सोसायटी के विरोध में किए जानेवाले वामपंथी आंदोलन से होती है। अपने व्यवसायों से हटाए गए कारीगरों एवं शिल्पकारों (जो श्रमिक बनने को विवश थे) को फिर से दूकानें मुहैया करवाने के लिए सरकार की तरफ से दी गयी ज़मीन पर ही पूँजीपति वर्ग अपने आलीशान महल बनवाना चाहते थे। कॉमरेड लक्ष्मण माधव की सहायता एवं नेतृत्व में ही आंदोलन को आगे बढ़ाया जाता है। यह आंदोलन एक तरफ जहाँ वामपंथी नेतृत्व की कलई खोलता है वहीं दूसरी तरफ मूल्यों के लिए अपने आपको अर्पित कर देने वाले युवा वर्ग की मानसिकता का संकेत देता है। आंदोलन में श्रमिक वर्ग की ही हार होती है और 'बीच' में फंसे विनय की मृत्यु।

सृजनात्मकता के आधार पर भले ही यह उपन्यास सफल न रहा हो लेकिन वामपंथी दल के नेतृत्व, आंदोलन के परिणामों तथा इन सभी के बीच श्रमिकों की भूमिका को यह उपन्यास प्रभावात्मक ढंग से उभारता है।

लहरों की बेटी (1994)

अभिमन्यु अनत के इस उपन्यास का देशकाल-वातावरण मॉरिशस है। इस उपन्यास में मौरिशस में रह रहे मछुआरों की सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति को चित्रित किया गया है। जीविका और पुश्तैनी तौर पर मछुआरा होने के बावजूद,

उपन्यास में प्रस्तुत यह वर्ग स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका निर्वाह नहीं करता। आर्थिक दुरावस्था और साधनहीनता के कारण वह गाँव के सेठ धनदेव साहब को अपना श्रम बेचता है। वे मछली पकड़ने का काम तो करते हैं लेकिन लाभ सीधे धनदेव साहब को ही जाता है। मूल रूप से इस उपन्यास में मछुआरों के श्रमिक रूप को ही प्रस्तुत किया गया है। जब यह मछुआरे अपनी उजरत में थोड़ी बढ़ोत्तरी की माँग करते हैं तब धनदेव साहब मशीनों वाली ट्रौलियों का प्रयोग करना शुरू कर देते हैं और कई श्रमिकों को काम से हटा देते हैं। इस उपन्यास के माध्यम से अनत घरेलू लघु उद्योगों और पारंपरिक जीविकाओं के बिखराव और उस पर पूँजी तथा मशीनों के वर्चस्व को प्रस्तुत करते हैं।

इसके साथ ही इस उपन्यास में श्रमिकों के संगठित रूप को गाँव वालों द्वारा आयोजित को-ऑपरेटिव सोसाइटी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, जिसके प्रति सभी श्रमिक सकारात्मक और निष्ठावान हैं। उपन्यास में पूँजीपतियों के शोषक-रूप को भी दिखाया गया है। अपने लाभ और श्रकिों के संघर्ष को कमजोर करने के लिए लखन जैसे मछुआरे की मृत्यु के षडयंत्र को भी प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास का दूसरा पक्ष श्रमिकों के आपसी संबंध, सहकारिता, मित्रता, परिवार-प्रेम जैसे सामाजिक और भावनात्मक पख को भी प्रस्तुत करता है। मछुआरों के सांस्कृतिक पक्ष को इसमें बखूबी उभारा गया है।

<u>नरककुंड में बास</u> (1994)

जगदीश चंद्र द्वारा रचित यह उपन्यास गाँव से शहर में आए अकुशल श्रमिकों के जीवन और समस्याओं को प्रायोगिक धरातल पर प्रस्तुत करता है। 'नरककुंड में बास' उपन्यास के पूर्व ही 'धरती धन न अपना', 'टुंडा लाट', 'मुट्ठी भर काँकर' जैसे उपन्यासों में लेखक किसानों और खेतिहर श्रमिकों की दुरावस्था को प्रस्तुत कर चुके हैं। प्रस्तुत उपन्यास का मुख्य पात्र है-काली। व्यक्तिगत कारणों के चलते काली गाँव से शहर आ जाता है। शहर का अजनबीपन और बेरोजगारी उसके लिए चिंता का विषय बनती है। कालांतर में अंततः काली को चमड़े के

कारखाने में काम मिलता है। चमड़े की धुलाई का काम अत्यंत गंदगी भरा होने के बावजूद भी वह विवश हो उसे करता है। खुजली की बीमारी को न सह पाने के कारण वह फोरमैन ओर मुंशी से श्रमिकों को मिलनेवाली सरकारी सहूलतों की माँग करता है तथा अपने साथी श्रमिकों में संघर्ष और संगठन की जानकारी फैलाता है। श्रमिकों में जागरूकता देख पूँजीपति वग्र उनमें फूट डालने का भरसक प्रयास करता है और इसके फलस्वरूप काली को मुंशी का काम सौंप देता है। लेकिन उपन्यास के अंत में काली को अपना कर्तव्यबोध होता है। वह फोरमैन के षडयंत्र को समझ पाता है। अपने मजदूर साथियों की भलाई और उनके विश्वास को ज्योतिर्मय करता है वह नौकरी छोड़ गाँव वापस लौटता है।

उपन्यास का कथानक इसके शीर्षक को सार्थक बनाता है। चमड़े के कारखाने की भीषण गंदगी, अस्वास्थकर परिवेश तथा इस कारण फैल रही बीमारियों ने श्रमिकों के जीवन को नर्क बना दिया है। शहर आने के बाद काली के लिए चमड़े का कारखाना ही नरक बन चुका था। इसके साथ ही उपन्यास में लेखक ने बस अड्डे के मजदूरों, बर्फ कारखाने के मजदूरों तथा बाजार में रेढ़ा खीचं रहे श्रमिकों के जीवन और समस्याओं को भी प्रस्तुत किया है। यह सभी प्रकार के श्रमिक अकुशल एवं असंगठित श्रमिक हैं।

काली का संघर्ष एक वास्तविक संघर्ष है जो गहरी हार्दिकता के साथ अंकित है। शहर में अपने घर और सरमाना संबंधी समस्या काली के लिए प्रमुख हैं। उसे शहर में चिड़ियों, चींटियों और चुहियों तक से ईर्ष्या होती है क्योंकि इनका अपना घर है। उपन्यासकार ने शहर में बसनेवाले इन अकुशल श्रमिकों के सामाजिक संबंध को भी गहराई से प्रस्तुत किया है।

<u>इदन्नमम</u> (1994)

यह उपन्यास बुंदेलखंडी जीवन के प्रामाणिक और अंतरंग अनुभव, पहाड़ी अंचल की धतरी और बीहड़ पहाड़ के जीवन के सामाजिक यथार्थ को गहरी मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है। उपन्यास ठेकेदारों, सरकारी अधिकारों और

राजनेताओं के भ्रष्टाचार और उपेक्षा से पीड़ित गाँव के श्रमिकों के जीवन को प्रस्तुत करता है। ठेकेदारों के प्रलोभनों और अपनी आर्थिक दुरावस्था के कारण गाँव के किसान अपनी जमीनें बेच देते हैं। उन ज़मीनों पर पहाड़ तोड़ गिट्टी बनाने के क्रैशर लग जाते हैं। लेकिन इन क्रैशरों पर गाँववालों को रोजगार नहीं मिलता। ठेकेदार बाहर से श्रमिक लाते हैं। इस उपन्यास की मुख्य नायिका है-मंदाकिनी। वह अपने गाँववालों को एकत्रित करती है। उनमें संगठन के प्रति जागरूकता लाती है और संगठित भी करती है। वह लोगों में सामूहिक संघर्ष की ज्योति जलाती है और इसलिए लोकशक्ति को जागृत करती है।

इस उपन्यास में अभिलाख सिंह जैसे ठेकेदारों के शोषण के साथ-साथ मंदाकिनी जैसी साहसी श्रमिक नेताओं की वास्तविकता को प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में अपने जल, जंगल और जमीन से विस्थापित हो रहे आदिवासी श्रमिकों की बदहाली को भी प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास का एक और पक्ष भी है जो स्त्री साहस और मुक्ति की व्यथा को प्रस्तुत करता है। मंदाकिनी का साहस ही उसे अभिलाख जैसे ठेकेदारों से लड़ने को अनुप्राणित करता है तथा श्रमिकों के उत्थान के मार्ग में वह अपने जीवन को उत्सर्गीकृत करती है।

<u>मुखड़ा क्या देखे</u> (1996)

यह अब्दुल बिस्मिल्लाह का दूसरा उल्लेखनीय उपन्यास है। यह इलाहाबाद के पास के दो गाँवों बलापुर और घुघापुर तथा इसमें निवास कर रहे चुड़िहारों के जीवन पर आधारित और विकसित होता है। इस उपन्यास में लेखक ने पूँजी के आगमन के साथ गाँव के बिगड़ रहे सामाजिक-आर्थिक संबंधों को प्रस्तुत किया है। उद्योगों की स्थापना और उनमें मशीनों के प्रयोग के कारण चुड़िहारों को अपना पुश्तैनी धंधा छोड़ शहर की तरफ भागना पड़ता है। लेकिन शहर का डर और अजनबीपन उन्हें भारी पड़ता है। उपन्यास के अंत में इसका मुख्य पात्र अली अहमद अपने परिवार के साथ पुनः वापस लौटता है।

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने श्रमिकों और चुड़िहारों का गाँव के जमींदारों द्वारा शोषण के अनेक रूपों को प्रस्तुत किया है। उपन्यास में स्वाधीनता के बाद की पटेलवादी राजनीतिक कट्टरता के जनसंघी संस्करण को लेखक विस्तारपूर्वक उद्‌घाटित करता है। श्रमिकों के सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष को बखूबी उभारा गया है। उपन्यास में श्रमिकों की धार्मिक परिस्थितियों के विभिन्न पक्ष को भी लेखक प्रस्तुत करते हैं। मुस्लिम समाज पर आधारित इस उपन्यास में हिंदू धर्म के रीति-रिवाजों के साथ ही ईसाई धर्म की मान्यताओं तथा धर्म-परिवर्तन का श्रमिकों पर प्रभाव को भी प्रस्तुत किया गया है। चूड़िहार अलि अहमद के परिवार के माध्यम से लेखक देश के उन हज़ारों शिल्पकारों की व्यथा को प्रस्तुत करता है, जिसने पूँजी के आगमन और उद्योगों की स्थापना के मार को सहा है।

<u>बेदखल</u> (1997)

यह उपन्यास कमलकांत त्रिपाठी जी का दूसरा उपन्यास है जो उनके पहले उपनयास 'पाहीघर' का ही विस्तार माना जाता है। सन् 1957 के स्वतंत्रता आंदोलन में अवध की रियाया अंग्रेज़ों के खिलाफ तालुकेदारों के साथ मिलकर लड़ी थी। लेकिन अब अंग्रेज़ और तालुकेदार एक हैं। जनता गरीबी झेलती जहाँ की तहाँ है। जमींदार जब चाहे तब उसे बेदखल कर सकता है। इन्हीं परिस्थितियों में किसान भूमिहीन हो खेतिहर मजदूर बनने के लिए विवश हो रहा था। सन् 1918 के आस-पास अवध के किसानों ने बाबा रामचंद्र के नेतृत्व में ताल्लुकेदारों के विरुद्ध आंदोलन छेड़ा था। इसी आंदोलन का बहुत प्रामाणिक और सजीव चित्रण इस उपन्यास में प्रस्तुत है। किसानों के नेताओं को यह उम्मीद थी कि गाँधी जी जमींदारों और ताल्लुकेदारों के विरुद्ध उनके संघर्ष में उनका साथ देंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। गाँधीजी तथा कांग्रेस के अनेक नेता किसानों को शांति और अहिंसा का पाठ पढ़ाते रहे और साहूकार तथा ताल्लुकेदार उनका शोषण करते रहे। किसानों के आंदोलन की असफलता और कांग्रेस द्वारा किसानों के आंदोलन को समर्थन न देने का सच इस उपन्यास में भली भाँति उजागर हुआ है। उपनिवेशवाद, सामंतवादी और

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के तहत किसानों की बेदखली और उनकी दुरावस्था का चित्रण उपनयास का केंद्रीय कथ्य है। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका, उसकी अप्रासंगिकता, बढ़ती महँगाई, गरीबी और किसानों की बेदखली को उपन्यासकार विश्व स्तर की समस्याओं से जोड़ कर प्रस्तुत करते हैं।

इस उपन्यास में अनेक घटनाएँ ही नहीं पात्र भी इतिहास के पन्नों से संपर्क रखते हैं। जैसे-बाबा रामचंद्र, पंडित नेहरू, पुरुषोत्तमदास टंडन, कृष्णकांत मालवीय, गौरीशंकर मिश्र आदि। परंतु इनका प्रयोग केवल कथ्य को प्रामाणिकता देने के लिए ही है। पूरे उपन्यास में सूचित एक ऐसा पात्र है जो भूमिहीन किसानों और खेतिहर श्रमिकों की समस्याओं, उनके शोषण तथा आंदोलन की विफलता के प्रभाव को भोगने की विवशता को प्रस्तुत करता है।

<u>पृथी की पीड़ा</u> (1998)

डॉ.प्रमोद कुमार अग्रवाल द्वारा रचित यह उपन्यास घरों में काम करनेवाली नौकरानियों पर केंद्रित है। पृथी और उसका परिवार गाँव में ठेकेदार के शोषण और कर्ज के बोझ को न चुका पाने के कारण अपना गाँव छोड़ रोजगार की तलाश में कलकत्ता शहर आ जाते हैं। शहर में पृथी बाई का काम करती है और उसका पति रघु खटालों में साफ-सफाई का कार्य करता है। यहीं से इनका जीवन नवीन रूप से आरंभ होता है।

इस उपन्यास में अग्रवाल जी ने गाँव से शहरों की ओर विस्थापित हो रहे श्रमिकों के जीवन की समस्याओं को चित्रित किया है। अकुशल श्रमिक होने के नाते रघु को समय और आवश्यकता के अनुसार भिन्न-भिन्न जगहों पर काम करना पड़ता है। अतः वह मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment) का शिकार होता है। उपन्यास में घरों में काम करनेवाली नौकरानियों के व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओं पर गहरी दृष्टि डाली गई है। श्रमिकों का परिवार नियोजन जैसे सामाजिक जागरूकता और कर्त्तव्य की अज्ञानता और उसके परिणामों को भी उपन्यासकार प्रस्तुत करते हैं। स्त्री-श्रमिकों की समस्याओं और

समाज में उनकी स्थिति को विभिन्न पक्षों की सत्यता के साथ उभारा गया है। इसके साथ ही उपन्यास में महानगर निगम में कर्मचारियों और श्रमिकों की भर्ती संबंधी भ्रष्टाचार को भी प्रस्तुत किया गया है। आर्थिक दुरावस्था एवं पारिवारिक विघटन के कारण पृथी अपने जीवन के अंतिम क्षणों में अकेली रह जाती है तथा अपने सहृदय मालिक बापी के घर पर जीवन-त्याग करती है।

<u>आसमान झुक रहा है</u> (1998)

हरिसुमन विष्ट के इस उपन्यास में कुमाऊँ अंचल के धड़कनों को सुना जा सकता है। इस उपन्यास में शिल्पकारों की त्रासदी को प्रस्तुत किया गया है। मनिया लोहार का जीवन इस त्रासदी को दृश्यमान करता है। गाँव के ठेकेदारों का शोषण और पंचायत की भ्रष्ट और स्वार्थी राजनीति को भी प्रस्तुत किया गया है। पूँजी के आगमन, बाजारवाद की बढ़ती छाया और संस्कृति के कारण मनिया लोहार अपनी जीविका को छोड़ श्रमिक बनने की निष्पत्ति लेता है। ठाकुरों का कहा न मानने के कारण वह षडयंत्र का शिकार बनता है तथा घटनाक्रम में उसकी हत्या कर दी जाती है। इस उपन्यास में दलित श्रमिकों की पीड़ा और सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में संवेदनात्मक दृष्टि डाली गई है। पहाड़ों में वास कर रहे लोग जिनमें किसान, खेतिहर श्रमिक तथा बेरोजगारों की संख्या अधिक है, इस उपन्यास के मुख्य पात्र बने हैं। पहाड़ी किसानों की दुर्दशा को उपन्यसाकार ने वास्तविकता के साथ जोड़ा है। भोला भारत के उन बेरोजगार नौजवानों को प्रस्तुत करता है जो मजदूरी पाने की आशा में जमींदारों तथा पूँजीपतियों के आश्वासन में फँसकर उनके दास बनते हैं और पूँजीपति वर्ग उनका भरसक शोषण करता है। गाँव में स्कूल और सड़क निर्माण कार्य में मजदूरी दिलाने की आशा के साथ नैनीसिंह भोला से हर प्रकार का काम करवाते हैं, पर जब भोला और उसके परिवार को पैसों की जरूरत होती है तब वे उसके बदले भोला से उनकी वह जमीन माँगते हैं, जो गाँव में पाठशाला बनने के लिए दान में दी गई थी। नैनीसिंह के माध्यम से पूँजीपति वर्ग के वास्तविक स्वभाव को दिखाया गया है। वह गाँव में आए सभी परियोजनाओं को भ्रष्ट नेताओं और

पंचायतों के साथ मिलकर हड़प लेता है। भोला जैसे अनेक बेरोजगार युवकों की आशाओं पर पानी फिर जाता है। पहाड़ में रोजगार की सीमित संभावनाओं के कारण वे दूसरी जगहों को विस्थापित होने के लिए विवश होते हैं। टोकरी बनाने वाले शेरीराम के माध्यम से लेखक शिल्पकारों की वर्तमान अवस्था और जीविका संबंधी समस्याओं और संकट को प्रस्तुत करते हैं।

उपन्यास में बसंती, हँसुली देवी तथा गोपुली लुहारिन के माध्यम से स्त्री-श्रमिकों की दुर्दशा और अंधकार भविष्य को प्रस्तुत किया गया है। पूँजीपतियों के शोषणों का परिणाम ही उनके लिए विद्रोह को जन्म देता है। अतः उपन्यास के अंत में भोला नैनीसिंह के विरुद्ध प्रतिवाद करता है।

आवां (1999)

'आवां' चित्रा मुद्गल का एक सशक्त उपन्यास है। उपन्यास बंबई की ट्रेड यूनियनों और मजदूर संगठनों के जीवन संघर्ष को लेकर लिखा गया है। उपन्यास के दो पक्ष हैं, जो एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं। एक तो यह की वर्ग-हीन समाज रचने के महान उद्देश्य को सामने रखकर श्रमिकों के हक में लड़ने वाली ट्रेड यूनियनें आज स्वयं सत्ताकांक्षियों की कठपुतली बन गई है और उनका संघर्ष लक्ष्यभ्रष्ट हो चुका है। दूसरा पक्ष समाज में उत्पीड़ित स्त्री की छवि को प्रस्तुत करता है। उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते संबंधों की अर्थवत्ता को मूल्यांकित करते समाज में स्त्री के स्थान और उसके प्रति दृष्टिकोण को लेखिका बड़े ही संवेदनशील कथा के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं।

श्रमिकों का विकास, उद्धार और उनके अधिकारों की लड़ाई को अपना मानकर उभरे और बने संगठन की नींव पर सत्ताधिकार और अवसरवादिता की घुन लग चुकी है। अब संगठनों का लक्ष्यस्थल श्रमिक नहीं वरन सामाजिक एवं राजनीतिक शक्तियों को हथियाना है और इस मार्ग में श्रमिक ही उसका सबसे बड़ा हथियार बना है। उपन्यास में श्रमिक संगठन 'कामगार आघाड़ी' और 'सेना की लोकशाही' की रणनीतियों, राजनीतिक दावपेंच और श्रमिकों को अपनी ओर आकर्षित कराने के

जोशीले भाषणों के दस्तावेज को प्रस्तुत किया गया है। संगठन के अग्रगण्य नेताओं के व्यक्तित्व के माध्यम से लेखिका ने उनके चरित्र के नकारात्मक पक्षों को भी उभारा है। अंतिम दशक के एक विशेष सामाजिक परिवर्तन जो एक तरह का सामाजिक सुधार है उसे लेखिका ने अपने उपन्यास का एक मुख्य बिंदु बनाया है। वह है देह-व्यवसाय करनेवाली वेश्याओं का श्रमिक रूप धारण करना। अपने अभिशप्त जीविका को छोड़, श्रमकार सम्मान के साथ जीने की इन स्त्रियों की चाह इस उपन्यास की नवीनता को प्रस्तुत करता है। लेखिका ने इस प्रकार की स्त्री श्रमिकों की सामाजिक परिस्थितियों को भी वास्तविक धरातल पर परखा है।

उपन्यास की सूत्रधार, मजदूरों के लिए आजीवन संघर्ष करनेवाले पक्षाघात रोग से पीड़ित देवीशंकर पांडेय जी की अत्यंत संवेदनशील बेटी नमिता है। नमिता जहाँ एक तरफ संगठन की निष्क्रियता, उसके खोखलेपन और मूलयहीनता का अनुभव करती है वहीं पुरुष प्रधान समाज में कठपुतली बनी स्त्री की उत्पीड़न को भी सहती है। उपन्यास के अंत में नमिता का मोहभंग होता है। वह अपनी माँ समान किशोरीबाई के पास लौटती है। किशोरीबाई एक मजदूर माँ है। उसके पास लौटने का अर्थ है-संघर्ष की मूल नैतिक भूमि की ओर वापसी। उपन्यास के अंत में अवतार सिंह 'पाश' की कविता का प्रस्तुतीकरण इसी बात की ओर संकेत करता है। वह श्रमिकों के अधिकार की लड़ाई लड़ने के लिए प्रतिबद्ध होती है और उसे ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाती है।

इस उपन्यास में कारखानों और मिलों में काम कर रहे तथा पापड़ आदि बेलने का काम कर रही बेलनहारियों के जीवन की समस्याओं और परिस्थितियों को प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही श्रमिकों के झोपड़-पट्टियों के वर्णन के साथ उनके सामाजिक जीवन को भी प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार देखा जाए तो अंतिम दशक के उपन्यास साहित्य में बहुत ही कम ऐसे उपन्यास लिखे गए जिनमें श्रमिकों की समस्याओं को मूल स्वर प्राप्त हुआ है।

अपने प्रारंभिक काल से लेकर आज तक श्रमिक वर्ग उपेक्षित ही रहा है। वे कारण जिन्होंने भारतीय श्रमिक वर्ग को पनपने और विकसित होने की जमीन प्रदान की थी, वह आज भी कमोवेश समाज में उपस्थित हैं। यह उपस्थिति अब नए मुखौटों और नीतियों के माध्यम से हो रहा है। एक समय में इस वर्ग की समस्याओं को अपने लेखन का मुख्य स्वर बनाने वाला साहित्य भी आज इनके प्रति मौन धारण किए हुए है।

* * *

द्वितीय अध्याय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : शोषण व संघर्ष

1. पूँजीपतियों के शोषण का वीभत्स-रूप
    1.1 अमानवीय व्यवहार
    1.2 स्वार्थ की प्राथमिकता
    1.3 लूटपाट और दहशत
    1.4 बेईमानी और ईर्ष्या
    1.5 दिखावा और ढोंग
    1.6 बिचौलियों की भूमिका
2. श्रमिकों का संघर्ष
    2.1 पिछड़ापन और आत्मपीड़ा
    2.2 विवशता
    2.3 शोषण के विरुद्ध चेतना
    2.4 एकता और जागरण
    2.5 समस्याओं की प्रस्तुति
    2.6 आक्रोश
    2.7 विरोध एवं विद्रोह
    2.8 श्रमिकों का संगठित-रूप
    2.9 हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक मार्ग
3. श्रमिक जीवन और जीविका

द्वितीय अध्याय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : शोषण व संघर्ष

मजदूर वर्ग के संघर्ष की गाथा अपने आप में इतिहास का समाविष्ट है। अपनी कुशलता, कारीगरिता और परिश्रम के योगदान के कारण इस वर्ग ने न केवल पूँजी, पूँजीवाद एवं पूँजीवादी वर्ग के जड़ों को सशक्त बनाया। बल्कि इसके साथ ही राष्ट्र निर्माण में भी इन्होंने अपनी उपस्थिति का दस्तावेज प्रस्तुत किया। फ्रांस और इंग्लैंड के इतिहास में श्रमजीवी वर्ग ने जहाँ अपने राष्ट्रों को पूँजीपति वर्ग के शासन से मुक्त कर देश के राजनीतिक परिदृश्य को अपने हाथों से रंगा है। वहीं भारत के मजदूर वर्ग ने भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में अपनी संख्या बहुलता, सक्रिय भूमिका और योगदान के कारण सदैव स्मरणीय है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लंबी कालावधि एवं अनेक स्तर पर विविधिताओं के वैशिष्ट्य को समेटे हुए भी श्रमिक वर्ग के प्रत्येक संभावित रूप एवं स्तर पर संग्रामी की भागीदारी को निभाया है।

पूरे विश्व में भाप मशीन और भारत में रेल के आगमन के साथ ही मशीनीकरण वाले यथाकथित युग के प्रारंभ को माना गया है। इसके आगमन के साथ ही भारतीय मजदूर वर्ग या श्रमजीवी-श्रेणी पूर्ण रूप से परिभाषित तो नहीं हो पायी थी। पर, हाँ एक ढाँचा □रूर □ल चुका था। मशीनी प्रगति के तथा भारतीय समान के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन के साथ ही यह वर्ग अपने अस्तित्व में आता रहा।

जब समस्याएँ समायोजना के प्रत्येक स्तर के साथ समझौते वाली लड़ाई लड़ते-लड़ते सहिष्णुता की हर सीमा को लांघ जाती है तथा उसमें आत्मचेतना और सामाजिक जागरण का समावेश हो जाता है तब संघर्ष पनपता है। विश्व के सर्वहारा

वर्ग के साथ भी यही हुआ। वर्षों से अपने श्रम को बिना किसी अवरोध के सामंतों, पूँजीपतियों के सम्मुख बेचते हुए एवं उनके वर्चस्व के साम्राज्य को दृढ़तर करते रहे। लेकिन इस प्रक्रिया में जब उन्होंने 'स्व' को जाना और उसका प्रस्तुतीकरण हुआ तब पूरे विश्व में सर्वहारा के संघर्ष का अंकुरोदय हुआ।

पूँजीपतियों के असहनीय अत्याचार के खिलाफ संघर्ष का शंखनाद कहाँ से हुआ वह कहना तो कठिन है, परंतु इसकी गूँज विश्व के हर कोने तक फैली। भारत का मज़दूर भी इससे प्रेरित हुआ। कृषि-प्रधान भारत के सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का विनाश कर अंग्रेज़ों एवं स्थानीय पूँजीपतियों ने भारतीय श्रमिक को पैदा किया। जैसा कि यह कहा जा चुका है और इतिहास ने प्रमाणित किया है श्रमिक हर तरह से पिछड़ा हुआ था। गाँव का देहातपन तो इसके साथ था ही, साथ ही वह अज्ञानता, अंधविश्वास और अशिक्षा के बोझ तले दबा हुआ था। दरिद्रता ने जहाँ उसे समय से कहीं अधिक वर्ष पीछे ढकेले हुए रखा था वहीं वह जाति, धर्म एवं क्षेत्र की सीमाओं में बँटा हुआ था। यह प्रमुख कारण थे कि भारतीय श्रमिकों में एकता नहीं थी और इसी कारण ही शोषण और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने का साहस और संकल्प देर से ही पनपा। लेकिन वर्षों तक शोषण को सहते रहने के बाद समयचक्र में उसका विस्फोट संघर्ष को ही जन्म देता है और भारतीय सर्वहारा के साथ भी यही हुआ। प्रगतिशील भारत में आज भी श्रमिक संघर्षरत है।

1. पूँजीपतियों के शोषण का वीभत्स-रूप

मनुष्य को जब दूसरों को अपने अधीनस्थ रखने की शक्ति प्राप्त होती है और उसमें स्वार्थ के सम्मेलन के साथ उपलब्धियों को पाने की प्रबल इच्छा जागती है तब वह सही-गलत, मानवीय-अमानवीय सभी सीमाओं को तोड़ देता है। 'पूँजी' के आगमन से पूँजीपति नामक वर्ग का उद्भव हुआ। इसी पूँजी के बल पर यह वर्ग सर्वशक्तिमान का रूप धारण करने के लिए अति व्यवस्थित रूप से समाज के हर क्षेत्र में फैलने लगा। जीविकोपार्जन के हर क्षेत्र और स्रोत पर तो अपना एकाधिकार फैला ही चुका था अब इसकी नज़रें साधारण जनता पर थी जिसे पहले ही सर्वहारा

का उपमान मिल चुका था। सर्वहारा से उसके श्रम-शक्ति को हर संभव रूप में प्राप्त करने के लिए पूँजीपति मानव से दानव बनता गया। अपने व्यवसाय और लाभ में उन्नति के लिए वह श्रमिकों का हर तरह से शोषण करता रहा। इतिहास के पृष्ठों में पूँजीपतियों के शोषण का विभत्स रूप दहशत को कंपित करता रहा है। श्रमिकों के साथ पशुओं का व्यवहार करते थे। अपने लाभ के लिए श्रमिकों को उनके मालिक मज़दूरी भी सही नहीं देते थे। अनेक बहाने कर वे उनके हक छीना करते थे। पूँजीपतियों ने अपने नैतिक मूल्यों का 'शवदाह' कर दिया था ओर उसकी जगह एक कृत्रिम और दिखावे भरे संस्कृति को प्रस्तुत किया था। धर्म, संस्कार, मूल्य यह सब उनके लिए केवल समाज में अपने आपको प्रतिष्ठित करने के माध्यम एवं इकाई मात्र बन कर रह गये थे। मार्क्स ने अपने घोषणापत्र में इस वर्ग के हृदयशून्य व्यवहार एवं नग्न आत्मस्वार्थ की चर्चा की है। उन्होंने लिखा है-"बुर्जुआ वर्ग ने, जहाँ भी उसका पलड़ा भारी हुआ है, सभी सामंती, पितृसत्तात्मक, 'सौम्य' संबंधों का अंत कर दिया है। उसने मनुष्य को अपने 'स्वाभाविक श्रेष्ठों' के साथ बांधे रखनेवाले नाना प्रकार के सामंती संबंधों की निर्ममतापूर्वक धज्जियाँ उड़ा दी हैं और नग्न आत्मस्वार्थ के 'नकद पैसे कौड़ी' के हृदयशून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा संबंध बाक़ी नहीं रहने दिया है। धार्मिक श्रद्धा के सर्वांगीण आनंदातिरेक को, वीरोचित उत्साह और कूपमंडूकतापूर्ण भावुकता को उसने स्वार्थमय हिसाब-किताब के बर्फ़ीले पानी में डुबा दिया है। मनुष्य के वैयक्तिक मूल्य को उसने विनिमय-मूल्य में परिणत कर दिया है और अनगिनत आलोच्य प्रदत्त तथा अर्जित स्वाधीनताओं की जगह उस एक अनैतिक स्वाधीनता की स्थापना की है, जिसे मुक्त व्यापार कहते हैं। एक शब्द में, धार्मिक और राजनैतिक भ्रांतियों के आवरण के पीछे छिपे शोषण के स्थान पर उसने नग्न, निर्लज्ज, प्रत्यक्ष और पश्विक शोषण की स्थापना की है।"[1] इससे स्पष्ट है कि पूँजीवादी नामक शोषक वर्ग ने पूँजी एवं क्षमता के नाम पर श्रमिकों का अकथनीय शोषण किया। ऐसा शोषण जिस पर

[1] कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र, मार्क्स-एंगेल्स-पृ.33

इस बुर्जुआ वर्ग के किसी प्रकार का अवशोष नहीं था। क्योंकि सभी कार्य, सभी प्रकार के व्यवहार, संबंध यहाँ तक कि धर्म को भी वह अपने स्वार्थ की हिसाब-किताब से तौलते थे।

1.1 अमानवीय व्यवहार

पूँजीपति और शोषण एक ही सिक्के के दो पहलू लगते हैं। इतिहास से लेकर आज तक शायद ही ऐसा कोई मालिक, जमींदार या पूँजीपति होगा जिसने श्रमिकों का हर संभव प्रकार से शोषण न किया हो। अपने लाभ, बचत एवं आतंक को बरकरार रखने के लिए इस वर्ग के लोग सर्वहारा या श्रमिक वर्ग पर अकथनीय अत्याचार करते रहे हैं। किसी भी परिस्थिति में श्रमिकों की समस्या का हल उन्हें केवल अत्याचार ही दिखता है। समस्याओं का समाधान इस प्रकार करते हैं जिसमें श्रमिक को हल मिले न मिले परंतु उनका लाभ हो जाए। आर्थिक हीनता, पारिवारिक समस्याएँ, स्वास्थ्य जनित समस्याओं की विनती लेकर जब भी कोई मजदूर अपने स्वामी के पास गया है तो उसे परित्याग, असहनीय कथन और अमानवीय व्यवहार के अतिरिकत कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ है। पूँजीपतियों का व्यवहार मज़दूरों के अस्तित्व को झकझोर देता है। उसकी तुलना पशु से की जाती है तथा कभी-कभी पशुओं को उससे अधिक मूल्य दिया जाता है।

पूँजीपति वर्ग के द्वारा किए जानेवाले इन अमानवीय व्यवहार को 'नरककुंड में बास', 'बेदखल', 'इदन्नमम', 'पृथ्वी की पीड़ा' आदि उपन्यासों में विभिन्न संदर्भ में दर्शाया गया है।

'नरककुंड में बास' उपन्यास में जब उपन्यास का मुख्य चरित्र तथा नायक कालि सेठ जी से चमड़े के कारखानों में काम करनेवाले श्रमिकों की सहूलियतों के लिए बात करना चाहता है तो फौरमैन उसे भद्दी गालियाँ देता है और धमकियाँ दे कर उसे दबाना चाहता है। इसलिए कालि के साहस एवं विरोध की भावना को वह अपने रूखे व्यवहार के माध्यम से सेठजी की नज़रों से बचाने की कोशिश करता

है। "सेठ रामप्रकाश दफ्तर से बाहर निकला तो काली लपककर उसके सामने जा खड़ा हुआ और हाथ जोड़ दिए, सेठजी, आपसे एक बात करनी थी।"

काली को देख फोरमैन भड़क उठा, ‘कुत्ते की औलाद, तेरी यह हिम्मत कि सेठ साहब का रास्ता रोके। पीछे हट, नहीं तो तेरा तैया-पाँचा एक कर दूँगा। ते□ाब की हौज तें फेंक तेरी पूरी तरह मलनी कर दूँगा।’

श्रमिकों की समस्याओं को मालिक वर्ग सदैव उपेक्षित कर देते हैं तथा उनकी किसी भी विवशता को एक मज़ाक बना देते हैं। उन्हें लगता है मज़दूर श्रेणी के लोग अपनी समस्याओं के समाधान की कोशिश स्वयं न करके मालिकों के पास भागे-भागे आ जाते हैं। चमड़े के कारखाने का एक मज़दूर निहाले जब फोरमैन से अपनी पत्नी के इलाज के लिए कुछ सहायता माँगता है तो वह उसे मना कर देते हैं।

"न भाई, मैं इस हिसाब-किताब में नहीं पडूँगा। लालाजी ने हमारी बिरादरी को ऊँचा उठाने के लिए इतना बड़ा दान दिया है। हमें तो अब उजरत देते हुए भी शर्म महसूस होनी चाहिए। तुम पेशगी पैसे माँग रहे हो। इनकार में हाथ हिलाते फोरमैन आगे बढ़ गया।"[2]

इसी प्रकार ‘धारा के बीच से’ उपन्यास में भी जब गोविंद के बाबू (पिता) को तेज़ बुखार चढ़ता है तो उसके पास वैद जी को फीस देने के लिए यहाँ तक कि दवाइयों के लिए भी पैसे नहीं हैं। इस कारण वह देर रात मुंशीजी के यहाँ कुछ आर्थिक सहायता के लिए गिरता पड़ता पहुँचता है।

अचानक नींद में विघ्न पड़ जाने से वे चौंक कर उठे। बालकनी पर आए और गुस्से में चीख उठे, "कौन है रे? इतनी रात को शोर मचाता है-ऐं?"

"मैं हूँ मालिक, गोविंद। बाबू की तबीयत बहुत खराब..."

गोविंद पूरी बात भी न कह पाया था कि मुंशीजी गरज उठे, "तो मैं क्या कोई बैद-हकीम हूँ कि यहाँ चला आया-ऐं?"

---

[2] नरककुंड में बास, जगदीशचंद्र-पृ.242

"हाँ, बाप ने खज़ाना न छोड़ रखा है यहाँ! चले आए सीधे 'मालिक-मालिक' गोहराते, सीधी राह पाली है। हूँ, बुद्धू समझ रखा है!" मुंशी ने तीखी फटकार बताई।

"अबे तू जाता है कि नहीं यहाँ से?" मुंशीजी बड़े जोर से झुँझला उठे।"[3]

ऐसी परिस्थितियाँ जहाँ मनुष्य होने के नाते तथा मानव-धर्म को जीवित रखने के लिए अपरिचित व्यक्ति भी एक दूसरे की सहायता करते हैं तथा इन परिस्थितियों में साहस बँधाते हैं, वहाँ पूँजीपति वर्ग अपने ही मज़दूरों की पीड़ा एवं असहायता का प्रत्युत्तर अमानवीय एवं अशोभनीय व्यवहारों से देता है। यह व्यवहार ही शोषित वर्ग के उत्पीड़न एवं शोषक वर्ग के शोषण की प्रतिछवि को प्रस्तुत करता है।

अभिलाख सिंह का खदान एवं क्रैशर में काम करने वाले श्रमिकों के साथ व्यवहार अमानवीयता की पराकाष्ठा के ऊपर उठकर पाशविकता की सीमा तक चला गया है। इसका चित्रण 'इदन्नमम' में अति मार्मिक ढंग से किया गया है। खदान की एक श्रमिका लछो के पति की तबीयत खराब होने के कारण और असह्य खाँसी के कारण जब मशीन के पास काम करने के लिए नहीं जा सकता तब अभिलाख सिंह उसके घर आकर उसे दवा के बदले दारू देता है और काम में जल्द-से-जल्द आने की धमकी देता है। लछो इसी घटना को इस प्रकार व्यक्त करती है-"हम तो नहीं पहुँच पाए और मालिक जी आन पहुँचे। ठाड़े हो गए ऐन हमारी टपरियन के द्वारा। हमें तो लगा हमारी देह में कम्पन फैल गई है। तेरौ कौल, डरन के मारे घिग्घी-सी बँध गयी।

x x x

वे कहने लगे, 'जुर चढ़ा है सो? पइसा कहाँ पड़ा है, उसके लिए क्या करें हम? सोलिंग नहीं होगा तो मसीन में क्या पिसेगा? जगा जल्दी, एक ट्रक सोलिंग निकालेगा।" x x x

---

[3] धारा के बीच से, भगवती राकेश-पृ.29

मालिक जी हमारे बेबसी कितनी समझे, कितनी नहीं सो कह सकते हम तुमसे। अपेन कारे रंग के बैग में से सफेद रंग की बोतल निकारी और हमें पकरा दी।

जाते हुए बोले, परबतिया को पिबा दै जल्दी और तें भी पी ले। ताकत आ जाएगी और जल्दी चले आओ। खदान में काम पड़ा है।"[4]

अभिलाख सिंह अपने स्वार्थ एवं लाभ के कारण परबतिया और लछो को उस बिमारी की हालत में भी शराब देता है ताकि उसके नशे में वे दोनों बैल की तरह परिश्रम कर सके। अभिलाख मज़दूरों को पैसे दवा के लिए तो नहीं दे सकते पर दारु पिला कर नचा सकते हैं और इसका मजा ले सकते हैं। "दवा के न सही, दारू को तो वे बेशक देते हैं। लो, वो देख लो सामने। उनकी मजूरिनी शराब पी-पीकर नच रही है और वे शहंशाह बने लीला मालिका को बगल में बिठाये देख रहे हैं महिफिले-रौनक। करामती आदमी-ठहरे।"[5]

अपनी झूठी शान के दबदबे को बचाए रहने के लिए भी साहूकर, जमींदार तथा इसी वर्ग के लोग अवसर प्राप्त होते ही अपने अमानवीय व्यवहार के माध्यम से निम्न वर्ग के लोगों में डर पैदा करते हैं। 'बेदखल' उपन्यास में खेतिहर मज़दूर सुचित जमींदार पदारथ के आदेश के बाद भी उसकी जमीन पर मज़दूरी करने से मना कर देता है। इस अपमान और आदेश के उल्लंघन का बदला लेने के लिए सुचित को पहलवानों से लड़ने के लिए कहता है एवं सुचित के मना करने पर उसे खूब पीटता है।

"बड़वार तो तू हो गया है साले। हल चलाने को बोलो तो बहाना बनाता है जिसका पेट न भरे उसे ऐसे नखरे नहीं सुहाते।"

"ब[illegible]ात साले, कुश्ती लड़ने को कहा तो अदरौना कराते हो। कानून छाँटते हो। दस जनों की बात काटकर चल दिए। सारी हेकड़ी निकाल दूँगा।"

---

[4] इदन्नमम-पृ.229

[5] इदन्नमम-पृ.275

मारते-मारते उसे ढकेल कर गिरा दिया।"[6]

इसी प्रकार फोरमैन भी अपने दहशत के साम्राज्य एवं कारखाने के श्रमिकों को अपनी मुट्ठी में रखने के लिए उन्हें जूते से मारता है।

"वरियातें की बात सुन सब खामोश हो गए जैसे वे बात की तह तक पहुँच गये थे। उन्हें महसूस हुआ कि वे सब एक दिन की कैद में रहते हैं और उनका जीना-मरना उसकी मुट्ठी में बंद है।

जब फोरमैन दहाड़ा और जिंदर को मारने के लिए अपना जूता उठाया तो सब लोग दहल गए और अपना-अपना काम भूल खुले मुँह से फोरमैन की ओर देखने लगे।

"देख क्या रहा है? खालों को जल्दी बाहर निकाल। धूप जा रही है।" फोरमैन ने कड़कती आवाज़ में आदेश दिया।

जिंदर हौज में उतर गया और खालों को मसलने के लिए पाँव ऊपर-नीचे उठाने लगा। फोरमैन हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ जिंदर की ओर नथुने फूला देखता रहा जैसे मामूली-सी गलती होने पर वह उस पर बुरी तरह झपट पड़ेगा और उसकी बोटी-बोटी नोच लेगा।"[7]

अमानवीय तरीकों से श्रमिकों की बेइज्जती करने में भी इस वर्ग को अत्यन्त आदंत प्राप्त होता है। लगान की किस्तें न दे पाने के कारण सुचित को लोगों के बीच मुर्गा बना दिया जाता है।

"थोड़ी देर बाद सुचित की बारी आई। चंदे के अलावा उसकी दो-दो किस्तें बकाया थीं। जिलेदार ने पदारथ की ओर अर्थपूर्ण ढंग से देखा और सिपाहियों को एक खास इशारा किया। वे सुचित को लोगों के बीच से निकालकर अलग ले गये और चटकती धूप में मुर्गा बनाकर खड़ा कर दिया।

---

[6] बेदखल, कमलाकांत त्रिपाठी-पृ.124

[7] नककुंड में बास-पृ.247

आधे घंटे तक तो सुचित बर्दाश्त करता रहा, फिर उसके पैर काँपने लगे। आगे उससे नहीं रहा गया तो वह उठकर खड़ा होने लगा। पास खड़े सिपाही ने उसे भद्दी-सी गाली दी और पीठ पर एक धौल जमाकर फिर से झुका दिया।

"इधर-उधर करे तो एक ईंट लाकर रख दो साले के पीठ पर।" जिलेदार ने बस्ते से सिर उठाकर सपाट स्वर में कहा और फिर से काम में लग गया।"[8] इस प्रकार के अत्याचार को सहन न कर सुचित की स्त्री और माँ अपने घर की तरफ भागती है ओर एक पोटली लाकर पदारथ के सम्मुख प्रस्तुत करती है। लेकिन इस पर भी पदारथ और जिलेदार का दिल नहीं पिघलता।

"पदारथ ने पोटली खोलकर देखा। उसमें एक-एक जोड़ी गिलट के अगेले और बाजुबंद थे। उन्हें उठाकर परखा, फिर पोटली में रखकर परे सरका दिया- "किसी काम का नहीं है। बेचने पर दो रुपये भी नहीं मिलेंगे।"

सुचित की माँ चिरौरी करते-करते रो पड़ी पर पदारथ पर कोई असर नहीं हुआ।"[9]

एक गरीब खेतिहर किसान जो दूसरों के खेतों में मज़दूरी कर अपना और परिवार का पेट पालता है उस पर इतना अत्याचार कर और उसका सर्वस्व सम्मुख पा कर भी पदारथ जैसा साहूकार उसका मोल लगाता है एवं उससे कितना फायदा मिल सकता है उसका हिसाब करता है।

1.2 स्वार्थ की प्राथमिकता

बुर्जुआ वर्ग के सम्मुख उनके स्वार्थ से बढ़कर महत्वपूर्ण कोई वस्तु नहीं है। चाहे परिस्थिति कैसी भी हो वे सदैव अपने स्वार्थ को ही प्राथमिक महत्व देते आए हैं। हर हाल में अपना लाभ, अपनी जीत, अपना बोलबाला और समाज में अच्छी प्रतिष्ठा यही सब उनके जीवन का लक्ष्य हुआ करता है। इन सबकी प्राप्ति के लिए और इससे भी बढ़कर इन सबको बनाए रखने के लिए ये बड़े-से-बड़ा ही नहीं बल्कि

---

[8] बेदखल-पृ.20
[9] बेदखल-पृ.20

हीन-से-हीन काम और व्यवहार भी कर सकते हैं। अपने अहंवादी, प्रत्यक्ष आत्मस्वार्थ के लिए मज़दूरों की हालत तो, यह वर्ग, किसी भी स्तर तक कष्टपूर्ण बना सकता है, जिसमें न मानवीयता होती है न ही उदारता।

अपने स्वार्थ की प्राप्ति के मार्ग में दूसरों का सुख-दुःख, गरीबी, मजबूरियाँ कोई माईने नहीं रखती हैं। नैतिकता एवं मानवीयता की धज्जियाँ उड़ने में ही इन्हें सुख प्राप्त होता है। कानूनी-गैर कानूनी सभी काम इन्हें वैध एवं अति आवश्यक लगने लगते हैं। स्वार्थ के सामने बड़े-बड़े पूँजीपति अपने धर्म को भी भूल जाते हैं। जिस धर्म की दुहाई दे-दे कर वे लोगों में अशांति फैलाते हैं उसे और उसकी नीतियों को मसल कर अपना प्राप्य प्राप्त कर ही लेते हैं। इन्हें केवल इसी बात से मतलब रहता है कि उनका शासन चलता रहे, उनकी पाप की दुनिया आबाद रहे। समाज में उनको उत्कृष्ट स्थान प्राप्त हो और वे दया, धर्म एवं जनहित के मूर्ति बने रहें। अगर इस पूरी प्रक्रिया में किसी प्रकार की बाधा आती है तो वे तिलमिला उठते हैं। क्योंकि इसके रुकने से भला वे किस पर कहर ढाएँगे, किस पर अन्याय, अत्याचार और शोषण का तीर चलाएँगे। अतः बुर्जुआ वर्ग के इस पक्ष के प्रति यही कहा जा सकता है कि-"आदमी पर जब अपना स्वार्थ सिर चढ़कर बोलने लगता है तो वह आदमियत को दरकिनार कर सिर्फ अपने ही लाभ की बातें सोचता है।"[10]

'आसमान झूक रहा है' उपन्यास में भोला जो कि मुख्य पात्र है वह काम पाने की आशा में सदैव गाँव के प्रधानज्यू का काम करता रहता है तथा उनके घर का चक्कर भी लगाया करता है। इस पर भोला का चाचा उसे सतर्क करते हुए कड़ककर बोलता है-"बड़े आदमियों की बड़ी बात। बीसियों काम होते हैं उनके। वे लोग अपने मतलब के लिए गधे को बाप कहते हैं-और मतलब हल होने पर स्वर्ग-पाताल में फर्क कुछ दिखता ही नहीं। हमारी क्या सुमार उनके बीच। इसीलिए कह रहा हूँ, लोगों की संगत ठीक नहीं होती।"[11] चंदन जो कि एक खेतिहर किसान है वह

---

[10] सोनबरसा-पृ.63

[11] आसमान झुक रहा है-पृ.58

इन प्रधानों के स्वभाव को जानता है। प्रधानों द्वारा संचालित सरकारी कामों में मज़दूरी पाने के लिए भोला, उनकी सारी आज्ञाओं को मानता रहता है। यहाँ तक कि उनके घरेलू काम भी करता है। इसलिए भोला का चाचा चंदन उसे इस बुर्जुआ वर्ग के स्वार्थपूर्ण नीतियों के बारे में समझाता है। अपने लाभ के लिए और अपना उल्लू सीधा करने के लिए प्रधान जैसे वर्ग के लोग गधे को बाप बना लेते हैं। अर्थात् भोला जैसे एक आम और गरीब लड़के को अपनी व्यक्तिगत सभाओं में भी स्थान दे देते हैं ताकि वह मुफ्त में बैरे (waiter) का काम करे और बिना पैसे के ही लाभ प्राप्त हो।

अपने फायदे के लिए जंगबहादुर सिंह जैसे जमींदार शिवदास जैसे धोबी को, जिसे वे बहुत ही छोटा आदमी मानते थे, अपने घर बुलाते हैं और उसका सत्कार करते हैं। जंगबहादुर के लाख समझाने एवं प्रलोभनों के बाद भी जब गोविंद नहीं मानता तब वे उसके पिता शिवदास को, जिसे कभी उन्होंने अपने ही खेतों से गैरकानूनी ढंग से निकाल दिया था घर बुलाते हैं, ताकि पिता के कहने पर गोविंद हड़ताल की धमकी वापस ले ले और बोनस की बात भूल जाए। शिवदास को घर बुलाकर वे अपने समकक्ष ही बिठाते हैं और उसके लिए चाय भी पेश करते हैं।

इन सभी ढोंगी अभिनय के बाद जंगबहादुर अपनी असली भूमिका में उतरते हैं और शिवदास के सम्मुख अपने मुख्य उद्देश्य को प्रस्तुत करते हैं-"हुक्म नहीं, इसे मेरी माँग समझो। कहना यही है कि तुम्हारे सपूत मज़दूरों को मेरे खिलाफ़ भड़का रहे हैं। तुम उनसे सिर्फ यह कहो कि वे यूनियन से हट जाएँ यानी इस्तीफा दे दें।"[12]

जमींदार, साहूकार और ठेकेदार वर्ग के लोग अपने स्वार्थी एवं मुनाफे के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किसी भी स्तर तक गिर सकते हैं। इस प्रक्रिया में होनेवाली सामाजिक हानि और समस्याओं के बारे में वे कभी नहीं सोचते। बल्कि मज़दूर और सर्वहारा वर्ग के लोगों को सदैव अपने आतंक और पदवी के रौब में दबा कर रखते हैं। 'नदी फिर लौट आई' उपन्यास में माधो जेसे ठेकेदार हर बार

[12] धारा के बीच से-पृ.119

बाँध के काम में बेईमानी करते हैं एवं बाँध बार-बार तड़क जाता है। इंजीनियर कुमार मज़दूरों से यह सारी बातें जान लेने के बाद माधो पर यह टिप्पणी करते हैं- "अब समझ गये होंगे कि दरार इस बांध में कैसे पड़ा करती थी, दीवारें कैसे तड़का दी जाती थीं। ठेकेदारों ने तो सिर्फ मिलावट की सीमेंट का उपयोग भर किया होगा, काम ये लोग कर दिया करते थे। बार-बार बाँध तड़काने से फिर ठेके का काम निकलता, फिर ठेके लिए जाते, फिर धंधा चालू होता, फिर उद्घाटन की रस्म अदायगी होती। लोग इसी तरह से सार्वजनिक कामों के बहाने अपना घर भर लिया करते हैं। न कभी माधो मरेंगे, और न कभी ठेके बंद होंगे।"[13]

बेदखल की प्रकिया यथावत चलते रहने से जमींदारों एवं साहूकारों का बहुत लाभ होता है। इस कारण पदारथ, बिसार (उधार पर बीज) देने में भी हिसाब-किताब जोड़ता है। इस पर सलिकराम उससे पूछ बैठते हैं कि अगर उन्हें बिसार नहीं मिलेगा तो वे उपज कैसे करेंगे और बकाया कैसे पूरा करेंगे। इस पर पदारथ अपने स्वभाव पर उतर आता है और इस पूरी प्रक्रिया में निहित अपने पाश्विक स्वार्थ को प्रस्तुत करता है। वह कहता है-"जरा धीरे बोलो साधू। ... सब ससुरे जोत बो लेंगे और लगान भर देंगे तो बेदखल कैसे होंगे? बेदखल नहीं होंगे तो हमारे-तुम्हारे यहाँ मजूरी कौन करेगा? फिर बेदखल होंगे तो आखिर खेतवा कहाँ जाएगा। राय साहब किसी को तो देंगे, खुद तो यहाँ काश्त करने आएंगे नहीं। पदारथ साधु की ओर झुककर कान में फुसफुसाया।"[14]

'आसमान झुक रहा है' उपन्यास में गाँव का मुखिया प्रधान नैनसिंह गाँव की गोचर जमीं जहाँ पंचायत की स्वीकृति पर फल उद्यान बनना था उसे हथिया लेता है उसी जमीन पर सदर बाजार खड़ा कर देता है। जब गाँव के लोग इसका विरोध करते हैं तो वह उन पर टूट पड़ता है। वह कहता है-"तुम लोग मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकते। मैं चाहूँ तो तुम लोगों की चूल हिलाकर रख दूँ। तुम लोग अपनी

---

[13] नदी फिर लौट आई-पृ.236
[14] बेदखल-पृ.14

दो कौड़ी की औकात भूल जाते हो। यह गाँठ बाँध लो आदमी को औकात से बाहर नहीं जाना चाहिए। वरना अंजाम बुरे ही होते हैं।"[15] अपने स्वार्थ प्राप्ति के मार्ग पर आनेवाली सभी अड़चनों को हटाना वे बखूबी जानते हैं। इसके लिए लोगों को डराना, धमकाना और चेतावनियाँ देना उनके लिए एक आम बात है।

चेचक की बीमारी से ग्रस्त अपनी बेटी की शादी काली से करने के विचार से ही चमड़े कारखाने का फोरमैन उसे एक साधारण मजदूर से मुंशीगिरी का काम संभालने का दायित्व देता है। वह सोचता है कि ऐसा करने पर काली उसकी दया और सहयोग के भार से दब जाएगा और उसकी बेटी के साथ घर बसा लेगा। इस कारण पहले वह काली को एक सुनहरे भविष्य का सपना दिखाता है। वह उससे कहता है-"तुम चाहो तो सब कुछ हो सकता है। काम-काज तुम्हारे पास है ही। उजरत बढ़ ही जाएगी। काम भी साफ सुथरा है। मुंशीगिरी करते हो। शादी हो जाए तो मकान भी तुम्हारा हो सकता है। ये चीज़ें हो तो भविष्य बन गया समझो।" फोरमैन ने नज़रें दालान की ओर घुमा दीं।" उससे शादी कर लो तो तुम्हें बीवी, बाप और मकान मिल जाएगा और मुझे बेटा। तेरा भविष्य बन जाएगा और मेरी जिम्मेदारी निभ जाएगी।"[16] फोरमैन के इस प्रकार के प्रस्ताव को सुनकर काली दुविधा में पड़ जाता है तथा खामोश रहता है और वहाँ से चलने को होता है। काली के इस व्यवहार को देखकर फोरमैन उसे चेतावना देता है।

"मैं जितना नर्म दिल हूँ उतना ही, उतना ही पत्थर दिल भी हूँ। साँप का डसा तो पानी माँग सकता है, मेरा काटा तो दो जहान से जाता है। समझ गया न।"[17]

बुर्जुआ वर्ग को जहाँ भी इस बात का आभास मिलता है कि उनका काम उनके नकली अभिनय, उदारता और प्रलोभनों से प्राप्त नहीं होता वहाँ वे नृशंस होने पर आतुर हो उठते हैं।

---

[15] आसमान झुक रहा है-पृ.140

[16] नरककुंड में बास-पृ.291

[17] नरककुंड में बास-पृ.292

गाँव के साधारण, निरीह एवं भले मानुसों को बहला-फुसलाकर उनसे गलत काम करने जैसा खेल भी इस वर्ग को खूब आता है। क्योंकि ऐसा करने पर भी लाभ उनका ही होता है। प्रधान यह चाहता है कि अगर पाठशाला के नाम पर दान दिए गये जमीन को दिवानसिंह उसके नाम पर कर दे तो न कर्जा होगा न ही ब्याज की फिकर। वह दिवानसिंह को समझाता है-"सब संभव है दिवानसिंह, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। पाठशाला बनाने का काम तो शुरू नहीं हुआ न? अभी भी सब कुछ आपके हाथ में है, नींव खुदाई का काम हो चुका होता तो भी काम रुकवाया जा सकता था। सिर्फ आप ही ऐसा कर सकते हैं, खेत आपके हैं, आप हाँ कह दें मैं सभी रुपये आज ही दे दूँ।"[18]

पैसों के प्रलोभन में भी जब दिवानसिंह नहीं फँसता और प्रधानज्यू को उनका कर्तव्यबोध कराने का भरपूर प्रयास करता है। लेकिन दृढ़ एवं कर्तव्यनिष्ठ दीवानसिंह अंत तक भी प्रधान की बात नहीं मानता है। अतः अपने हाथ से इतनी बड़ी संपत्ति के निकल जाने के कारण वह दीवानसिंह को अश्लील बातें कह कर घर से निकाल देता है।

अधिक से अधिक धनार्जन के लिए, अपनी जड़ें मजबूत करने के लिए और समाज में और लोगों के बीच अपने आतंक और शोषण को यथो[illegible]त गतिमान रखने के लिए अनैतिक, गैर कानूनी और बेईमानी का काम करने से यह वर्ग पीछे नहीं हटते। 'लहरों की बेटी' उपन्यास में गाँव का सबसे अमीर व्यक्ति धनदेव साहब गन्नों के खेत की आड़ में गाँजे की खेती करता है। उस जमीन पर गन्ने की उपज अच्छी न होने पर भी धनदेव साब ने गन्नों को कभी हटाया नहीं, क्योंकि उन्हीं के बीच उसकी गाँजे की खेती होती थी।"[19] थोड़ी सी हानि सहकर अधिक से अधिक लाभ करना पूँजीपतियों का स्वभाव रहा है। इस अत्यधिक लाभ के लिए वे गैर कानूनी काम करने से भी पीछे नहीं हटते। इस प्रसंग को मैत्रेयी पुष्पा अति संवेदनशील ढंग

---

[18] आसमान झुक रहा है-पृ.136

[19] लहरों की बेटी-पृ.235

से प्रस्तुत करती हैं। क्रैशर पर काम करने वाले मज़दूरों की विवशता एवं मालिक के अन्याय को प्रस्तुत करती हैं।

"एकाएक अवधा की आवाज़ कमजोर पड़ गयी। "पर, काहे की मजूरी [illegible]। चोरी कहो भड़ियायी। ठेकेदार हमसे भड़ियायी ही करवाते थे। ठेका तो लें पचीस पेड़ों का और कटावें हमसे पचास पेड़। जो पकड़े जायँ तो हम जेहल में। जमानत करवाने तक न जावें ठेकेदार। जे और कह दें, हम नहीं जानते इन्हें, छिपके काट रहे होंगे।"[20]

मूल रूप से पूँजीपतियों का चरित्र ही ऐसा होता है। अपने स्वार्थ को प्राथमिकता एवं प्रमुख आधार दे कर ही वे अपना साम्राज्य विस्तरित करते रहते हैं। यही उनके जीवन की कथा होती है।

लोगों को कष्ट दे कर, उनसे उनके सहारों को छीन कर, चोरी और डाका डलवाकर लोगों को आतंकित कर, सभी प्रकार के अनैतिक कार्यों के सम्पृक्त रह कर ये अपने स्वार्थ रूपी गटर को भरते रहते हैं। वास्तविकता तो यह भी है कि इसमें वे अपने बाप, बेटे, परिवार किसी पर भी दयाभाव नहीं रखते।

"उन्हें सिर्फ इसी से मतलब हे कि उनकी पापी दुनिया आबाद रहे, उस पर कहीं से आँच न आए। उनके स्वार्थ की चक्की रुकेगी तो किसी पर भी कहर बरपा सकते हैं, कौन बेटा है, और कौन बेटी, कौन अपना है या कौन बेगाना-इससे उनको कोई फर्क नहीं पड़ता।"[21]

अपने फायदे के लिए वे किसी की भी परवाह नहीं करते। बस अड्डे का एक मामूली दिहाड़ी इस वर्ग पर कटाक्ष करते हुए कहता है-"भाई, बिन फायदे के कोई किसी की कदर नहीं करता और फिर व्यापारी तबका... ये तो मौका मिलने पर अपने बाप को भी चूना लगाने से नहीं चूकते।"[22]

[20] इदन्नमम-पृ.236
[21] सोनबरसा-पृ.63
[22] नरककुंड-पृ.78

यह सारी बातें पूँजीपति वर्ग के स्वभाव एवं चरित्र दोनों को ही स्पष्ट रूप से परिभाषित एवं प्रमाणित करते हैं।

1.3 लूटपाट और दहशत

बुर्जुआ वर्ग अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए एवं अपने साम्राज्य के वर्चस्व को जीवित रखने के लिए इस प्रकार की परिस्थितियाँ पैदा कर डालता हैं जिससे समाज में रहने वाले सर्वहारा वर्ग पर उसका आतंक सदैव बना रह पाए। यह वर्ग सर्वहाराओं के दुर्बल ग्रंथियों के साथ-साथ उसके सबल मनोभावों को भी जानता है। उसे अत्यंत दृढ़ रूप से यह ज्ञान है कि किस प्रकार वे टूट सकते हैं ओर उसके लाभ के लिए काम आ सकते हैं। श्रमिकों का जो श्रम उसे आकाश की ऊँचाइयों तक पहुँचाता है वही श्रम उसके विरुद्ध भी जा सकता है। इस सत्य को वह आत्मसात कर चुका है। अतः अपने तानाशाही के दबदबे को बनाए रखने के लिए वे लोगों के बीच असामाजिक काम करके अपना आतंक फैलाता है, जिससे सर्वहारा और अधिक डरा हुआ, पिछड़ा हुआ बना रहे तथा सामाजिक एवं मानसिक स्तर आतंकित-मौन धारण कर ले। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूँजीपति वर्ग डाका डालने, चोरियाँ कराने, हत्या की साजिश रचने, धमकियाँ देने जैसे निचले स्तर की हरकतें भी करता है। इसके लिए यह वर्ग लोगों के बीच धर्म के नाम पर भी मारपीट एवं अशांति का माहौल पैदा कर डालता है।

खेतिहर किसानों से उनके सीमित एवं न के बराबर संबल को छीनने के लिए तालुकेदार और जमींदार उनसे अनेक प्रकार के लगान आदि वसूला करते थे। ताकि किसानों के पास धन और सामर्थ्य के नाम पर कुछ भी न रहे और वे कठपुतलियाँ मात्र बनकर ही रह जाएँ। ‘बेदखल’ उपन्यास में एक तालुकेदार के पैर में फोड़ा होता है, जिसके उपचार के लिए एक लंबा समय और अधिक पैसों का खर्च होता है। इसकी भरपाई के लिए वे किसानों से ‘फोडावान’ नामक लगान वसूल करते हैं- "इतना ही नहीं एक और ठकुराइन किसानों से ‘धुरियावान’ नामक लगान वसूलने की नोटिस जारी करती है। "अरे वो, धुरियावान लगाए हैं। ... जिस खोरि से गाँव के

मवेशी चरने जाते हैं न, वह कोट के बगल से गुजरती है। कहती है, धूल उड़ती है तो उन्हें परेशानी होती है। अब वे भी मवेशी सवा रुपया साल धुरियावन लेगी, नहीं तो जानवर निकलने नहीं देगी।"[23]

अपने रौब को लोगों में बरकरार रखने के लिए जमींदार वर्ग के लोग साधारण किसान मजदूरों में अपने व्यक्तित्व, अपने अत्याचारों से दहशत की स्थिति पैदा करते हैं एवं उसे उनके मनःस्थिति में जीवित रखने के लिए उन्हीं घटनाओं को दोहराते रहते हैं-"तभी लीक की ओर से आता शेख ताहिद अली जिलेदार का घोड़ा दिखाई पड़ा। पीछे-पीछे रियासत के पाँच सिपाही, पूरे सिवान में दहशत की लहर दौड़ गई। किसान खरमिटाव छोड़कर उठ खड़े हुए। जिलेदार का घोड़ा करीब आया तो अंदर-अंदर काँपते हुए उन्होंने सलाम बनाया और सिर झुका लिया।"[24]

जब मंदाकिनी क्रैशरों पर से शराब के ठेकों को उठाना चाहती है तो अभिलाख उसे जा कर धमकियाँ देता है। वह मंदाकिनी से कहता है-"यह मत सोचना कि हमें पता नहीं लगती तेरी योजनाएँ। तू साँस भी लेगी तो उसकी भी खबर आ जाएगी हम तक। और अपने मताई-दद्दा का हश्र तो तू जानती होगी। सुना दिया होगा डुकरो ने। बस, इतना ही समझाने आए थे हम।"[25] अभिलाख जो एक बार पहले भी मंदाकिनी पर वार कर चुका था उसे यह चेतावनी देता है कि अगर वह श्रमिकों का भला करने निकलेगी तो उसे उसके पिता के समान उसे भी गोलियों से भून दिया जाएगा।

काली जिस चमड़े के कारखाने में काम करता है, वहाँ एक फोरमैन भी रहता है और इस फोरमैन के आतंक का दबदबा काम करने वाले हर मजदूर पर बना हुआ है क्योंकि फोरमैन की तीखी नज़रें हमेशा इन लोगों पर टिकी हुई रहती है। निर्धारित समय के अंदर जब बंसा हौज में चौबीस खाल नहीं डाल पाता तो भयभीत हो वह

---

[23] बेदखल-पृ.16
[24] बेदखल-पृ.19
[25] इदन्नमम-पृ.231

काली को सतर्क कराता है कि "लगभग आधा दिहाड़ी तो निकल ही गई है। लोग-बाग रोटी टुक्कड़ खाने के लिए पर तोल रहे हैं। काम हर हालत में खत्म करना है वरना फोरमैन हमारी खाल खींच लेगा।"[26] इतना ही नहीं जब चमड़े की धुलाई जैसे गंदे काम को करते समय काली को उल्टी आती है और वह ठीक से काम नहीं कर पाता, तब भी बंसा उसे समझाते हुए कहता है कि "यह काम करना ही है तो इसमें दिल लगाओ। फोरमैन ने तुम्हें उलटी करते हुए देख लिया तो कान पकड़कर छप्पड़ के रास्ते तुम्हें कारखाने से बाहर निकालेगा। समझे?"[27] कारखाने के सभी मज़दूरों को यह बात अच्छी तरह से समझ में आ गयी थी कि उनके जीवन की डोर फोरमैन की हाथों में है। फोरमैन ने अपना कारखाना अच्छी तरह से चलाने के लिए उसने मज़दूरों के दिलों में अपना डर पैदा करवा दिया था। कारखाने में पहुँचने का समय पहले से ही निर्धारित था। अगर किसी कारणवश किसी मज़दूर को आने में विलंब हो जाती है तो फोरमैन की गालियों से डरा हुआ आता है। सुबह देर से उठने के कारण किशना फोरमैन की गालियों के बारे में सोचकर कहता है-"देर हो गई तो फोरमैन खड़ा-खड़ा हमारी खाल खींच लेगा। पोंछवाली लंबी-लंबी गालियाँ देगा। किशना का लहजा बहुत क्रूर था।"[28] फोरमैन की इन गालियों और अव्यवहार के कारण कोई भी उसके सामने मुँह नहीं खोल पाते और सब उससे भयभीत रहा करते हैं।

पूँजीपति वर्ग सदैव अपने व्यवहार और अनेक प्रकार की नीतियों से श्रमिक वर्ग को अपने अधीन दबाकर रखना चाहता है ताकि संघर्ष न हो तथा वह अधिक मुनाफा कमा सके।

---

[26] नरककुंड में बास-पृ.144
[27] नरककुंड में बास-पृ.145
[28] नरककुंड में बास-पृ.216

1.4 बेईमानी और ईर्ष्या

'बेदखल' उपन्यास में 'पदारथ' (साहूकार) का चरित्र बेईमानी से भरा है। वह हर मामले में अपने लाभ के बारे में सोचता है। यहाँ तक कि गरीब किसानों को बिसार देते समय भी वह बेईमानी करने से नहीं चूकता। "आज सुबह से ही पदारथ का बखार खुल गया था, अभी तक बिसार लेने वालों की भीड़ लगी थी। पदारथ दालान के ओशारे में चारपाई पर लेटे थे और बगल में मझला बेटा बही लेकर बैठा था। जिन लोगों का पुराना हिसाब बकाया था वे हाथ जोड़कर गिड़गिड़ा रहे थे पर पदारथ पर कोई असर नहीं हो रहा था। बड़ा बेटा धान तौल रहा था और खुले आम दंडी मार रहा था पर किसी की कुछ बोलने की हिम्मत नहीं थी। जिसका पिछला चुक्ता हो गया था वह पिछौरी बढ़ाकर धान रोपता, पोटली बाँधकर कंधे पर डालता, पदारथ के सामने पूरा झुककर पैलगी करता और अपने को धन्य मानता रास्ता पकड़ लेता।"[29] बुर्जुआ वर्ग ने श्रमिकों पर इतना अत्याचार किया था कि उनमें अपने मालिकों द्वारा किए जाने वाले अधर्म कार्यों के विरुद्ध कुछ बोलने की हिम्मत ही नहीं थी। पदारथ के आतंक के भय के कारण कोई भी किसान उसके खिलाफ कुछ भी बोलने की हिम्मत नहीं करता था बल्कि इस अन्याय के मार्ग से होकर जो बिसार जिसे मिल जाता था वह स्वयं को भाग्यवान समझता था।

बस्ती के लोगों के लिए नदी पर बाँध का सही अर्थों में बनना और बने रहना बहुत महत्वपूर्ण था। पर वहाँ के राजनेताओं और बड़े-बड़े इंजीनियरों को यह बात स्वीकार्य नहीं थी। इसलिए हर बार बाँध के बनने में ये लोग मिलावट का काम करते थे और अपने ऊपर वाले अधिकारियों को खुश रखा करते थे। गोविंदा इन इंजीनियरों की बेईमानी के उदाहरण देते हुए बस्ती के मज़दूरों को उनके स्वभाव के बारे में परिचित कराता है-"उसके बाद आनेवाला, जो इंजीनियर आया, वह बड़ा स्याना था, इन सबके साथ वह मिल गया...। बड़े-बड़े साब लोग पिकनिक मनाने इधर आने-जाने लगे और पता नहीं कितने बाई और बाबू लोग रात भर गाते-

---

[29] बेदखल-पृ.34

नाचते रहते, खेलते-कूदते रहते थे। वह इंजीनियर कभी कोई शिकायत नहीं आने देता था... सीमेंट गई तो उसकी जगह राख मिला देता, रेत की जगह मूरम मिलवा देता, लोहे की सलाखों की जगह लकड़ियाँ फंसवा देता... वे लोग इसी से खुश थे।"[30]

बाँध जैसे आवश्यक और सुरक्षा से संबंधित कार्य में भी ये लोग बेइमानी करते हैं और हज़ारों गरीब-मज़दूरों के जीवन का सौदा कर डालते हैं। इन सब कार्यों के लिए अपने लाभ और नग्न स्वार्थ से इतर कोई लक्ष्य नहीं रह जाता है।

मज़दूरों के बीच की एकता को भँग कर उनमें अलगाव भाव पैदा करने में पूँजीपतियों को अपना लाभ दिखता है क्योंकि जब एकता ही नहीं रहेगी तो विद्रोह या संघर्ष कहाँ पनपेगा। इस लिए बुर्जुआ वर्ग कुछ या किसी एक मजदूर को अधिक उन्नति या सुविधाएँ प्रदान कर उसे अपने वर्ग से अलग कर लेते हैं और उनके बीच प्रतिहिंसा की भावना को जगाते हैं। उनमें अलगाव का भाव पैदा करते हैं ताकि मज़दूरों पर उनके स्वामित्व का आतंक पूर्ववत बना रहे। चमड़े कारखाने का फोरमैन भी कालि और उनके दोस्तों के साथ इसी प्रकार का खेल खेलता है। वह काली को मुंशीगिरी का काम सौंप देता है और उसे अपने साथियों के झुंड से अलग खड़ा हुआ अपरिचित और प्रतिद्वंद्वी बना देता है। पूरे कारखाने में एक काली ही था जो मज़दूरों के माँगों के बारे में मुँह खोलता था। पर अब भी फोरमैन इसे यह सब छोड़ मालिक को खुश रखने का सुझाव देता है ताकि वह कारखाने में किसी प्रकार की चेतना को जागृत न कर पाए। वह काली काली का समझाता है-"तू फिर उनकी बोली बोलने लगा है। तू अब मुंशी का काम करता है। तेरा फर्ज लाला और फिर अपना भला सोचना है।"[31]

---

[30] नदी फिर लौट आई-पृ.127
[31] नरककुंड में बास-पृ.291

फोरमैन अपने इस चाल को कार्यान्वित होते देख कर बड़ा खुश होता है। उसे लगता है कि वह फिर से इन मज़दूरों पर राज कर रहा है और उसके आतंक की वह छाया जो कुछ दिनों के लिए हट गई थी वह वापस उन पर छा रही है।

धनदेव साहब को जब इस बात का पता चलता है कि दुलारी और जीवनदत्त उनकी पुश्तैनी ज़मीन वापस खरीदने जा रहे हैं तो वह मनुस्वामी को उसी जमीन के लिए दो हज़ार रुपए अधिक दे कर उसे खरीद लेता है। ताकि उसे जीवनदत्त न खरीद सके। मनुस्वामी और धनदेव साहब एक ही वर्ग के हैं। अतः वे जीवन को अच्छी जमीन दिखाकर पथरीली जमीन बेच देते हैं।

"यह जो जमीन आपने हमें बेची है, वह तो पथरीली जमीन है।"

"जो जमीन आप हमें बेचने वाले थे, उसे तो आपने साबजी को दे दिया है।"

"कहा न, इसलिए कि उसने दो हज़ार ज्यादा दिए।"[32]

धनदेव साहब को जीवनदत्त और दुलारी से इस बात पर ईर्ष्या हुई थी कि उन्होंने गाँव के मछुआरों को कमाई के अलग साधन और माध्यम जुटाए थे और इस कारण धनदेव साहब के यहाँ मछुआरों की कमी हुई थी। इन लोगों को परेशान करने एवं बदला लेने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया।

बुर्जुआ वर्ग इन गरीब, भूखे और अभावों से पीड़ित मज़दूर वर्ग से ईर्ष्या भी कर सकता है, यह सोच में डालनेवाली बात है। जब गाँव के भूमिहीन किसानों को मजदूरी नहीं मिलती और वे अपना सब कुछ त्याग कर एक ट्रैक्टर खरीदते हैं तो अभिलाख सिंह के छाती पर साँप रौंध जाता है। "तिलमिलाता हुआ फिरा होगा इतै-उतै। कैसे गले उतारे कि हम जैसे दीन-गरीब भी ट्रैक्टर लेने का सपना देख रहे हैं।"[33]

अपने लाभ की प्राप्ति के लिए बुर्जुआ वर्ग जहाँ मज़दूरों पर अपने दहशत का आतंक फैलाता रहता है वहीं उनसे ईर्ष्या भी करता है। उन्हें उन्नति करने का मौका

[32] लहरों की बेटी-पृ.302
[33] इदन्नमम-पृ.213

ही नहीं देता। उनमें वर्ग-भेद की भावना को जगाकर उनकी एकता को तोड़ने की चेष्टा करता है ताकि उन पर उसका एकाधिकार बना रहे।

1.5 दिखावा और ढोंग

पूँजीपतियों का स्वभाव और चरित्र चाहे जो भी रहे लेकिन समाज, धर्म और राजनीति के क्षेत्र में वे अपनी छवि बहुत ही ईमानदार, दयालू और धर्म-प्रिय व्यक्ति के समान उत्कृष्ट बनाए रखते हैं। चाहे जो भी हो, जितना भी दान करना हो, ढोंगी अभिनय करना पड़े, वे इस छवि को बिगड़ने नहीं देते। धर्म के क्षेत्र में तो वे पूर्ण रूप से अंधे ही होते हैं। औद्योगीकरण, मशीनीकरण जैसी क्रांतियों के अग्रदूत होने के बावजूद ये अंधविश्वासों से भरे रहते हैं। अपने पाप की गठरी कम करने के लिए, दिन दुगनी रात चौगुनी लाभ के लिए ये मुक्त हस्त-मन से दान देते रहते हैं। मंदिर बनवाते हैं, धर्मशाला खुलवाते हैं, लेकिन अपने ही कारखाने के श्रमिकों की सुविधाओं के प्रति इनकी दृष्टि सजग नहीं होती। अपनी स्थिति को और अधिक सशक्त करने के लिए, समाज में अपना यश स्थापित करने के लिए मठों और मंदिरों में प्रचुर मात्रा में दान देकर एक अच्छे, धर्मप्रिय और न्यायप्रिय व्यक्तित्व का अधिकारी बनने में प्रयासरत रहते हैं। धर्म इनके लिए मात्र एक माध्यम है। जिसके सहारे वे अपनी मनःस्थिति को शांति देते हैं। धर्म के नाम पर एकता, भेदभाव के विरुद्ध बात करनेवाले महान एवं व्यापक सोच को प्रस्तुत करनेवाले यह पूँजीपति सभाओं एवं संगोष्ठियों में तो बहुत बड़ी-बड़ी बात करते हैं। पर जब इन भेदभाव को मिटाकर जीवन के धरातल पर इस भेदभाव और जातिभेद का निवारण करने का समय आता है तो उनके अंदर छिपा हुआ वही रूढ़िवादी, कठोर पूँजीपति की छवि ही सामने आती है जो परिवर्तन की उपस्थिति अपने हित के लिए ही अपनाता है।

मंडी के सेठ राय साहब लाला रत्नचंद जी अपने कुबेर के खजाने से कुछ लोगों के बीच बाँटने आते हैं तो वह भी मुनीम के माध्यम से अपने गुणों के जयगान के साथ ही। मुनीम लोगों के बीच सेठ के दान-भावना को जताते हुए कहता है- "सेठजी वह सारा धन अपने या अपने परिवार के ऊपर खर्च नहीं करेंगे। मंदिर में

पंडितों के लिए ब्रह्मभोज का प्रबंध किया जा रहा है और साथ में उन्हें दक्षिणा के अलावा वस्त्र आदि भी दिए जाएँगे। धोतियों और अँगोछी की गाँठें मंदिर में पहुँचाई जा चुकी हैं। मंडी में तमाम भिखमंगों, पंडितों और अन्य गरीब लोगों को पेट-भर हलवा, पूरी और भाजी मिलेगी।"[34]

इतना ही नहीं सेठजी को बड़े ही दयालु, श्रद्धालु और दानवीर के रूप में प्रस्तुत करते हुए आगे कहते हैं-"आप लोगों को पता है कि दानवीर राय साहब सेठ रतनचंदजी बहुत बड़े प्रभु भगत हैं। वे सवेरे-शाम प्रभु-वंदना करते हैं। सवेरे पक्षियों को अपने हाथ से दाना-पानी डालते हैं। ... इसके अलावा गोशाला, अनाथ आश्रम और अंध विद्यालय को भी भारी दान देने का विचार है।"[35] सेठजी पक्षियों को रोज खाना देते हैं, आवश्यक पड़ने पर घी लगा गाय को आटे का पेड़ा खिलाते हैं। लेकिन आदमी का पेट भरने का समय आता है तो वे सोच में पड़ जाते हैं कि इस जगह पर दान करके उन्हें लाभ मिलेगा या नहीं। अगर किसी फल की प्राप्ति का संकेत मिलता है तभी वे आगे कार्य करते हैं, अन्यथा नहीं।

इन पूंजीपतियों के दान-पुण्य के दिखावे की आलोचना करते हुए भृगुदेव मंदाकिनी को इनके दानवीर मुखौटे के पीछे छुपे धार्मिक डर को सामने लाते हैं। वे बताते हैं-"मंदाकिनी जी, हमें तो लगता है कि जो सबसे ज्यादा पापी होता है, वही जोर धर्मभीरू भी होता है। गरीबों का खून चूसने वाले बड़े-बड़े दान दिया करते हें। धर्मशाला बनवाते हैं। अस्पताल में दान देते हैं, मंदिर की स्थापना करते हैं। छल-कपट से रुपया न कमाते तो इस तरह की विशाल-दान के योग्य हो पाते? लेकिन वे जन्मजात व्यापारी यहाँ भी यश का व्यापार करने लगते हैं। उन्हें तो कमाना है। हर हाल में कनाई करनी है।"[36] भृगुदेव यह सपष्ट करना चाहते हैं कि यह दान-पुण्य भी बड़े लोगों के लिए कमाई का एक माध्यम ही है। एक ऐसा माध्यम जिससे उन्हें लाभ

---

[34] नरककुंड में बास-पृ.75
[35] नरककुंड में बास-पृ.76
[36] इदन्नमम-पृ.185

भी मिल जाता है और तथाकथित दान-पुण्य करके भगवान को भी खुश करते रहते हैं।

जिन लोगों के रोगग्रस्त चेहरों पर सरसरी दृष्टि पड़ते ही सेठ रामप्रकाश ठिठक जाते हैं, उन्हीं के लिए मंदिर बनाने की योजना करते हैं। जबकि उन्हें मंदिर की नहीं उपचार, सुविधाओं एवं दवाइयों की जरूरत है। इस जनसभा में मंच पर आसीन लोगों को छोड़कर सभी मज़दूरी करने वाले श्रमिक ही मौजूद थे। लेकिन किसी को भी मजदूरों की यह समस्याएँ दिखाई नहीं दीं। बल्कि हर कोई बढ़-चढ़ कर दान देने का ऐलान करते रहे। बख्शीराम ने कहा-"मेरी इतनी हैसियत तो नहीं है लेकिन इस नेक और महान काम के लिए मैं दस हज़ार रुपये देने का ऐलान करता हूँ।"[37]

यह धनी और बड़े-बड़े श्रद्धालु अपने धरम करम को पूरा करने के लिए किसी भी स्तर तक जा सकते हैं। बेईमानी और अनाचार करेंगे लेकिन धर्म के नाम पर होनेवाले काम को अंजाम अवश्य देंगे। "श्रद्धालु लोग धरम के लिए किसी की भी गर्दन मरोड़ सकते हैं, तबाह कर सकते हैं, पर अपने भजन-पूजन में कमी नहीं आने देंगे, बड़े-बड़े मंदिर बनवा देंगे, धरमशाला खुलवा देंगे, बड़े-बड़े दान करेंगे, मोक्ष पाने के लिए, पाप मिटाने के लिए... श्रद्धालुओं को भला क्या कहा जा सकता है।"[38]

दान और धर्म के कार्य में अपनी सहयोगगिता को समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर जहाँ एक पल में ये अपने आपको दयालू और दूसरों के लिए सेवाभाव से ओतप्रोत व्यक्ति के रूप में स्थापित करते हैं वहीं दूसरे ही क्षण अपने वर्ग के चरित्र को प्रस्तुत कर डालते हैं। पूँजीपतियों के इन दिखावे के खेल और ढोंगी व्यवहार पर अपने आक्रोश को व्यक्त कर किरपू उन पर टिप्पणी करता है कि "साले, सब बहुत पाखंडी हैं। गुरु के तिपाए और तांबी पर तो हज़ारों रुपए खर्च कर देंगे

[37] नरककुंड में बास-पृ.233
[38] नदी फिर लौट आई-पृ.262

लेकिन उसी बिरादरी के गरीब मजदूर को बीमारी का इलाज करने के लिए पाँच रुपये पेशगी नहीं देंगे।"[39]

यह है इन पूँजीपतियों का तथाकथित दानी, महात्मा, धार्मिक एवं दयालु रूप।

1.6 बिचौलियों की भूमिका

श्रमिकों की दयनीय स्थिति, पिछड़ेपन, दुर्दशा और शोषण में बिचौलियों की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी मालिकों की। बिचौलिये श्रमिकों और पूँजीपतियों के बीच काम करने और संपर्क स्थापित करने वाला व्यक्ति है। यह मालिकों से पैसे ले कर उन्हें उनकी आवश्यकता, लाभ और अपने फायदे के अनुसार श्रमिकों को उपलब्ध करता है। इतना ही नहीं वह काम दिलाने के लिए श्रमिकों से भी पैसा लेता है। यह मजदूर और मालिकों के बीच का व्यक्ति तो बन गया लेकिन श्रमिकों का प्रतिनिधि नहीं बन सका। उसे इनकी समस्याओं से किसी भी प्रकार का आशय नहीं था। वह केवल अपने ही लाभ के बारे में सोचता है। वास्तव में भारत के परिप्रेक्ष्य में यह बिचौलिया ही भविष्य के पूँजीपति बने और शोषण का साम्राज्य फैलाते रहे।

बिचौलियों का मुख्य उद्देश्य अपने मालिकों को खुश कर अपने हिस्से में कुछ अधिक शाबाशी, अधिक धन और प्रगति करने का मार्ग ढूँढ़ना है। इन सबके लिए उनके पास सबसे सशक्त और बढ़िया माध्यम था, श्रमिक। उनका उद्देश्य किसी भी प्रकार मालिकों का फायदा कराना, उन्हें प्रसन्न करना और इस पूरी प्रक्रिया में श्रमिकों का जैसा चाहे जब चाहे शोषण करते रहना, प्रवासी मजदूर, गिरमिटिया मजदूर और बंधुआ मजदूरों के निर्माण और दुर्दशा में इन बिचौलियों की प्रमुख भूमिका रही। इन्हें अंग्रेज़ी में 'Middle Man' कहा जाता है।

बिचौलियों का मुख्य उद्देश्य अपने मालिकों को खुश रखना ही होता था। ठेकेदार अपने बड़े इंजीनियर साहब को खुश करने के लिए उन्हें कीमती सिगार भेंट

[39] नरककुंड में बास-पृ.242

करता है, उनकी सहूलतों के लिए पहाड़ी पर सारी सुविधाओं को उपलब्ध कराता है, पर श्रमिकों पर अपने दहशत का रोब जमाता है।

"यहाँ जो ठेकेदार था वह इन सारी चीज़ों को बड़े जतन के साथ रखने का हुक्म देता, जोर-जोर से चिल्लाता तो पहाड़ी गूँज पड़ती, पेड़ कांपते। ... पर था बड़ा रोबीला। ... वह उन्हें देखते ही सोने-जैसी डिब्बी खोल देता, उसमें सफेद रंग की बीड़ी होती। साहब से लेते और थैंक्यू बोलते, ठेकेदार हंस देता।"[40]

अपने मालिक के लाभ और बंद पड़ी मिल को चलाने के लिए मुंशी जी अपने बाबूसाहब को यह उपदेश देते हैं कि शिवदास को जमीन से खदेड़ दिया जाए और अपना फायदा देखा जाय। मुंशीजी बोलते हैं-"हुजूर, इस वक्त हमें रुपये की □रूरत है। सारा काम ठप पड़ा है। तिस पर कानून हमारे साथ है। उसने पट्टे की शर्तें तोड़ी हैं, हमारे लिए इतना ही काफी है। उस पर मेहरबान होने के लिए कानून हमें मजबूर नहीं करता... और हम मेहरबान क्यों हो हुजूर?"[41]

अपने फायदे के लिए ये लोग न केवल अपने मालिकों की चापलूसी ही करते हैं, बल्कि श्रमिकों का भी शोषण करते हैं। नौकरी पाने के लिए विवश मजदूर न चाहते हुए भी ठेकेदारों की बातों को मानते थे क्योंकि उनके पास और कोई भी उपाय नहीं होता था। इस कारण लंबी-लंबी मूँछों और बड़ी-बड़ी आँखों वाले सोमू ठेकेदार की शर्तों को कोठी के बेकार मजदूर न चाहते हुए भी मान लेते हैं।

"हर सप्ताह हर मजदूर की ओर से एक रुपया देना होगा।

हरि ने बड़ी नम्रता के साथ पूछा-

ऐसा क्यों सोमू सरदार?

ऐसा इसलिए कि कोठियों के लिए मजदूर जुटाना मेरा पेशा है। मेरा दादा भी यही करता था और मेरा बाप भी। जब तुम लोग मुफ्त में काम करने को तैयार नहीं तो फिर मैं क्यों होऊँ?" [42]

---

[40] नदी फिर लौट आई-पृ.47

[41] धारा के बीच से-पृ.12

[42] और पसीना बहता रहा-पृ.161

बिचौलियों के इस प्रकार के व्यवहार और अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले पर भी वे खूब अत्याचार करते हैं। ठेकेदार के गलत हरकतों का विरोध जब बाँध पर किसी श्रमिक से कहासुनी हो जाती है तो ठेकेदार उसकी खूब पिटाई करता है।

"उसने उसकी औरत को इसी क्वार्टर में जबरन फल रखने को भेजा था। जबकि मजूर नहीं भेजना चाहता था। बूढ़ा कहता जा रहा था। ठेकेदार ने मजूर को क्वार्टर में बुलाया और इस कदर पीटा कि उसे वर्धा के अस्पताल में दवादारू करने के लिए जाना पड़ा। फिर वह लौटकर नहीं आया।"[43]

इस प्रकार ठेकेदार, मुंशी, सरदार आदि के रूप में उपस्थित इन बिचौलियों ने भी श्रमिकों को शोषित, पीड़ित बनाए रखने में अपना योगदान दिया है।

2. श्रमिकों का संघर्ष

भारतीय मजदूरों में विद्रोह या संघर्ष की मनोभावना का जन्म होना अपने आप एक लंबे समय की हताशा, विफलता एवं कुंठित मनोभावनाओं के विस्फोट को ही माना जाएगा। पराधीनता (उभय-अंग्रेज़ों द्वारा भारत की एवं पूँजीवादियों द्वारा मज़दूरों की) की एक लंबी भयानक अवधि, पाश्चात्य पूँजीवाद के प्रवेश-इन सभी तत्वों ने श्रमिक वर्ग को विद्रोह और संघर्ष के लिए मानसिक स्तर पर तैयार करता रहा। इसके साथ ही प्रायोगिक स्तर पर मालिकों का अत्याचार, कार्यक्षेत्र में आर्थिक पिछड़ापन, अपनी व्यक्तिगत अवनति, रूसी क्रांति एवं मार्क्सवाद की प्रभावी जनचेतना, अपने अधिकारों के प्रति सजगता एवं जागरण ने इस पददलित वर्ग को अपने ही कार्यक्षेत्र में अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करना सिखाया।

संघर्ष जीवन को गतिशीलता प्रदान करता है। जहाँ प्रगति है वहाँ संघर्ष का होना अनिवार्य है। मानव जाति के प्रारंभिक इतिहास से लेकर सभ्यता की प्राप्ति, शासन एवं शासकों के उठते गिरते परदे, आज़ादी की लड़ाई यहाँ तक कि व्यक्ति के अपने जीवन प्रक्रिया के गठन एवं अधिकारों की प्राप्ति-इन सभी के लिए मनुष्य

---

[43] नदी फिर लौट आई-पृ.47

को संघर्ष करना पड़ा है। जब दुनिया भर में पूँजी का आगमन हुआ तब लोगों से उनके पैतृक कामकाज छीन लिए गए। जब उनके श्रम को छीन उसके स्थान पर मशीनों को प्रस्तुत किया जाने लगा तब विश्व का श्रमिक वर्ग जिसे मार्क्स ने सर्वहारा की संज्ञा दी, उसके आत्मचेतना का जागरण के साथ संघर्ष का संबंध स्थापित हुआ। इसके फलस्वरूप उसमें विद्रोह उत्पन्न हुआ। अपनी चिंतन शक्ति जिसे उसने अपने ही श्रम-शक्ति के बोझ तले कुचल दिया था, वह जागा। उसे अपने ही अधिकारों का ज्ञान होने लगा और उसमें विद्रोह पैदा हुआ। विद्रोह, हर स्तर का-शारीरिक, मानसिक, आर्थिक आदि। इस विद्रोह ने ही उन हज़ारों लाखों सर्वहाराओं में संघर्ष करने की ज्वाला को दहकाया। संघर्ष था-पूँजीपतियों के विरुद्ध, उनके अमानवीय व्यवहार, पाश्विक अत्याचार, हीनता की भावना और समाज की नज़रों में अपने प्रति देख पा रहे घृणा के विरुद्ध। यह संघर्ष था-अपने अधिकारों को पाने का, शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने का। एकता की शक्ति को शिखर तक ले जाने का। और सबसे ऊपर यह संघर्ष था इतिहास के पन्नों में अत्याचार और शोषण की उन घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकने का। क्रांति की मशाल जल उठी और संघर्ष की मनोभावनाओं ने ही इसे निरंतर बल दिया। "मार्क्स ने यह घोषित किया था कि सर्वहारा वर्ग पूँजीवाद से जन्म लेकर इसी की कब्र खोदता है और उसके विनाश के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है। सामाजिक क्रांति इन्हीं मज़दूरों के बल पर संभव है, क्योंकि उनका ऐसा कोई भी स्वार्थ नहीं है, जो उन्हें क्रांति से अलग कर सके।"[44]

2.1 पिछड़ापन और आत्मपीडा

भारतीय मज़दूर वर्ग के शुरुआती दौर में यह देखा गया है कि इस वर्ग की असहनीय गरीबी और पिछड़ापन एक मुख्य कारण बना रहा, इसके प्रगति और सजगता के मार्ग में, भारत का श्रमजीवी वर्ग जहाँ एक तरफ अपने पैतृक व्यवस्थाओं से खदेड़े जाने की वजह से गरीबी की खतरनाक चपेड़े में आ चुका था वहीं सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन के कारण वह अपने

---

[44] मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, डॉ.पारसनारायण मिश्र-पृ.41

समय से ही कहीं पिछड़ा हुआ था और पीछे ही चल रहा था। पिछड़ेपन की यह स्थिति आज भी बनी हुई है। केवल परिदृश्य बदल गए हैं।

श्रमिकों के बीच इस पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण उनकी दयनीय स्थिति है। पूँजीवाद ने उनके जीवन और वातावरण को इतना अधिक भयानक रूप दे रखा था कि सर्वहारा वर्ग इससे बाहर निकलने का साहस करना तो दूर उसकी कल्पना भी नहीं करता था और उनकी यह मानसिक स्थिति उन्हें आत्मपीड़ा की ओर ले जाती थी।

क्रैशर पर काम कर रहे फुटकर मज़दूरों पर अभिलाख सिंह नाना प्रकार के अत्याचार करता है पर वे उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं करते। क्योंकि अभिलाख ने अपना आतंक इन भूखों-नंगों की आत्माओं में बिठा दिया है और वे सहन करने के लिए अभिशप्त बन गए हैं। इस दशा के लिए वे अपने भाग्य को दोषी ठहराते हैं। "ना जिज्जी, ना! तुम गलत काहे को बोलोगी? ... का कर देवें? मालिक की नज़र का फेर है। किसी पर कोप तो किसी पर घिरना, किसी पर दया-माया अपना-अपना भाग। अपना-अपना मुकद्दर। उनसे क्या कह सकते हैं?" [45]

कोठी के मजदूरों को मालिक ठीक समय पर वेतन नहीं देते। मज़दूरों को जो भी वेतन मिलता है उससे भी अधिकांश अंश नाना प्रकार के कारणों से काट लिया जाता है और इस सबको मज़दूर अपनी किस्मत मान कर अपना लेते हैं। "इस सबको देखते हुए हरि जब अपने साथी मज़दूरों से पूछता है कि कब तक वे लोग इस तरह सारे जुल्मों को चुपचाप सहते रहेंगे तो लोग कहते हैं-जब तक किस्मत में लिखा है।"[46]

लेकिन जो अपने एक ही दिन के भरण पोषण के लिए किसी मालिक या ठेकेदार के पास अपना सिर बेचता है और जिसके आनेवाले कल की आमदनी का कोई ठिकाना न हो उससे किसी भी प्रकार के विकास या प्रगति की आशा करना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता। मज़दूर कभी भी अपनी इच्छाशक्ति से संघर्ष करने

---

[45] इदन्नमम-पृ.281

[46] और पसीना बहता रहा-पृ.12

आगे नहीं आता है। क्योंकि उसे उसकी भविष्य और कमाई की अनिश्चितता शोषण और अत्याचार के सम्मुख सामान्य सी लगती है। उसे इस बात का ज्ञान ही नहीं होता कि उसका संघर्ष उसे एक बेहतर जीवन और काफी हद तक कमाई के अनेक स्रोत प्रदान कर सकता है।

मंदाकिनी जब लोगों को उनकी परिस्थिति से अवलगत कराती है और उस विषय में सोचने को कहती है तो लोगों में डर छा जाता है।

"लोगों के कान खड़े हो गये। नंग! कैसी जंग? कौन कर रहा है जंग? सौ-पचास कंठों से यही एक बात निकली।

बेटा, गरीब और पइसा वालों के बीच कैसी जंग? राजा और ंक में कैसा मुकाबला? कोई वृद्ध बोला।"[47]

श्रमिकों का यही डर और पिछड़ापन उन्हें केवल और केवल गरीबी ही सौंप देता था।

"मज़दूर जो हज़ारों में, जो देश का धन पैदा करते थे, वही देश के सबसे कंगाल, सबसे अभावग्रस्त थे। ... उनके बच्चों के बदन पर मैले व फटे कपड़े, चेहरों पर पीलापन, उनकी पत्नियों की आँखों में अकाल का सूखा धँसे हुए गाल और उभरी हुई हड्डियाँ..." [48]

लोगों से उनकी जमीनें छीन लेने के बाद किसान खेतिहर मज़दूर बन गया और व्यापारी मालिक। और फिर शोषण की गाथा का शुभारंभ। लेकिन मूल निवासी होने के बावजूद भी वे अपने अधिकारों के प्रति सतर्क नहीं हो पाए। यहाँ तक कि ब्लास्टिंग में लोगों की मृत्यु का विरोध भी नहीं करते। "रामदास बोले, "क्या करते बिटिया, क्या कहते और क्या बोलते? जब जमीन के ऊपर से ही कब्जा हट गया तो किस दम पर बोलें? पराई अमानत पर लड़ने वाले अब हम हैं कौन? वहाँ चाहे ब्लास्टिंग के पथरा गिरें, चाहे परलय सरकै। और अपनी सुनेगा कौन?"[49]

[47] इदन्नमम-पृ.197
[48] और पसीना बहता रहा-पृ.37
[49] इदन्नमम-पृ.196

अपनी दयनीय स्थिति को ही वे अपनी सबसे बड़ी हार और आगे न बढ़ पाने का कारण समझते थे। पूँजीपति मज़दूरों के इस पिछड़ेपन और हीनता भरीभावना का फायदा उठाता था। वह उसे जिस प्रकार चाहे उस तरह नचाता था और मजे लूटता था। "बी□ा-मैदान में तीस-चालीस फुट लंबा लकड़ी का जो खंबाथा, उस पर नीचे से ऊपर तक चर्बी पोत दी गई थी और उसकी चोटी परएक धोती, एक कमीज, एक बोतल शराब ओर बीस रुपये एक टोकरी में बाँध कर लटका दिए गए थे। घंटे-भर से कई मज़दूर बारी-बारी से उस खंबे पर चढ़कर ऊपर बँधी चीज़ों को अपनाने की कोशिश कर रहे थे। खंबे की फिसलन के कारण कोई भी उसे आधे से ऊपर नहीं चढ़ पा रहा था। भारी आपाधापी मची हुई थी।"[50]

ि□न्हें अपनी स्थिति का न तो सही सही ज्ञान था। न ही चिंता थी और न ही कोई योजना वह शराब के नशे में धुत पूँजीपतियों के मनोरंजन का सामान बना हुआ था और अपनी मूर्खता का पिरचय दे रहा था।

असीम परिश्रम के बाद भी उन्हें न तो रहने लायक घर मिलता है, न ही दवा-दारू, न ही न्याय और न ही समाज में रहने योग्य स्थिति। चीनी कारखाने में काम कर रहे मज़दूरों की स्थिति इस बात को साक्ष्य प्रदान करती है।

"हाँ, बच्चों की बीमारी फैली थी। दवा-दारू का कोई बंदोबस्त नहीं हो रसका। यह दूसरा नाम बनारस कोठी का है। लछमन लाल। पैंतीस साल से शक्कर उद्योग में मज़दूरी कर रहा है। पत्नी और दो लड़कों सहित आज तक उसका अपना कोई घर नहीं। बुढ़ापे में भी वह नौकरी से हटना नहीं चाह रहा, इस डर से कि वैसा करने से उसे कोठी का वह घर छोड़ देने को कहा जाएगा। इस सूची में जितने नाम हैं, सभी बरसों से सताए हुए लोग हैं। और यह देखो अम्मादेवी पोनामा। अस्सी साल की होने को है। आठ साल की उम्र से ब्रिटानिया कोठी में काम कर रही थी। पूरे पच्चीस साल तक काम करती रही। आज पास-पड़ोस के मज़दूरों के घर खा-सोकर बाकी

---

[50] और पसीना बहता रहा-पृ.183

जिंदगी गुजार रही है। यह है रशीद जमाला। बेटी खुद्कुशी करके मर गई। दो बेटे सात साल से कैद की सजा भुगत रहे हैं।"[51]

"ना जिज्जी, ना! तुम गलत काहे को बोलोगी? पढ़ी-लिखी ज्ञानिन-ध्यानिन होके गलती कैसे कर सकती हो तुम? हम तो जो कै रमे कै समझी तुमने हमारी भाभ्ई? का कर देवें? मालिक की नजर का फेर है। किसी पर कोप तो किसी पर घिरना, किसी पर दया-माया। अपना अपना भाग। अपना-अपना मुकद्दर। उनसे क्या कह सकते हैं हम?"[52]

श्रमिकों की इस दयनीय स्थिति का परिणाम है उनका पिछड़ापन, उनकी गरीबी, उनका विद्रोह और विरोध न करने की विवशता और अधिक से अधिक अनिच्छा। एक वाक्य में कहें तो यह श्रमिक वर्ग परिस्थितियों का शिकार बना हुआ था, जिसके पास छटपटाने के अलावा कोई विकल्प नहीं रहता है। इसे वे मालिक और भाग्य का फल ही मानते थे।

2.2 विवशता

श्रमिकों के जीवन में कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं या फिर बन जाती हैं, जिनके सामने वे चाह कर भी कुछ न कर पाने के अभिशप्त बन जाते हैं। श्रमिकों का जीवन और उनकी विवशता एक ही पथ के दो सहचर के तरह साथ-साथ चलते हैं। किसी भी प्रकार का काम करने की, एक काम को छोड़ दूसरे को न अपना पाने की, कार्यक्षेत्र में हो रहे अन्याय का विरोध न कर पाने की और पूँजीपतियों के दबदबे से डर कर हार मान लेने की विवशताएँ, इनके जीवन में सदैव उपस्थित रहती हैं। यही उनकी जीवन और हीन भावना बन जाती है। यह विवशताएँ इनके जीवन में अकारण नहीं आतीं। परिस्थितियों और उसकी माँग के सामने हार कर, विवश होकर वे कुछ नहीं कर पाते। यही इनके जीवन का सार बन जाता है।

---

[51] और पसीना बहता रहा-पृ.113
[52] इदन्नमम-पृ.281

बेरोजगारी और बेरोजगारों की बढ़ती हुई संख्या के कारण श्रमिक किसी भी प्रकार का कार्य किसी भी हालात में करने के लिए विवश होता है।

"यहाँ काम भी बहुत हे और आदमी अनगिनत हैं। हालत इतनी खराब है कि झोटे-बैल के स्थान पर आदमी रेढ़ा खीचंने के लिए तैयार है।"[53]

यह जानते हुए भी कि बेगार को अपना लेने के बाद मालिकों की दृष्टि में मज़दूरों की स्थिति जानवरों जैसी हो जाती है शिवदान उसे अपनाता है और उसे बचाए रखने के लिए प्रयत्नरत और चिंतित रहता है। "अब उसके सामने बेगार से छुटकारा पाने का सवाल प्रमुख नहीं था, सवाल था जीविका के उस एकमात्र स्रोत को बचाने का, जिसके लिए उसने बेगार करना भी स्वीकार कर लिया था।"[54]

चमड़े के कारखाने में काम की तलाश में पहुँचा काली वहाँ के वातावरण को देख दंग रह जाता है। पर शहर में बसने के लिए और दो वक्त की रोटी के जुगाड़ के लिए वह उस गंदगी भरे कारखाने में भी काम करने का मनोबल बनाता है। जीवन की आवश्यकता और परिस्थितियों की माँग को समझाते हुए किशना यह बताता है-

"भाई, देख ले। काम बहुत गंदा है। समझो गंदी बदबूदार नाली में कीड़ा बनकर रहना पड़ता है। खुजली-खारिश आम रहती है।"

"काम, काम ही होता है और हर काम आदमी को ही करना पड़ता है।"[55]

यह परिस्थिति श्रमिकों के हालातों और भाग्य के साथ समझौता करने की विवशता को प्रस्तुत करता है।

किसी अन्य जगह पर काम न मिल पाने की अनिश्चितता एवं बेकार और बेरोजगारी के उर से कालि और उसके साथी चमड़े के कारखाने का काम नहीं छोड़ सकते। फोरमैन के दुर्व्यवहार को और गालियों को सहन कर उसी जगह पर टिके रहना उनके लिए अनिवार्य बन जाता है। जब कालि कारखाने में मज़दूरों को सहूलतें मिलने की बात को उकेरना चाहता है तो बंसा उसे आराम से समझाता है-"तुम्हें एक

---

[53] नरककुंड में बास-पृ.20
[54] धारा के बीच में-पृ.20
[55] नरककुंड में बास-पृ.129

ही जवाब देगा कि तुम उस जगह नौकरी कर लो जहाँ ये सहूलतें मिल रही हैं। इसका साफ मतलब है कि अगर तुम्हें पसंद नहीं है तो यहाँ से काम छोड़ दो। ऐसा करना बैठे-बिठाए फाकों को बुलाना है।" फिर उसने काली को समझाया, "पशु किसी माड़े थान पर भी बँधा हो तो अच्छा होता है। उसका एक मालिक होता है जो उससे काम तो लेता है लेकिन उसके चारे-पानी का भी ध्यान रखता है। अगर वह थान से छूट जाएगा तो ढेरों में मुँह मारेगा और हर किसीसे डंडे खाएगा।"[56]

मजदूरों की इस विवशता भरी जिंदगी के विषय में मंदाकिनी इस प्रकार कल्पना करती है-"लछो कह रही है, जिज्जी, हमारा तो सब भाग-भरोसे है। आदमी की जे हालियत। और बच्चा भी हारी-बीमारी हो ऐसे ही छोड़ जाते हैं ईसुर-भरोसे। साँझ को लौटकर आवें तो कहाँ मरा मिले। रोटी से ज्यादा किसी चीज़ की कीमत नहीं है हमारा विवस जिंदगानी में...।"[57]

अपनी इन अड़चनों और विडंबना भरे जीवन के जिम्मेदार वे स्वयं भी होते हैं। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ न उठाने और न उठा पाने का भय ही उन्हें पीछे की ओर धकेलता है।

"तीन सौ आदमी देश के लिए धन पैदा कर रहे थे और दो आमदी उन्हें वैसा करते देख रहे थे। कल तो सारा धन वे दो आदमी बटोर ले जाएंगे और उसे पैदा करनेवाले तीन सौ मजदूर अधनंगे-अधभूखे रह जाने को विवश होंगे। इस विवशता में उनका अपना भी हाथ होता है।"[58]

इस भय का सबसे प्रमुख कारण है अनिश्चित भविष्य और असहनीय गरीबी तथा इसका प्रतिफल पिछड़ापन। इन सभी तत्वों ने मिलकर श्रमिक को इस तरह का विवश जीवन धारण करने के लिए लाचार बना दिया है। वह इस परिस्थितियों के सम्मुख शक्तिहीन होता जाता है। इस विवशता से छुटकारा पाने का अथाह प्रयास और उसके निष्फल परिणाम को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है-"जो आदमी इतने

---

[56] नरककुंड में बास-पृ.163

[57] इदन्नमम-पृ.228

[58] और पसीना बहता रहा-पृ.37

समय तक पूरा-पूरा दिन नमक और चूने के पानी में रहा हो, दिन-रात बदबू सूँघी हो, हर समय कच्ची खालों से जूझता रहा हो, खुजली के कारण जिसका शरीर भूरी रेता-सा बन गया हो वह आदमी हर जगह सींग फँसाएगा ही। रस्सा तुड़ाकर भागने की कोशिश भी करेगा। खुजली से घबराकर भाग भी जाए लेकिन पेट के अंदर की खुजली से तंग पड़ते ही फिर लौट आएगा। हम गंदी नाली के कीड़े बन गए हैं। फूल की क्यारी में रखा दिए जाने पर या तो मर जाएँगे या फिर रींग-रींगकर गंदी नाली में दोबारा जा गिरेंगे।"[59]

विवशता और लाचारी भरी जीवन की यह स्थिति श्रमिकों में संगठन की अज्ञानता और जागरण की कमी की उपस्थिति का एक प्रमुख कारण बना रहा। यह स्थिति आज भी है। केवल परिदृश्य बदले हुए हैं।

2.3 शोषण के विरुद्ध चेतना

श्रमिक वर्ग के इतिहास और जीवन में सबसे क्रूरतापूर्ण, वीभत्स और भयानक पक्ष है-उसका शोषण। पूँजीपति वर्ग सर्वहारा का हर तरह से शोषण करता है। वह शोषितों को न केवल शाीररिक यातनाएँ देता है, वरन वह उसे जोंक की तरह चूसता है तथा उसके हृदय को, उसकी मानसिक स्थिति को धीरे-धीरे खोखला करता जाता है। श्रमिक को वह मनुष्य होने की मान्यता ही नहीं देता। यही कारण है कि श्रमिक वर्ग को शोषित और पूँजीपतियों को शोषक वर्ग के नाम से पर्यायित किया गया है। अपने स्वार्थ एवं लाभ के लिए बुर्जुआ वर्ग इनसे अधिक से अधिक काम निकालने के लिए इन्हें अपने दबाव में रखते हैं। शोषण को पूँजीवादी संस्कृति की एक सैद्धांतिकी मानी जा सकती है। मज़दूरों को शारीरिक और मानसिक रूप से निष्क्रिय, पददलित और अवनत कर, उन पर नाना प्रकार के प्रतिबंधन लगाकर उन्हें कुंठित व्यक्तित्व बना दिया जाता है। एक ऐसा प्राणी जो केवल पशु की तरह परिश्रम ही करे, उसे उतना विराम ही न मिले कि वह किसी सुविधा की माँग कर पाए या किसी प्रतिबंध के विरुद्ध सोच पाए। वह जितना अधिक काम करेगा पूँजीपति को

[59] नरककुंड में बास-पृ.162

उतना ही लाभ होता जाएगा। हम बात करना चाहते थे, पर साहब ने हम पर प्रहार का आदेश दिया था। चारों सरदारों और रखवारों ने बड़ी बेरहमी से हमारे ऊपर लातों और मुक्कों की बौछार शुरू कर दी थी। मुझे सामने के सेंहुड़ की बाड़ पर इस तरह ढकेला गया था कि सेंहुड़ के काँटों और उसके जहरीले दूध ने मेरी आरणों को हमेशा के लिए...।"[60]

मजदूरों के साथ इस प्रकार का भयावह व्यवहार कर वे उनकी मनःस्थिति को कमजोर कर देना चाहते हैं और मनोवैज्ञानिक स्तर पर उन्हें हीन भावना से ग्रसित बनाना चाहते हैं।

जमींदारों और साहूकारों का किसानों और खेतिहर मजदूरों का शोषण करने का ढंग ही अलग था। वे लगान देकर रसीद नहीं देते थे और बाद में उस जमीन से किसानों को बेदखल कर देते थे-"ठीक है भइया। ... आज हाड़ तोड़कर बोआई कर रहे हैं, कल बेदखली हो जाय तो घरौ का ओर्द जंगेरे में जाये की नाहीं।"

"लगान पूरा भरो तो बेदखली काहे होगी।"

"और कौन अन्न है लगान का। बस भरे जाओ। रसीद देता है कोई?"

"रसीद दे दें तो बेदखली का डर कैसे दिखाएँ। और बेदखली का डर न रहे तो नजराना कौन देगा।"[61]

इस प्रकार के शोषण के विरुद्ध कुछ न कर पाने के पीछे भी लोगों की विवशताएँ और पिछड़ापन ही जिम्मेवार रहा है। हरि परकाश से यह प्रश्न करता है कि आखिर यह शोषण कब तक चलता रहेगा तो परकाश उसके सम्मुख इस वास्तविकता को प्रस्तुत करता है कि-"मैं तुमसे बस इतना कह रहा था कि तुम्हारा सवाल एकदम जायज है। उसका सही जवाब तुम्हें मिलकर रहेगा, पर वह जरूरी है कि तुम उसकी उम्मीद, अपने सामने के आदमी से न करके देश-भर की उन सभी

---

[60] और पसीना बहता रहा-पृ.84
[61] बेदखल-पृ.10

दिखाई और न दिखाई देनेवाले आदमियों से करो जो कि जुल्मों को चुपचाप सहे जाने को मजबूर हैं।"[62]

श्रमिकों की यह मजबूरी और डर भी अपनी जगह पर युक्तिसंगत ही थी। भविष्य सही अर्थों में ही उनके लिए एक अनिश्चित स्वप्न था ही, वह वर्तमान जिसे जीने के लिए वे अभिशप्त थे उसका संशय उन्हें अधिक था। मालिक के अवैध आदेश के कारण जब तांबी का पैर टूट जाता है तो हरी बार-बार इस प्रसंग को सभा में उठाता है और इसके विरुद्ध कुछ करने के लिए गाँववालों के सामने प्रस्ताव रखता है तो लोग उसे उलटा डांटते हैं। सुग्रीव चाचा उसे फटकारते हुए कहते हैं- "ठीक है, ठीक है। तु जो कहत बानी ठीक है, पर हम लोग मुँह खोलेंगे तो नौकरी से हटा दिए जाएँगे। नाहक में अपना खनवा में माटी डाल लेवें के बात हम लोग काहे करें।"[63] परंतु यह स्थिति हमेशा नहीं बनी रहती। मिलों तथा कारखानों की स्थापना के साथ ही व्यापारी बाजार अधिक विस्तृत होता गया तथा शोषण भी जमकर होने लगा। लेकिन जैसे जैसे पीढ़ियों का अंतर होने लगा तथा उसे अपनी नियति, परिस्थिति और भविष्य की अनिश्चितता सताने लगी वह जागरूक होता गया। इस जागरण में वर्गगत चेतना ने भी स्थान लिया। वह धीरे-धीरे अपनी दशा और स्थिति को समझता है और उसमें चेतना जागृत होती है। यह चैतन्य ही उसे शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की शक्ति और ऊर्जा देता है। कम-से-कम वह अपने ऊपर हो रहे शोषण को समझने लगता है।

शोषण के विरुद्ध चेतना की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि जो अन्याय किसी एक के साथ आज होता है दूसरे के साथ वही या उससे भी भयानक रूप में हो सकता है। गोपुली लुहारनी का यह कहना एकदम सही है-"ईजा, अब एक-एक कर सैकड़ों लोगों के परखचे उड़ते रहेंगे। पूरा गाँव तबाह हो जाएगा। लेकिन पधानचारी-वह आज की तरह कल भी बनी रहेगी। भोला को ही क्यों, पूरे गाँव को बता दूँगी,

---

[62] और पसीना बहता रहा-पृ.29

[63] और पसीना बहता रहा-पृ.29

सावधान रे लोगों, अब चुप रहने का समय नहीं रहा। जागो वरना एक दिन तुम्हारी भी बारी आएगी।"[64] समकालीन परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो यही हो रहा है। साहूकार और जमींदारों के स्थान पर आज अंतराष्ट्रीय कंपनियाँ भूमंडलीकरण के नाम पर अलग तरह का ही शोषण कर रही है। लेकिन जब वर्ग चेतना का जागरण होता है तो सब कुछ सहन करने वाला सर्वहारा वर्ग ही प्रतिबद्ध हो जाता है उससे मुक्ति पाने को। "लोग अब नहीं देखेंगे बाबू, बहुत देख लिया है। अबकी वह चउधरी हो रहेगा या हम लोग। आप ये न कहिए, रहकर देखिए या जाना हो तो वहाँ से पता कर लीजिएगा कि सोनबरसा में अब चउधरी का चलता है या गरीब-गुरबा लोगन का।"[65]

शोषण के डर को वह अपने मन से निकाल कर उससे सामना और संघर्ष कर आगे बढ़ना चाहता है। "डर-डर कर ही तो हम इतने दब गए हैं कि खुलकर सांस भी नहीं ले पाते, खुल कर बोल भी नहीं पाते। जबकि खुद कमाते हैं और खुद जिंदगी के पौधे उगाते हैं, डर के मारे हम अपने पौधों के फल तक नहीं खा पाते, फल दूसरे लेते हैं, दूसरे ले जाते हैं, पत्तियाँ उनसे छोटे लोग ले जाते हैं, छीलान और झाड़न जो बच जाती है वह हमें मिलती है, जबकि उस पर हमारा पहला हक है, पर इस डर ने हमें इस कदर निकम्मा कर दिया है कि हम... हम दूसरों के लिए काम करते-करते, काम आते-आते खुद को ही भूल गए हैं, अपना जीवन ही जीना भूल गए हैं..."[66]

सर्वहारा वग्र जब इस बात को आत्मसात कर लेता है कि उसका श्रम ही वह बुनियाद है जिस पर पूँजीपति वर्ग इतना शक्तिशाली बना है और पुनः उस पर ही अत्याचार कर रहा है तो यह सत्य उसके लिए असहनीय बन जाता है। "दूसरों के जुर्म को हम कब तक सहेंगे, सहन सामने वाले के हौसले बुलंद करना है। बाबा, उसके टुकड़ों को हम ठोकर मारते हैं, जब तक दम में दम है हम सबसे निपट लेंगे।

---

[64] आसमान झुक रहा है-पृ.173
[65] सोनबरसा-पृ.129
[66] नदी फिर लौट आई-पृ.184

हमारी जवानी, मेहनत और कुर्बानी देश की आज़ादी के काम आई, इतनी छोटी-सी बात को हम हल नहीं कर सकेंगे?"[67]

क्रौशन पर काम कर रहे श्रमिकों की चेतना भी इसी प्रकार जागती है-"वे एक-दूसरे का मुख देखने लगे, जैसे सब समझ रहे हों, एक-एक बात पर गौर दे रहे हों। भगवान से भी बड़ा ज्ञान सुन रहे हों। उनके ही जीवन की रामायन बाँच रही हो मंदा। कोटरों में धँसी आँखें चपल हो उठीं। होंठों पर आत्मविश्वास-सा जागा। और धीरे-धीरे खुलने लगा उनके भीतर का आदमी।"[68]

समाज निर्माण में अपनी भूमिका, महत्व, अपने परिश्रम का मोल और सर्वोपरि अपने अस्तित्व और पहचान का ज्ञान ही उन्हें शोषण के खिलाफ लड़ने का आत्मविश्वास देता है, क्योंकि संघर्ष करने के लिए कारणों की कमी नहीं है इस वर्ग के पास।

2.4 एकता और जागरण

भारतीय श्रमिकों के परिप्रेक्ष्य में यह बात बड़ी ही चिंताजनक और महत्वपूर्ण स्थान रखती थी कि उनमें जागरण और एकता की घोर कमी थी। अपने न्यूनतम अधिकारों, कार्यक्षेत्र में आवश्यक सहूलतों यहाँ तक कि मालिकों के साजिशों के प्रति भी वे सचेत नहीं थे। और जब इन समस्याओं की तरफ वे जागरूक बने, तब एकता की कमी के कारण वे इसके समाधानों के लिए कुछ करने योग्य नहीं थे। समस्या सबके सामने ही थी। सब धीरे-धीरे उससे अवगत भी हो रहे थे पर उसके समाधान को ढूँढ़ निकालना किसी के वश में नहीं था। क्योंकि यह किसी भी प्रकार तथा किसी भी दृष्टिकोण से व्यक्तिगत प्रयास नहीं वरन समष्टिगत पहल की माँग कर रहा था।

फ्रांस, इंग्लैंड तथा अन्य विदेशी श्रमिकों के पास और कुछ हो न हो परंतु अपनी कारीगरी, कुशलता और शहरीपन था। उनके पास गाँव का गँवारपन और

---

[67] नदी फिर लौट आई-पृ.83

[68] इदन्नमम-पृ.282

शहर का डर नहीं था। वे भाषा, क्षेत्रीयता, धर्म और जाति की गहरी रेखाओं में बँधे और बँटे हुए नहीं थे। लेकिन इसके विपरीत भारतीय श्रमिकों के क्षेत्र में यह सभी परिस्थितियाँ ही मुख्य भूमिका धारण किए हुए थीं। इन सभी से भारत का संघर्षशील सर्वहारा-वर्ग बुरी तरह से घिरा हुआ था। यह परिस्थितियाँ, जो उसके लिए दिन-ब-दिन उसकी सीमाएँ बनती जा रही थीं, उन्हें लांघना उसके लिए बहुत ही कठिन था। एक दूसरे के साथ संपर्क स्थापित करने में उसे मुश्किलों का सामना करना तो पड़ता ही था, पर इससे भी समस्याजनक बात यह थी कि चाहे मानसिक हो, शारीरिक हो, पारिवारिक हो अथवा कार्यक्षेत्र से संबंधित हो-उसे समझने और एकजुट होने में ही उन्हें वर्षों लग गए। लेकिन धीरे-धीरे जब समस्याओं की बाढ़ बढ़ती गई तो उनसे उबरने के लिए मज़दूरों ने इन सीमाओं को तोड़ना आरंभ किया और एकजुट होते गए। भारतीय मज़दूरों में एकता और जागरण लाने में देश के श्रमिक नेताओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। श्रमिकों के बीच जागरण और एकता का आगमन परस्पर अनुकूल शक्ति के समागम की भाँति ही आया। लोग जागृत होते रहे, एकत्रित होते रहे तथा एकता की शक्ति उनमें अधिक-से-अधिक जागरूकता पैदा करती रही।

विवेच्य उपन्यासों में श्रमिकों के बीच एकता के जागरण का वर्णन विभिन्न परिस्थितियों और परिप्रेक्ष्य में किया गया है। सभी स्थितियाँ इस बात की पुष्टि और प्रमाण देते हैं कि एकता के जागरण के कारण श्रमिक कम-से-कम अपने अधिकारों को समझे और उनसे परिचित हो पाए हैं। साथ ही उनमें संगठित रूप से कुछ कर पाने की ऊर्जा जन्म लेती है।

'इदन्नमम' उपन्यास में मंदाकिनी गाँव के अनपढ़, मटमैले क्रैशर पर काम करनेवाले भूमिहीन मज़दूरों में 'मानस' की कथाओं के माध्यम से जागरण लाती है। गाँव के यह मजदूर धर्म के पालन में और धार्मिक नियमों के निर्वाह के बड़े पक्के होते हैं। कोई और बात इनके मन-मस्तिष्क पर प्रभाव डाल सके या नहीं पर धार्मिक उक्तियों की व्याख्या को ये लोग अवश्य ही आत्मसात कर लेते हैं।

"कुछ गुनें, कुछ सोचें, कुछ विचारें, कुछ करें तब तो सार्थक है बाँचना और सुनना, वरन् अकारथ। तुलसीदास ने क्या गाने के लिए लिख दी थी चौपाइयाँ दोहे? नहीं ये तो उस विपत्ति-काल की कथा है जब धरम की हानि हो रही थी, जब असुरों का साम्राज्य था और जब राम को मनुज वेश धरने के लिए बाध्य होना पड़ा था, सज्जनों की पीर हरने के लिए जन्म लेना पड़ा था, अभिशप्त और त्रस्तों को उबारने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम का आदर्श अपनाया था। ... आपसी खतरों की आहट बताकर चेताएगी, तब सोचेंगे, समझेंगे और संभवतः कोशिश भी करें।"[69] मंदाकिनी को लोगों में एकता का जागरण लाने के लिए यही सबसे सुगम, सरल और प्रभावी मार्ग दिखाई पड़ा। उसमें यह आत्मविश्वास भी जागा कि राम के चरित्र की गाथा लोगों के जीवन और मनःस्थिति पर जम गये पिछड़ेपन की जंक को साफ कर सकता है। उनका चैतन्य इसी के माध्यम से जाग सकता है। "न बाँधे सेतु, न ढहावें लंकापुरी, न मारें रावण और मेघनाद, लेकिन इस तरह की इच्छा तो करें। वि□ारें तो सही। किसी प्रतिरोध की शुरुआत तो करें।"[70]

अवध किसान आंदोलन के समय बाबा रामचंद्र भी इसी प्रकार रामायण की चौपाइयों के माध्यम से लोगों को जागरण और एकता की सीख देते रहे हैं। रुदे में किसान आंदोलन के सुभारंभ में किसानों के वे इन्हीं चौपाइयों के माध्यम से ही इनमें ऊर्जा को जगाने की चेष्टा करते हैं। "फिर बाबा ने बालकांड की चौपाई आधी बदलकर गाई-

राम राज विराजत रुदे।

रामचंद्र सहदेव झिगूंरे।

... किसान वहाँ से उठकर चले तो उनमें एक ज्वार सा उमड़ रहा था। छलकते उत्साह से पैर सीधे नहीं पड़ते थे। जैसे मन के अँधेरे कोने में किसी ने मशाल जला दी हो। तैरते हुए शब्दों और भावों के गाले सिमटकर एक ठोस

[69] इदन्नमम-पृ.195

[70] इदन्नमम-पृ.195

विश्वास का आकार ले रहे थे। ... तो हमारा भाग्य बदल सकता है। ... और यह हमारे हाथ में है।"[71]

बाबा रामचंद्र के इस प्रयास के कारण कमोवेश उन किसानों, खेतिहर मजदूरों, पिछड़ा हुआ संघर्षशील जन, चाहे हम उन्हें किसी भी उपनाम से पुकार लें, अपने आप में उत्साह की उपस्थिति को अनुभव करता है। यह बात उसके अर्धचेतन से चेतन की ओर गति धारण करती है कि वह स्वयं अगर चाहे, तो अपने उस दयनीय भाग्य को बदल सकता है और सुनहरे भविष्य की तरफ जाने का प्रयास कर सकता है।

मंदाकिनी क्रैशर पर काम करने वाले मज़दूरों को उनके श्रम का महत्व समझाती है, उन्हें इस बात से अवगत कराती हे कि वे लोग अपने आपको पिछड़ा न माने क्योंकि दुनिया का कोई भी मालिक, साहूकार, जमींदार या पूंजीपति अपने काम के लिए स्वयं हाड़तोड़ मेहनत नहीं कर सकता। इस कारण वे अपने आपको गिरा हुआ न समझे। वह कहती है-"विरथाँ ही दीन बने रहते हो। इस तरह तौहीन न करो परिश्रम की।"[72]

यह बात उन पतले-दुबले लोगों के मन को छू जाती है। वे अपनी इस विराट संबल 'अपने ही रम' को आज तक क्यों और कैसे नहीं समझ और पहचान पाए। अब समझ रहे हैं श्रम का महत्व। पसीने की बूँदों की चमक के तेज़ को अब महसूस कर रहे हैं। "वे एक-दूसरे का मुख देखने लगे, जैसे सब समझ रहे हों, एक-एक बात पर गौर दे रहे हों। भागवत से भी बड़ा ज्ञान सुन रहे हो। उनके ही जीवन की रामायण बाँच रही हो मंदा। कोटरों में धँसी आँख चपल हो उठीं। होंठों पर आत्मविश्वास-सा जगा। और धीरे-धीरे खुलने लगा उनके भीतर का आदमी।"[73]

अवध प्रांत के विभिन्न गाँव से आए किसानों को जब देश के प्रधान मंत्री के दर्शन मिलते हैं तो वे केवल भाषण सुनकर ही लौट जाने को तैयार नहीं होते।

---

[71] बेदखल-पृ.76

[72] इदन्नमम-पृ.282

[73] इदन्नमम-पृ.282

अंततः जवाहरलाल नेहरू को लोगों से यह वायदा करना पड़ता है कि वे उनके गाँव आकर उनकी परिस्थितियों को अपनी ही आँखों से अनुभूत करेंगे। इस आंदोलन के दौरान किसानों और ताल्लुकेदारों के बीच जिस युद्ध का शंखनाद हो चुका था इससे किसान डरे हुए तो थे पर उनें अपनी परिस्थितियों को सुधरने और एक व्यवस्थित भविष्य की कामना उनके भीतर से ही झाँक रही थी। "लौटते समय किसानों के भीतर डर तो समाया था लेकिन वे ऊपर से विजय का भाव ओढ़े हुए थे। उन्हें गाँधी जी से न मिल पाने का मलाल तो था लेकिन नेहरू को वायदे से एक अनिश्चित-सी आशा भी बँधी थी जिसके सहारे वे आगे की मुसीबतों का सामना करने की हिम्मत बना रहे थे।"[74] आगे आने वाली मुसीबतों का सामना करने, उसे झेलने और उसके साथ लड़ने का यह विश्वास उन गरीब, दयनीय किसानों में इसलिए था क्योंकि अब वे एकत्रित हो चुके थे। वे एकता के बँधन में बँधे हुए हैं। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बन चुके हैं।

बस्ती के मजदूरों ने भी माधो के भेजे गुंडों को डटकर और एकजुट होकर सामना किया है। हमेशा माधो से डरने वाले मजदूरों में इस भाव और विचार का संचारण होता है कि-"... इस बार दबे तो हमेशा दबना पड़ेगा, हर की जबान पर यही बात थी, बात ही बात में सारी बस्ती इकट्ठा हो गई।"[75]

जब तक लोगों में डर बसा रहेगा तब तक उनमें एकता के भाव का आना असंभव है। परिस्थितियों और समस्याओं को झेलते-झेलते जब उनकी चिंतनशक्ति सहनशीलता का साथ छोड़ देती हे तब उनमें अपनी स्थितियों को सुधारने की इच्छा जागती है। 'सोनबरसा' के लोगों के मन में चौधरी के प्रति जो डर बसा हुआ है उसके विरुद्ध एकजुट होने के लिए कृष्णकांत मिश्र लोगों को समझाते हैं-

---

[74] बेदखल-पृ.110
[75] नदी फिर लौट आयी-पृ.113

"कहा कि अब डरने की जरूरत नहीं है। यह मौका है कि सभी एकजुट होकर चौधरी का विरोध करें और उसकी हेठी को तोड़ दें वर्ना आने वाले दिनों में वह अधिक खतरनाक होकर उभरेगा और जीना हराम कर देगा। उसने सबको एक दूसरे के खिलाफ खड़ा कर रखा है। मुसलमानों को तो उसने हिंदुओं का कट्टर शत्रु ही बना डाला है। ऐसी हालत में अगर उसका विरोध नहीं किया जाता तो बड़ी मुश्किल होगी और देखते-देखते हालत बेकाबू हो जाएगी। कृष्णकांत मिश्र के जोश और ललकार ने लोगों की सोई हुई चेतना को झंकृत कर दिया।"[76]

मज़दूरों के बीच फूट डालना, उनमें एकता का ना बन पाना, उनको जागरण का मौका न देना, उन्हें पिछड़ा बनाए रखना यह सब पूँजीवादी समाज के कर्तव्य समान हैं। वे हमेशा यही चाहते रहे हैं कि उनके तलवे तले दबकर रहने वाला श्रमिक कभी जागरूक न बने।

"सामूहिक रूप से कानून तोड़कर संपन्न वर्ग को चुनौती दे पाने से अनजाने ही उनमें एक सामूहिक चेतना सुगबुगाने लगी थी। तालुकेदार, महाजन और सरकार की तिकड़ी ने हमेशा साधनहीन किसानों को चूसा था। लेकिन पहले उनके जुलमों के पीछे तनहा-तनहा लोग दिखाई पड़ते थे। किसानों के हमले के सामने इस तिकड़ी में एक साथ जैसा हड़कंप मचा था उससे किसानों को एहसास होने लगा था कि इन तीनों के हित आपस में कहीं मिलते हैं, कि उनकी अपनी बिरादरी इन तीनों से बिलकुल अलग है कि उनमें और इनमें साझेदारी का कोई बिंदु नहीं है कि कानून का नकसर उन्हें आज हाथ बनाए रखकर इस तिकड़ी का हित-साधन करना और इसी पर उसकी बुनियाद टिकी है।"[77]

संघर्षशीलजन अब समझ रहा है कि कौन उसके पक्ष में काम कर रहे हैं, कौन उसके हित के बारे में सोच रहा है और कौन अहित के बारे में। क्योंकि अब उनमें एकता है, वे जागरूक हैं। कोई भी बाहरी शक्ति अब उन्हें शोषण के गर्त में नहीं ले

---

[76] सोनबरसा-पृ.46

[77] बेदखल-पृ.142

जाएगी। अब वे केवल भाषणबाजी से संतुष्ट होनेवाले नहीं हैं। अब उन्हें छलना उतना सहज नहीं है, जो पूँजीपतियों की आदत बन चुकी थी। भाषा, जाति, धर्म, क्षेत्र-इन सब की सीमाओं को तोड़कर, एक लंबे समय तक अपनी अस्मिता की खोज की लड़ाई लड़-लड़ कर वह इस पड़ाव को प्राप्त तथा पार कर पाया है।

2.5 समस्याओं की प्रस्तुति

मजदूर वर्ग की अपनी अनेक समस्याएँ होती हैं। आवास जनित, वेतन जनित, कारखाने के वातावरण जनित, खान-पान आदि। लेकिन इन सभी से मुख्य समस्या है उनमें यह है कि वे इन समस्यओं को प्रस्तुत करने में असमर्थ थे। मुख्यतः श्रमिकों की यह समस्या या तो उनके संगठनों के नेताओं द्वारा प्रस्तुत की जाती थी या फिर उनके बीच अगुआ करनेवाला मजदूर के माध्यम से। पर धीरे-धीरे स्थितियाँ बदलती रही हैं। आज परोक्ष रूप से इनके समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ प्रत्यक्ष रूप से भी ये लोग अपनी समस्याओं को प्रस्तुत करने का साहस जुटा पाए हैं। इन समस्याओं की प्रस्तुतीकरण में जहाँ एक तरफ बेहतर स्थिति की कामना रहती है वहीं दूसरी तरफ, मुख्य लक्ष्य अपने अधिकारों का ज्ञान एवं उसकी माँग ही आशान्वित हो कर झाँकती है।

चमड़े के कारखाने की गंदगी भरे वातावरण में ही काम करना लोगों के लिए अत्यंत कष्टकर हो चला था और उसके साथ उन्हें पीने के पानी तक की सहूलतें नहीं मिलतीं। इस पर काली, जो स्वयं वहाँ मजदूरी करता है, सेठ रामप्रकाश से सीधे अपनी समस्याओं और सहूलतों के बारे मं बात करता है।

"सेठजी, काम बहुत ही गंदा है। मुरदार की कच्ची चमड़ी से जूझना पड़ता है। सारा दिन गंदगी, नमक, चूने और तेजाब के पानी से खेलना पड़ता है। खाज-खुजली समेत सौ बीमारियाँ लगती हैं। हाथ-पाँव की पाँ बिगड़ जाए तो कोढ़ का रोग भी लग सकता है। लेकिन यहाँ कोई सहूलियत नहीं है। पीने के लिए ताजा पानी और नहाने के लिए नल तक नहीं है...। थोड़ी ही देर में काली की झिझक दूर हो गई

थी और वह फर्र-फर्र बोलने लगा। बाकी लोग भी बहुत हद तक भय-मुक्त हो दालानों से बाहर आँगन में आ खड़े हुए।"[78]

जमीनों के बिक जाने के बाद और क्रैशरों की स्थापना के बाद सोनपुरा गाँव के लोगों के पास मजूरी या दिहाड़ी करने के लिए भी काम नहीं मिलता। क्योंकि मालिक लोग बाहर से मजदूर ले आते हैं। इस कारण लोगों को न काम मिलता है और न ही दो वक्त का अन्न। इस समस्या के समाधान के लिए मंदाकिनी अभिलाखसिंह के सम्मुख यह प्रस्ताव देती है-"दस-पाँच तुम रखोगे, दस-पाँच कोई और। इसी तरह सबके सब चिपक जाएंगे कहीं न कहीं। जमीन बिक गयी, चलो बिक जाने दो, पर मईंदारी का तो हक बनता ही है। उनका कौन-सा रुक्का-पट्टा लिखा जाता है।"[79]

जहाजों के बंदरगाह तक न पहुँच पाने के कारण कोठी मजदूरों को कपड़े, अनाज, दवा-दारू आदि सभी चीज़ों की कमी हो रही थी और इसके साथ ही महंगाई भी बढ़ रही थी। श्रमिकों को आधे पेट खाकर काम करना पड़ रहा था। ऊपर से उन्हें राशन में कीड़ों से भरे चावल दिये जा रहे थे। लोगों ने हरि के सम्मुख अपनी समस्याओं की व्याख्या इस प्रकार की-"लोग अपने साथ वे चावल भी लाये थे, जो इधर तीन-चार सप्ताह से मजदूरों को राशन में मिल रहे थे। हरि तो खुद खदखद कीड़ों से भरे उन चावलों को देख चुका था उनकी गँध से ही घर में बच्चे नाक सिकोड़ने लगते थे। सड़े हुए अनाज के कारण गाँव-गाँव में बीमारी बढ़ती जा रही थी।"[80]

इस पर हरी लोगों को यह सुझाव देता है कि इन सभी समस्याओं से सरकार को आगाह करना जरूरी है। "सरकार को आगाह किया जाएगा। गाँव-गाँव से हम यह आवाज़ उठाऐंगे कि मजदूर एक ओर तो शोषण और जुल्म से तंग है, दूसरी ओर अनाज के अभाव में भूखों मर रहे हैं। शुद्ध अनाज की व्यवस्था और उसका

[78] नरककुंड में बास-पृ.221
[79] इदन्नमम-पृ.199
[80] और पसीना बहता रहा-पृ.210

सही वितरण अगर वक्त से न हुआ, तो मजदूरों के बीच फैल रही बीमारियों को रोक पाना कठिन होगा।"[81]

मजदूरों से बिना पूछे ही फोरमैन उनकी वेतन से हर महीने पाँच रुपये मंदिर बनाने के लिए दान स्वरूप काट लेने का ऐलान करता है। जब सारे लोग उनके मंजूरी के बिना इस प्रकार के निर्णय का कारण जानना चाहते हैं तो फोरमैन को गुस्सा आ जाता है। पर काली भी उससे निडर होकर अपनी बात प्रस्तुत कर डालता है- "फोरमैन जी, इसमें गुस्सा करने की कया बात है। जिस आदमी को पीड़ा होगी, वह सी जरूरी करेगा। हमें पूछे बिना हमारे पैसे काट लिए गए। फैसला बिरादरी का था या किसी और का, हमें बताना तो चाहिए था। भरी सभा में हमोर पैसे काटने के बारे में आपने अपने आप ही ऐलान कर दिया था। अगर अपनी तसल्ली के लिए आपसे पूछ ही लिया है तो हमसे कौन-सा गुनाह हो गया है।"[82]

कभी न मुँह खोलनेवाले लोगों को इस तरह से बेबाक और निर्भीक हो अपनी समस्याओं को प्रस्तुत करते देख फोरमैन डर जाता है और उनमें अलगाव भाव पैदा करना चाहता है। परंतु सारे श्रमिक मिलकर ही, अपनी एकता के साथ समस्याओं को उठाते हैं।

मजदूरों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता ने ही उनमें अपनी समस्याओं को समझने और उन्हें मालिकों के सामने खड़ा करने का साहस देती रही। इसी साहस के बल पर वे अधिक से अधिक सचेत, एकत्रित और सजग बने तथा उनमें हड़ताल करने की समझ भी आयी।

2.6 आक्रोश

आक्रोश को संघर्ष और चेतनामयी साहस का प्रथम चरण कहा जा सकता है। श्रमिकों के बीच इस आक्रोश का जन्म अमानवीय व्यवहार, अन्यायी आचरण और अपनी दयनीय स्थिति को न सहन कर पाने के कारण ही हुआ। व्यक्ति के अंदर

---

[81] और पसीना बहता रहा-पृ.210

[82] नरककुंड में बास-पृ.240

आक्रोश का होना आवश्यक है। इसका होना आवश्यक है ताकि ‘जीवन’की प्राप्ति की लालसा बनी रहे। ताकि आगे बढ़ ‘परिवर्तन’ की प्रस्तुति को साकार रूप दे पाने की इच्छा उसमें प्रतिपल जगमगाती रहे।

सोनपुरा के लोगों की जमीनें क्रैशर मालिकों ने छल-बल से छीन ली और अब उनके पास जीविका के नाम पर कुछ भी नहीं है। मंदाकिनी और गाँव के सभी लोग चिंतित हैं। इस पर महाराज लोगों की इस स्थिति का कारण बताते हुए कहते हैं-

"हाँ, ठीक कहती हो, आक्रोश भरी भूखी निगाह बड़ी खूंखार होती है। □ब उसे छल-बल से कुचल दिया जाता है तो दीनता का जन्म होता है या बगावत का। आक्रोश आद्योपरांत बना रहता तो व्यापारी न ठहर पाता तुम्हारी धरती पर आवेश की जगह आत्मदया ने ले ली।"[83] महाराज बड़े ही सरल और आदर भाव से मंदा को आक्रोश के महत्व के बारे में समझाते हैं।

कारखाने में पहुँचने में थोड़ी-सी देरी हो जाने के कारण फोरमैन काली को माँ-बहन की गाली देता है। काली को गुस्सा तो बहुत आता है पर अपनी स्थिति को याद कर वह चुप रह जाता है। "काली के ऊपर-नीचे चलाते कदम रुक गए, और उसने क्षण-भर फोरमैन की ओर देखा, उसके मन में आया कि वह हौज से बाहर जाकर ही फोरमैन से बात करे। लेकिन बंसे की थान से अलग हुए पशु की दुर्दशा याद कर वह खामोश रहा और सिर नीचे गिरा खालों को पाँव-तले मसलने के लिए टाँगें और भी तेज़ी से चलाने लगा। लेकिन फोरमैन की एक-एक गाली उसके दिमाग में गोली की तरह लग रही थी। वह अंदर-ही-अंदर उबाल खा रहा था...।"[84]

समय के साथ-साथ स्थितियाँ भी बदलती हैं और लोगों में अपनी हालातों को सुधारने के लिए ही आक्रोश पनपता है। माधो के अन्याय और षडयंत्रों के विरुद्ध जब बस्ती वाले कोई पदक्षेप नहीं अपनाते तो गोविंदा अपने आपको रोक नहीं पाता

---

[83] इदन्नमम-पृ.182

[84] नरककुंड में बास-पृ.166

और कहता है-"गोविंदा को अब ताव आ गया। उसने जरा रोष में कहा-तो आपका मतलब है कि हम पर जो जुर्म हो रहा है, उसे चुपचाप सहते जाएँ। हम लोग उसके खरीदे हुए गुलाम हैं, माधो हमारा मालिक है, हम उसके खिलाफ काम करेंगे तो हमें वह मार डालेगा... उसकी सांस फूल गई, पूरे जोर से बोला-यह कभी नहीं हो सकता। आप जब तक चाहें तब तक सह सकते हैं, मैं यह सब नहीं सह सकता, आज रात मैं सारी बात कह दूँगा, साहब से जाकर। बर्दाश्त करने की भी एक हद होती है।"[85]

अपनी दयनीय स्थिति से छुटकारा पाने की आशा काली में आक्रोश का रूप धारण कर पनपती है। अपने विद्रोहात्मक स्वभाव के बारे में अपने साथियों को उत्तर देते काली कहता है-"शायद बदबू मेरे दिमाग में चढ़ गई है और छप्पड़ का पानी जहर बनकर मेरे शरीर में फैल गया है।"[86]

शराब पी कर अपनी अर्द्धचेतन अवस्था में किशने अपनी दिल की भड़ास निकालता है, जो बहुत दिनों से उसके अंदर उबल रही थी। क्योंकि चेतना में आ जाने पर अपनी आर्थिक व सामाजिक स्थिति को सामने रखकर वह कुछ भी करने या कहने की क्षमता नहीं रखता।

"फिर वह फोरमैन को गालियाँ देने लगा-"वह मेरे भरा को मार देगा। सारा दिन साला आप खाट पर बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ाता है और मेरे भरा को नमक-चूने के पानी में खड़ा रखता है, ला मुझे छूदी दे। मैं अभी उसका खून करने जाता हूँ।"[87]

आक्रोश की यह भावना सदेव अहिंसात्मक स्थिति को नहीं पैदा करती। वरन यह भावना लोगों को समस्याओं के समाधान की तरफ भी अग्रसर कराती है। बस्ती में माधो और चोरी समस्या का निवारण आक्रोश के इसी पक्ष के माध्यम से ही होता है। समस्या का विचार करने के दौरान बाबा सबको शांत करना चाहते थे, "पर उनमें

---

[85] नदी फिर लौट आई-पृ.82

[86] नरककुंड में बास-पृ.157

[87] नरककुंड में बास-पृ.202

से एक सांस लेते हुए सीना ताने हुए कहने लगा। दूसरों के जुर्म को हम कब तक सहेंगे, सहन सामने वाले के हौसले बुलंद करता है। बाबा, उसके टुकड़ों पर हम ठोकर मारते हैं, जब तक दम में दम है, हम सबसे निपट लेंगे। हमारी जवानी, मेहनत और कुर्बानी देश की आज़ादी के काम आई, इतनी छोटी-सी बात को हम हल नहीं कर सकेंगे?

तभी बाबा ने कहा तो आज ही रात साहब के क्वार्टर चलो...।"[88]

श्रमिकों का आक्रोश उन्हें सदैव सकारात्मक मार्ग पर ही अग्रसर करता रहा है। वैसे तो आक्रोश शब्द अपने आप में ही एक भिन्न वातावरण को ही प्रस्तुत करता है। इसमें उत्तेजना ही भरी रहती है। लेकिन समसामयिक परिप्रेक्ष्य से अलग देखा जाए तो श्रमिकों के पक्ष में इस शब्द की भूमिका और माईने कुछ अलग ही बैठते हैं। क्योंकि यह पूर्ण रूप से निःस्वार्थ पर एवं सर्वकल्याण की भावना से ही संबंध रखती है। इसमें व्यक्ति नहीं वरन समूह के हित को लक्ष्य बनाया जाता है।

2.7 विरोध एवं विद्रोह

फोरमैन के सम्मुख अपनी क्लिष्टता को प्रस्तुत करने के बाद कारखाने के सभी मजदूरों के अंदर एक तनाव-सा छा गया था। पहली बार अपने मालिक के विरोध दो वाक्य बोल पाने के साहस का असर वे उस वातावरण में महसूस कर पा रहे थे।

"कारखाने में काम-काज नित्यप्रति की तरह चल रहा था। लेकिन हर कोई जानता था कि प्रत्यक्ष रूप से सब कुछ सामान्य दिखाई देने के बावजूद वास्तव में ऐसा था नहीं। हर दिल में तनाव था। एक गाँठ बंधी हुई थी और इस बात का पता सिर्फ उस समय लगता था जब वे खींचकर साँस लेते थे और तनाव से छुटकारा पाने के लिए अकारण खाँस देते थे।"[89]

---

[88] नदी फिर लौट आई-पृ.83

[89] नरककुंड में बास-पृ.236

गाँव की आम सभा में धनदेब साहब और अन्य मछुआरों के साथ हो रहे पक्षपात और जुर्माना देने के संबंध में लाखन भरी सभा में धनदेव साहब और प्रधान जी के विरोध में खड़ा होकर अपनी बात प्रस्तुत करता है। "साबजी की यह गाँव आज भी इज्जत करता है, पर वह इसलिए कि वह उमरवाले हैं। जितना आदर भंटू मौस और हरखु चाचा का होता है उतना ही साबजी का भी, क्योंकि वे गाँव के पुरनिया हैं। लेकिन अगर वे यह सोचते हैं कि सभा को दो-चार पैसे ज्यादा देकर वे अपनी गलत हरकतों को भी सेवा-भाव में प्रमाणित करा लेंगे तो हम मान नहीं सकते।"[90]

न केवल साबजी की तानाशाही का बल्कि सभा के प्रधान जी के एक पक्षीय न्याय का विरोध करते हुए लखन कहता है-"नहीं, प्रधानजी, आदमी को सभा के सामने झुकना पड़ता है,सभा को आदमी के सामने नहीं। आप अपनी गरदन के साथ-साथ हम सभी को गरदन भी एक घमंडी धनवान के कदमों पर न झुकाएँ।"[91]

शिवदास के फसल पर जब जबरदस्ती मुंशीजी अपना कबजा करना चाहते हैं और उसे खेत के नज़दीक न जाने का आदेश देते हैं तो शिवदास उसका विरोध करता है। वह उस खेत और उसके उपजे फसल पर अपना अधिकार मानता है क्योंकि मेहनत भी उसीकी ही है। वह कहता है-"जाऊँगा मुंशीजी, शिवदास गरज उठा, जरूर जाऊँगा। हूँ, मेरी फसल लगी है, मैं जाऊँगा नहीं?"

"जरूर कहूँगा। खिलवाड़ है फसल काट लेना। मेरी जिंदगी का सवाल है-हुँ। " शिवदास क्रोध से काँपता, मुंशीजी की उपेक्षा करता बैठक से बाहर निकला और सीधे हवेली की ओर रवाना हुआ। जाते वक्त मुंशीजी को सलाम करना उसने जरूरी नहीं समझा।"[92]

यह बँधुआ शिवदास का पहला विरोध था अपने मालिक और मुंशी के अन्याय और अनैतिक आदेशों के प्रति।

---

[90] लहरों की बेटी-पृ.67
[91] लहरों की बेटी-पृ.68
[92] धारा के बीच से-पृ.17

यातनाओं को सहन करते-करते मनुष्य की चिंतनधारा में उसके विपरीत क्रिया की भावना भी जागृत होती है। जहाँ नियम होता है वहीं उसे तोड़ने की छटपटाहट भी स्वतः ही जन्म ले लेती है। मालिकों, मुंशिओं और साहूकारों के आदेशों को, नियमों व नियत-निर्धारण करनेवाली अनैतिक घटनाओं ने ही मजदूरों को उसका विरोध करने का साहस दिया।

यह विरोध पहले व्यक्तिगत रूप में होते हुए सामूहिक रूप धारण कर लेता है और लोग विद्रोह करने के लिए प्रतिबद्ध हो उठते हैं। विद्रोह करना वह स्थिति है जहाँ अन्यायपूर्ण घटना या कार्य के विपक्ष में क्रांति की भावना जागे और प्रयोगात्मक अवस्था में लोग उसको सफल बनाने की चेष्टा करें।

'बेदखल' उपन्यास में अनपढ़-गवार किसानों ने रेलवे वालों से जंग छेड़ दी कि या तो रेल सभी किसानों को बिना टिकट के ले कर जाएगी या नहीं चलेगी।

"फैजाबाद जंक्शन स्टेशन। एक हजार किसान औरत-मर्द रेल की पटरी पर लेटे हुए थे। गौरीशंकर मिश्र उन्हें वहीं डटे रहने के लिए ललकार रहे थे-जब तक रेल कर्मचारी बिना पैसे लिये तुम्हें घर न पहुँचाएँ, तब तक यहीं डटे रहो। ऊपर से रेल चली जाए, पुलिस गोली चलाए, तुम डरना नहीं। तुम अपना हक लेने आए हो। यह तुम्हारी रेल है, तुम्हारी मर्जी के बिना नहीं चल सकती। किसानों को तो कोई ऐसे शब्द बोलनेवाला चाहिए था। फिर तो वे पहाड़ की तरह डट गए। उन्होंने अपनी लाठियाँ बगल में और गठरियाँ सिर के नीचे रखीं और सुँधनी सूँघते हुए पटरी पर पसर गए। औरतों ने अपने बच्चों को सँभाला, छातियाँ उनके मुँह में डालीं और आँचल से उन्हें ढककर आराम से पटरी पर लेट गईं।"[93]

इस पैराग्राफ को पढ़ते हुए यह प्रश्न मन में आ सकता है कि क्या बिना टिकट के रेल में यात्रा करने की किसानों की माँग न्याय संगत और नैतिक थी? पर जो किसान साल भर दूसरों के खेतों पर इसलिए काम करता रहे ताकि पहले की लगान

[93] बेदखल-पृ.168

चुकाई जा सके तो उससे किसी प्रकार के उपद्रव की आशा न करना महापुरुषों की कामना करना पूर्ण रूप से न्यायसंगत नहीं है।

मजदूर वर्ग जिसके लिए सर्वहारा शब्द का प्रयोग किया गया और प्रगतिशीलता के नाम पर जो लड़ाई उसे सौंप दी गई, अंततः उसे वह लड़नी ही थी। न दैन्यं, न पलायनं। अपनी ही चेतना और जागरण के सहारे लड़कर ही इस वर्ग को अपने हित और शत्रु तथा अपनी स्वयं की पहचान प्राप्त होगी।

2.8 श्रमिकों का संगठित-रूप

श्रमिकों के संगठित-रूप के इस पक्ष में किसी भी संगठन की पैठ नहीं है। यह संगठित-रूप श्रमिकों द्वारा स्वतः प्रेरित है। इसमें एक सूत्र में बंधकर, मंत्रमुग्ध रूप से किसी एक प्रतिज्ञा या संकल्प को प्राप्त करने तथा उसकी तरफ अग्रसर होने का उद्देश्य है।

तालुकेदारों के विरुद्ध छिड़े आंदोलन में भाग लेने जा रहे किसानों एवं खेतिहर किसानों का संगठित साहस इस बात की पुष्टि करता है कि जब लक्ष्य प्राप्ति की लालसा मन में जागती है तब लोग अपने आप संगठित होते जाते हैं तथा उनमें मनोबल और साहस का संचरण होता है। इलाहाबाद के लिए किसान जत्था बनाकर चुपचाप निकर रहे थे। पर तालुकेदारों ने अपने लठैत गाँव-गाँव के रास्ते पर खड़ा कर दिया। पर किसानों को अपने लक्ष्य से हटा नहीं पाए। वे एकसूत्र में बंध कर आगे बढ़ते गए-"पहले तो उन्होंने किसानों पर फबतियाँ कसीं, फिर उन्हें उकसाया। पर किसान बिलकुल शांत बने रहे। तब वे डराने-धमकाने पर उतर आए-

"आना ससुरो लौटकर तो देखूँगा। खेत में पैर रखो तो हड्डी-पसली एक कर दूँगा। बाबा से कहना, वही खिलाएंगे।"

लेकिन किसान चुपचाप अपने रास्ते चलते रहे। शाम तक लगभग पाँच सौ किसान सत्तू-चबेना और आटा-दाल की पुटकियाँ बाँधे, कंधे पर फटी-पुरानी

पिछौरी डाले और सिर पर चिथड़े का गमछा लपेटे बाबा के आश्रम पर जमा हो गए।"[94]

किसानों को उनके इसी अग्रगामी मार्ग पर बीरापुर के जिलेदार कामतासिंह भी डरा, धमका कर रोकना चाहते हैं। पर असफल होते हैं।

परिस्थितियों की मार और चपेट में बुरी तरह फसे इस संघर्षशील जन को अब इस बात की सुध पूरी तर से हो चुकी है कि जिस तरह एक साथ मिलकर, काम कर, अपनी हाड़तोड़ मेहनत से इन्होंने औद्योगिक नामक 'क्रांति' को सफल बनाया था उसी प्रकार संगठित रूप से आगे आकर अपनी हालत को भी सुधार सकते हैं। इसलिए काली अपने सार्थियों को एकत्रित रूप का महत्व बताता है-

"जलसे में हम सब इकट्ठे बैठेंगे। क्यों काली?" किरपू ने सलाह दी।

"हाँ भाजी, इकट्ठे ही बैठना चाहिए। सेठजी मिल गए तो सब मिलकर बात कर लेंगे। वैसे भी इकट्ठे में बरकत होती है।"[95]

माधो के पकड़े जाने के बाद बस्ती के लोगों को डराया-धमकाया जाता है। सताया और परेशान किया जाता है। पर इस बार बस्ती के लोग डरते या दबते नहीं हैं वरन इन गुंडों को जवाब देते हैं। बतला देते हैं कि उनके एकत्रित साहस के सम्मुख किसी की जड़ें जम नहीं सकतीं।

"बस्ती के लोगों पर उन्होंने घेरा भी डालना चाहता, पर हम लोग सभी तैयार हो चुके थे, पता नहीं, सभी मज़दूरों में कहाँ से अक्ल आ गई, सभी लाठी ले-लेकर निकल पड़े, कहते जाते, इस बार दबे तो हमेशा दबना पड़ेगा, हर की जबान पर यही बात थी, बात ही बात में सारी बस्ती इकट्ठी हो गयी, बस्ती का इकट्ठा होना था कि, ये लोग फिर नहीं ठहरे, परती की तरफ भागते दिखे।"[96]

मजदूरों और किसानों के संगठित रूप के प्रयास के कारण जवाहर लाल नेहरू को अवध के छोटे-छोटे गाँव तक आना पड़ा था।

[94] बेदखल-पृ.101
[95] नरककुंड में बास-पृ.227
[96] नदी फिर लौट आई-पृ.113

"किसान सिर्फ भाषण सुनकर लौटने के लिए राजी नहीं थे। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि यदि वे खाली हाथ वापस गए तो तालुकेदारों के आदमी उन्हें नहीं छोड़ेंगे। अब तक वहाँ की सारी रियासतों में यह बात फैल चुकी होगी और सभी तालुकेदार एकजुट होकर उन्हें सबक सिखाने की राह देख रहे होंगे। किसानों ने नेहरू को घेरा। वे उनसे साथ चलने के लिए मिन्नतें करने लगे। नेहरू अपनी मुश्किलें बयान करते रहे पर उन्होंने एक न सुनी। आखिर नेहरू को दो तीन दिन बाद आने का वायदा करना पड़ा।"[97]

इस प्रकार बिना किसी संगठन के पैठ एवं नेतृत्व के सहारे केवल संगठित रूप में आगे आकर भी मजदूरों ने अपने अधिकारों एवं सहूलतों को पाने का प्रयास किया है।

2.9 हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक मार्ग

भारतीय श्रमिकों के बीच हिंसात्मक भावना के बढ़ने की पूर्वपीठिका भी इसी तरह ही थी। हिंसा से उनका तात्पर्य कभी भी किसी को, चाहे वह उन पर जुर्म ढहाने वाला पूँजीपति ही क्यों न हो, हानि पहुँचाने का नहीं था। पर परिस्थितियों के सामने उन्हें भी अपने घुटने टेकने पड़े। क्योंकि हर वस्तु की एक सीमा निर्धारित है। और जब सीमा को लांघ दिया जाता है तब अनहोनी को भी संभाव्य का रूप धारण करना पड़ता है। क्रैशर पर काम करनेवाले राउतों को जब यह पता चलता है कि अभिलाख सिंह ही वह व्यक्ति हे जो उनकी स्त्रियों को बेच आता है तब उनसे रहा नहीं जाता और वे आक्रमण कर देते हैं-"अंधेर करने का फल अभिलाख को आज चखा देंगे अच्छी तरह। दिखा देंगे कि हारते-हारते हम कितने बलवान हो गये हैं कि सुलगते-सुलगते कितनी आग जमा हो गयी है उनकी छाती में। कितने व्याकुल □ील-गिद्ध फड़फड़ा रहे हैं उनकी छाती में।"[98]

[97] बेदखल-पृ.110
[98] इदन्नमम-पृ.285

इसी प्रकार जब अभिलाख मंदाकिनी पर भूखे भेड़िये की तरह टूट पड़ता हे और उसे पीटने का प्रयास करता है तब भी वहाँ जमी भीड़ से रहा नहीं जाता। "फिर क्या था गाँव की भीड़ ने करेंट के तारों से लेकर जितने ऊर्जा-पुर्जा हाथ आये, जितने नट-बोल्टों तक पहुँच हो सकी, सबके सब उखाड़ डाले, खोल डाले, तोड़ डाले और उजाड़ डाला उसका डेरा। उसकी रखेल लीला राउतिन को मनमाने तौर पर पीटा।"[99]

किसान आंदोलन के दौरान भी ऐसे ही गाँव के अनपढ़, गरीब और पिछड़े हुए किसान और खेतिहर मज़दूरों ने बिना किसी कारण डाका डालना शुरू नहीं किया था-"जब बिसार पर भी बीज देने के लिए महाजन तैयार न हो और चारों तरफ सूखे की स्थिति हो तथा इसके साथ लगान न दे पाने के कारण बेदखली होने का डर, तब किसी भी मनुष्य से साधूपन या महात्म्य की आशा रखना ही मूर्खता है। "देखा-देखी झुंड बढ़ने लगे। एक गाँव से दूसरे, दूसरे से तीसरे। इलाके में गाड़-बाखरवाले जितने महाजन थे, सबकी साँसे फूलने लगीं। चारों ओर तहलका मच गया।"[100]

लूटपाट की सफलताओं ने किसानों और खेतिहर मजदूरों के आत्मविश्वास को बढ़ाता गया और वे अधिक से अधिक आक्रामक होते गये। व्यवस्था के लिए भी उन्हें संभालना कष्टकर होता जा रहा था। "लेकिन जब तक किसी कार्रवाई का निर्णय हो, किसान पूरीतरह निरंकुश हो गए। तालुकेदारों की सीट में खड़ी फसलें काटने लगे। उनके अहलकारों, कारिंदों की पिटाई करने लगे। कानून-व्यवस्था एकदम भंग हो गई। रियासत के अहलकारों कीकौन कहे, पुलिस और सरकारी हाकिमों की भी गाँवों में घुसने की हिम्मत नहीं रही।"[101]

सोनपूरा के राउतों ने तो एकदम जंग ही छेड़ दिया अभिलेख सिंह पर। सीधा आक्रमण।

---

[99] इदन्नमम-पृ.

[100] बेदखल-पृ.137

[101] बेदखल-पृ.137

"शिकार के धनी राउत, भील, सहरिया एक होकर चढ़ बैठे। चढ़ बैठे अभिलाख के कमरे पर। चढ़ बैठे लीला के ऊपर। गजब हो गया। गेंती, धन, कुदाली, फरुआ ले-लेकर आ गये। कर दिया आक्रमण। .... तूफान उमड़कर किवाड़ों तक आ पहुँचा। छत और दिवार पर चढ़ गये राउत। अभिलाख की आँखें फटी रह गयीं। बाहर से चीखने चिल्लाने की आवाजें-"लागो पथरा। घोलो डीला। मारो धन। चलाओ गेंती। कतल कर दो हरामी का। फरुआ चलाओ रे...।"[102]

मज़दूरों के बीच बँटनेवाली जमीनों पर जबरदस्ती मंदिर निर्माण की तारीख और कार्यक्रमों का ऐलान किया जाता है तब सभी मज़दूर उत्तेजित हो उठते हैं। वे इतने उत्तेजित हो उठते हैं कि बालचंद के माइक पर आ कर उनका मजाक उड़ाने पर, यह जानते हुए भी कि वह अधपगला है लोग अपना आपा खो देते हैं और उसकी पिटाई करते हैं। "बस! इतना सुनना था कि कुछ लोग भड़क गए और लपके ताँगे की तरफ और कामरेड के रोकते-रोकते उन्होंने ताँगे में से बालचंद और ऐलान करनेवाले को बाहर निकाल लिया और कामरेड पहुँचे-पहुँचे की उनकी पिटाई कर दी। माइक के तार तोड़ दिए और ऐलान का पर्चा चिंदी-चिंदी करके फेंक दिया।"[103]

कामरेड लक्ष्मण माधव भी मज़दूरों में इसी भावना को संचरित करता है कि हिंसा सदैव दोयम दर्जे का ही मार्ग होती है लेकिन जब पानी सर को डुबोने लगे तब हाथ-पैर मार कर तैरना ही पड़ता है।

"हम मारपीट, मुकदमेबाजी करने नहीं आए। हमें मंदिर से कोई विरोध नहीं है। गरीब को रोजगार चाहिए। रेजिस्ट्रेशन रद्द कर दो, हम अभी यहाँ से चले जाएँगे। लेकिन होश में रहें पूँजीपति। अगर हम पर गुंडों से हमला करवाया गया तो हम भी पीठ दिखाकर नहीं भागेंगे। अपनी तरफ से आगे होकर हिंसा नहीं होगी। इस बात का हम सबको ध्यान रखना है। कोई भद्दी बात हमारी तरफ से नहीं होनी

---

[102] इदन्नमम-पृ.285

[103] बीच में विनय-पृ.233

चाहिए। भड़काव में नहीं आना है। लेकिन कायरों की तरह डरकर भागना भी नहीं है। ईंट फेंके कोई तो उसका जवाब पत्थर से देना है।"[104]

मज़दूरों में हिंसा की या आक्रमण करने की भावना केवल अपने अधिकारों भर को पा लेने की इच्छा में नहीं पनपी। वरन अन्याय, असहायता, गरीबी एवं पाशविकता की अनेक निकृष्टतम चपेड़ों को खाने के बाद जगी है। पर वह भी क्षणिक, परिस्थितिवश।"[105]

मज़दूरों के हिंसात्मक मार्ग को अपना लेने की इन सभी स्थितियों का विश्लेषण किया जाए तो निष्कर्ष यही निकलता है कि अहिंसात्मक मार्ग की विफलताओं ने ही इन मजबूर मज़दूरों को विकल्पहीन बना दिया है। इस मार्ग के चुनाव के लिए। सूखे की स्थिति में बिसार पर भी अनाज न मिलने पर किसानों को निराशा ही हाथ लगती है तब वे लूट-पाट करने की सोचते हैं।

हमेशा से चुप रहनेवाले राउतों ने अभिलाख पर क्यों आक्रमण किया? क्योंकि अब तक अभिलाख के नाम से डरनेवाले राउतों से वह असहनीय बनता गया कि जिसके लिए हाड़-गोड तोड़ मेहनत करें वही उनके घरों की इज्जत को बाजारमें बेच आए। हिंसा को रातों-रात ही नहीं अपनाया था इन राउतों ने।

अहिंसात्मक मनोभावों, मानसिकता एवं कार्यों की विफलता ने ही हर बार श्रमिकों में हिंसा को चुनने के लिए बाध्य किया है। क्योंकि अधिकतर क्षेत्र में यही मार्ग पूँजीपतियों को शीघ्र ही समझ में आता प्रतीत हुआ है और सफलता, क्षणिक ही सही हाथ लगी है।

3. श्रमिक जीवन और जीविका

चयनित उपन्यासों में प्रस्तुत विभिन्न जीविकाओं और उससे संबंधित श्रमिकों के बारे में संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है-

---

[104] बीच में विनय-पृ.235

[105] इदन्नमम-पृ.285

खेतिहर मजदूर

'खेतिहर' का शाब्दिक अर्थ है 'किसान, कृषक'। खेतिहर मजदूर वे कहलाए गए जो खेतों में जो श्रमिक की तरह काम करते हैं। भारत की ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था के अनुसार खेत या जमीन का मूल मालिक कृषक ही रहता था। लेकिन कर और लगान वसूली की प्रथा के बाद तालुकेदार और राजा या जमींदारों ने मिलकर मूल भूस्वामी कृषक को उसकी ही जमीन से अलग करना प्रारंभ कर दिया। कृषक का निजी खेत रैयत पर दिया जाने लगा और कृषक, कृषक बने रहने के बावजूद उसी जमीन पर दिहाड़ी पर काम करने लगा। कालांतर में और प्रगति के नाम पर शहरीकरण, मशीनीकरण और लघु उद्योगों के स्थान पर फैक्ट्रियों की स्थापना ने भी किसानों को खेतिहर मजदूर बनने में मजबूर किया। किसान अपनी जमीन से छूटता गया। "किसानों के भूमिहीन होने की प्रक्रिया शुरू हुई और भूमिपुत्र फैक्ट्रियों में काम करने लगे या रिक्शा चलाने लगे या अनेक सेठों के पास बंबई-मद्रास भागने लगे या छोटी-मोटी दुकानें खोलकर बैठने लगे।"[106]

शुरुआती दौर में खेतिहर मज़दूरों का वर्ग केवल भूमिहीन किसानों तक ही सीमित रहा। पर आज के परिप्रेक्ष्य में कोई भी स्वतंत्र श्रामिक खेतिहर मजदूर का काम कर रहा है। जो भी श्रमिक खेतों में खेती संबंधी काम या मजदूरी करता है वह खेतिहर मजदूर के अंतर्गत आता है। जैसे 'बेदखल' उपन्यास में सुचित जो मूलरूप से किसान है पर भूमिहीन बन जाने के कारण खेतिहर मजदूर बनता है। परंतु 'धारा के बीच से' उपन्यास का शिवदास मूल रूप से धोबी है। बेगार में जमीन मिल जाने के कारण वह खेती का काम करता है और इस वर्ग का मजदूर बन जाता है।

भारत के किसानों का खेतिहर मजदूर बनने की प्रक्रिया को इस प्रकार देखा जा सकता है-

[106] बीच में विनय-पृ.45

"और फिर किसानों की जिंदगी चलती रही। बस अब वे अपनी पीठ पर एक पिरामिडी ढाँचा ढो रहे थे जिसने उनका खून चूस लिया था। ज़मीन की अब उन्हें मात्र जानकारी थी जिसके साथ उनका आत्मिक संबंध बना हुआ था, पर अब ज़मीन पर उनका कोई हक न था। एक बार फिर कवि मुकुंदराम के गीतों के शब्द सच लगने लगे-"किसानों की पुकार कौन सुनता है?" उन्होंने सब कुछ खो दिया-यहाँ तक कि हल, बैल और बीज भी। ज़मीन खोकर अब वे भूमिहीन खेतिहर मजदूर बन गये थे। और ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती गयी। 1882 ई. की जनगणना में इनकी संख्या 70,20,000 थी। 1921 ई. की जनगणना में यह संख्या बढ़कर 2,10,00,000 हो गयी। 1931 ई. में इनकी संख्या 3,30,00,000 तक पहुँच गयी। इन आँकड़ों की व्याख्या से अर्थ लगाया गया कि उन दिनों किसानों का एक तिहाई हिस्सा खेतिहर मज़दूर था।"[107]

अपनी ही जमीन से विस्थापन और हाथ आई बेरोजगारी इन्हें कंगाली और खतरनाक गरीबी के सिवा कुछ और नहीं दे पाई। सूचित मूल रूप से भूमिधारी किसान था, उसकी जमीन को तालुकेदार लगान की आड़ में छीन लेते हैं और वह मजदूरी के लिए भी तरसता रहता है। वह किसान से एक साधारण श्रमिक बन जाता है और गरीब भी।

"कुर्मियान के और लोगों की तरह उसके पास भी फूस की झोंपड़ी थी जिसे हर दूसरे साल गन्ने की पत्ती मँगाकर छाना पड़ता था। हाँड़ी में खाना पकता था जिसे रोज धोकर रस्सी के सहारे छप्पर में टाँग दिया जाता था। हाँड़ी फूट जाती तो बहुत मुश्किल से कुम्हार के यहाँ से दूसरी आती थी। पत्तल और कठौती में खाना खाया जाता था। सस्ते का एक लोटा था जिसमें रखने से मट्ठा-दही खराब हो जाता था। कुम्हार के यहाँ से आई मेटियों और भूरकों से किसी तरह काम चलता था। माँ और बीवी के पास सिर्फ एक-एक मोटिया धोती थी। वे टुकड़े पहनकर नहाती थीं और धोती सूखने के लिए डाल देती थीं। जब तक वह सूखती, टुकड़ा पहने झोपड़े

[107] भारत में बंधुआ मजदूर-पृ.21

में घुसी बैठी रहती थी। दिन-भर खेत में खटने के बाद अवध के अधिकांश किसानों को यही इतना मयस्सर था। अगर सूचित के घर का एक-एक सामान कुड़क हो जाता तो भी भगान की भरपाई न हो पाती।"[108]

इस हद तक गरीब किसान आखिर करे भी तो क्या? अंत में परिस्थिति से हार कर उसे मजदूर बनना ही पड़ता था। अपने जन्मजात कौशल को ताक में लगाकर वह कभी इस के खेत में तो कभी उसके खेत में मजदूरी कर जीवन निर्वाह करता है। वास्तव में यह जमींदारों और अंग्रेज़ सरकार की नीति बन गयी थी कि इन किसानों से सर्वस्व छीन कर उन्हें इसी अवस्था में रखा जाए ताकि उनका शासन चल पाए।

सरकार के प्रतिनिधि-तालुकेदारों और जमींदारों को यह भी आदेश दिया जाता था कि किसी-न-किसी प्रकार से हर किसान से लगान की आड़ में उससे उसकी जमीन छीन ली जाए और बेगार के लिए मजबूर किया जाए।

"पंचम के पास पट्टे पर लिये डेढ़-दो बीघे खेत और पचास-साठ सूअर थे जिनका बाल और तेल बेचकर वह समय पर लगान भर दिया करता था। फिर भी उसे आबादी से बाहर करने, सूअरों को ताल की ओर न निकलने देने और खेत से बेदखल करने का डर दिखाकर बेगार के लिए मजबूर किया जाता था।"[109]

पराधीनता और बेगारी के सभी बंधनों के बावजूद जब खेतिहर मज़दूर अपने बलबूते पर कुछ प्रगति कर अपनी हालत सुधार लेता है तब ये पूँजीपति वर्ग अपने पैंतरे बदल कर उनको अन्य तरीकों से शोषण करना आरंभ कर देते हैं।

"यह जोबा गन्ने की धाँधली तो बहुत पहले से ꠀल रही है। मिल-मालिकों और जमींदारों की बहुत बड़ी साजिश है यह, जिससे वे छोटे किसानों को पनपने और विकसित होने से रोकना चाहते हैं। गन्ने की गुलियाँ इन्हीं लोगों ने छोटे

[108] बेदखल-पृ.21
[109] बेदखल-पृ.191

किसानों को रोपने के लिए बेचीं और अब वही लोग यह कह रहे हैं कि उनमें रस और शक्कर कम निकलता है।"[110]

पूँजीपति इस प्रकार के खेल खेलते हैं जिससे किसान अपने मूल से ही उखड़ जाए। हानि और अर्थाभाव इन्हें मालिकों के सामने अपना सर्वस्व गिरवी रखने के लिए बाध्य कर दे। इतना ही नहीं पूँजीपति अपने दुगने लाभ के लिए कभी-कभी बेगार में दिए गए जमीन पर से खेतिहर मजदूर को हटा कर जमीन उनसे छीन लेते हैं। उसे दुगने दर पर बेच कर अपना लाभ बनाते हैं।

अपने मालिक, तालुकेदार और जमींदारों की इस प्रकार के षडयंत्रों के कारण, शोषण से अस्त-व्यस्त और करों या लगान के बोझ के तले दबे भूमिहीन किसान, अपने खेतिहर मजदूर की भूमिका से भी मुक्ति पाना चाहता है और आर्थिक समानता के स्तर पर अपना जीवन जीना □हता है।

"बेगार से मुक्ति-ओह, कितना अच्छा दिन होगा, जब उसकी मेहनत की कीमत उसे मिलेगी। वह सर उठाकर एक आज़ाद इंसान की तरह चलेगा। यह गुलामी की बेड़ी टूट जाएगी ओर वह समता की हवा में साँस लेगा पिंजरे से छूटे पक्षी की तरह।"[111]

परंतु स्वाधीनता और मुक्ति का यह स्वप्न पूरा नहीं हो पाता। वास्तविक जीवन में यह खेतिहर मजदूर भविष्य की अनिश्चितता के कारण बेगार बने रहने के लिए अभिशप्त बन जाते हैं। दरअसल खेतिहर मजदूरों की मुक्ति इस आशा और उद्योगों की स्थापना स्वतंत्र श्रमिकों के वर्ग को जन्म देती है।

मनिया लुहार

'आसमान झुक रहा है' उपन्यास में मनिया लुहार एक विशिष्ट पात्र है। लुहार का काम उसका पुश्तैनी काम तो जरूर है लेकिन अनेक समस्याओं और परिस्थिति में बदलाव के कारण वह भी रोज की दिहाड़ी और कमाई पर ही निर्भर रहता है।

[110] और पसीना बहता रहा-पृ.126
[111] धारा के बीच से-पृ.19

इससे भी इसका पूरा काम नहीं चलता। न वह अपनी जरूरतों को पूरा कर सकता है और न ही अपनी स्त्री की इच्छाओं को।

पहाड़ी गाँव में अपनी जीविका चलाने के लिए उसे जंगल से बगोट (चीड़ के सूखे वक्कल) इकट्ठे करने पड़ते हैं। पर सरकार के आदेश से जंगल में पेड़ों को काटने पर अंकुश लगा दिया जाता है। इस कारण अब मनिया को अपने काम को चालू रखने की चिंता सताए जा रही है। क्योंकि इसकी समस्या को न तो कोई समझेगा और न ही कोई उसके समाधान के लिए आगे बढ़ेगा।अपने जीवन निर्वाह के एकमात्र स्रोत से हाथ धो बैठने का डर उसे खाता रहता है। अगर काम सही समय पर नहीं हुआ तो ठाकुरों का क्रोध उसे कहीं का नहीं छोड़ेगा। वह जान से भी जाएगा और जीविका से भी।

"बगोट नहीं मिले तो सारा काम ठप्प पड़ जाएगा। गाँव के सभी ठाकुरों के औजार बिना काढ़े रह जाएंगे। काम का बोझ भी बढ़ता जाएगा। प्रधानज्यू ने कहा है कि जल्दी ही गाँव में पाठशाला बनाने का काम शुरू होगा। इमरात की शौ धरी जाएगी। उसका काम भी उसे ही करना होगा। कुदाला, गैंदी, छेंणी और संभल न जाने कितने औजार हर रोज के तैयार करने होंगे। काम में जरा भी देरी होगी तो पधानज्यू बिगड़ जाएंगे। हाथ पर का काम बंद करवा देंगे। फिर पूरे गाँव में चर्चा बन जाएगी। कोई भी ठाकुर अपनी ददतियाँ नहीं भेजेगा। यह सोचते ही मनिया को चिंता डसने लगी थी।"[112]

रोजगार और भविष्य की अनिश्चितता, साधनों की कमी तथा ठाकुरों का डर मनिया में अजीब से चिड़चिड़ेपन को जन्म देता है। इसके साथ ही निराशा और अनिश्चितता उन्हें सताती रहती है।

पुराने का मोह और नये का लोभ मनिया को कौंधने लगता है। वह लुहारगिरी छोड़ कर इसका काम करना चाहता है। क्योंकि अब इस पेशे में गाँव का कोई व्यक्ति

[112] आसमान झुक रहा है-पृ.155

पैसा नहीं देता। काम के बदले लोग अनाज देता है और वह भी बहुत कम। लेकिन मनिया की पत्नी उसे ऐसा करने से रोकती है। वह मनिया को समझाती है-

"चाहे जितना भी दें, न देने की तो बात ही नहीं है। पुश्तैनी काम है, यों ही उसे बंद नहीं किया जा सकता। हाँ, कोई दूसरा काम चल पड़े तो बात जमती भी थी।"[113]

आर्थिक विषमता, अभाव, परिस्थितियों की विपरीतता और आत्मविश्वास तथा मनोबल की कमी ने जहाँ गृह उद्योगों या पुश्तैनी काम करनेवाले कारीगरों को उनसे उनका पेशा छोड़ने के लिए मजबूर कर रहा था वहीं यह उद्योग कारखानों और बड़ी फैक्टरियों का काम बनवा गया। लुहारों को मजबूरन अपना धंधा छोड़ इन कारखानों में श्रमिक बनना पड़ा। आज जो कुछ गिने चुने लुहार बचे हैं, वे भारत के सबसे गरीब जनता में गिने जाते हैं।

चमड़े कारखाने के श्रमिक

चमड़ा कारखाना में कार्यरत श्रमिकों की दुर्दशा असहनीय होती है। पशुओं के कच्चे खालों को धो-सुखा कर उससे चमड़ा बनाने की पूरी प्रक्रिया में खालें नहीं बल्कि इन श्रमिकों का शरीर और स्वास्थ्य गलता है। ये श्रमिक फूटकर श्रमिक होते हैं, जो किसी भी जीविका को अपनाते हैं पर बेरोजगारी और अन्य जगह पर काम न मिलने का डर इन्हें इस नरककुंड में रहने के लिए बाध्य करता है। यह काम बहुत ही जोखिम भर होने के बावजूद भी कालि इसे करने के लिए मानसिक और शारीरिक स्तर पर राजी हो जाता है। चमड़े के कारखानों में खालों के साथ करने के खतरनाक पहलु पर चेतावनी देने के अंदाज में किशना बोलता है-

"हम लोगों की जन्म से मरण तक सारी जिंदगी ही गंदगी में गुजरती है। रुके हुए सड़ाँध-भरे पानी में मच्छर-मक्खियों की तरह हम भी पलते हैं। चार दिन भीं-भीं करके मर-खप जाते हैं।" माँझा ने दार्शनिक भाव से कहा।"[114]

---

[113] आसमान झुक रहा है-पृ.157

[114] नरककुंड में बास-पृ.128

मनुष्य से पशु बनकर काम करने के बाद भी इन्हें कम मजदूरी मिलती है, जिससे एक दिन का पूरा खर्चा उठाना भी मुश्किल हो जाता है। लेकिन गरीबी की मार इतनी रहती है कि इसके पास किसी भी काम को करने या न करने का विकल्प नहीं रहता।

"बारह घंटे काम के बाद अच्छे सधे हुए कारीगर को रुपए-सवा-डेढ़ मिलते हैं। नौसिखिए को तो रुपए-बारह-आने से ज्यादा नहीं मिलेगा। क्या खाएगा और क्या इलाज पर लगाएगा।

... लेकिन जब तेरी गरीबी की ओर झोंकता हूँ तो इतनी उजरत भी बहुत लगती है।"[115] अधिक मजदूरी, कम कमाई और अस्वास्थ्यकर परिवेश के कारण इन श्रमिकों के शरीर पर खुजली, पौं और खीस जैसी बीमारियाँ लगी रहती थीं। फिर भी उनका काम रुकता नहीं था। खुजली और अन्य बीमारियाँ उनके जीवन का एक अंग और भाग्य बने जा रहे हैं।

"देख काली, खुजली अब हमारे जीवन का हिस्सा बन चुकी है। हम दोनों एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते। यह हमारा मुकद्दर है। दोनों एक ही साथ खत्म होंगे।"

"कैसे?" काली ने दिलचस्पी से पूछा।

"मड़ियों में जाकर। सूखी लकड़ी के दहक्ते भाँभड़ में जलाते हुए राख बनकर मेरे शरीर के साथ खुजली के सब जख्म भी खत्म हो जाएँगे और दोनों को एक दूसरे से छुट्टी मिल जाएगी।"[116]

कारखाने मालिकों का श्रमिकों के प्रति उदासीनता, सरकारी सहूलतों को मुहैया न कराना और उन्हें डरा-दबाकर काम लेना इन सबका प्रतिफलन श्रमिकों के शरीर और जीवन पर पड़ता है। इसी कारखाने के एक मजे हुए कारीगर की दशा सुनाते हुए बंसा काली को बताता है-

---

[115] नरककुंड में बास-पृ.132

[116] नरककुंड में बास-पृ.162

"नंजु ने दस साल इस कारखाने में काम किया है। जब खुजली के कारण उसके हाथ-पाँव के जख्म नासूर बन गए और नमक या चूने के पानी को छूते ही वह चीखने लगता तो फोरमैन और मुंशी ने उसे काम से जवाब दे दिया। अब वह खारीशजदा कुत्ते की तरह अपने-आपको खुजाता है और कोसता हुआ मुँह छिपा अँधेरी कोठरी में पड़ा रहता है।"[117]

इस भयानक बीमारी से छुटकारा पाने के लिए चमड़े कारखाने के श्रमिक शराब और नशीले द्रव्यों का सहारा लेते हैं। लेकिन नशा भी उन्हें इस पीड़ा से मुक्त नहीं करा पाता।

"आधी रात तक नशा टूट जाने पर इसकी आँख खुलेगी। फिर यह आधा घड़ा पानी पिएगा ताकि अंदर की आग बुझा सके। इसके बाद मच्छर-मक्खी पुरानी खुजली को जगा देंगे और इसको खारिश को दौरा पड़ेगा। फिर यह आँगन में घूमता हुआ अपने-आपको जोर-जोर से खुजाएगा।"

अपने थोड़े-से लाभ के लिए मुंशी और मालिक मिल कर सरकारी योजनाओं को केवल किताबी बनाकर रख देते हैं और श्रमिकों को चर्बी, खून और खालों के दलदल में रीसते हुए काम करने और मरने के लिए छोड़ देते हैं। "... इंस्पैक्टर भी दो-तीन चक्कर लगा गया है। एक बार कह भी गया कि कानून के अनुसार यहाँ एक ट्यूबवेल लगेगा। घुटनों तक लंबे रबड़ के बूट और कुहनी तक लंबे दस्ताने मिलेंगे। दालान में बिजली के पंखे होंगे। उसने बातों-बातों में इस कारखाने को स्वर्ग बना दिया था लेकिन हुआ कुछ भी नहीं।"[118]

इन सारी उपेक्षाओं, सीमित और अनिश्चित आमदनी तथा असहनीय गरीबी के पश्चात् भी जब कोई श्रमिक अपना पेट काटकर जब अपनी बीमारी का इलाज करना चाहे तो वह करने के लिए भी वह स्वतंत्र नहीं होता।

अपने जीवन और जीविका पर टिप्पणी करते हुए नाथी कहता है-

---

[117] नरककुंड में बास-पृ.163

[118] नरककुंड में बास-पृ.155

"फिर वह अपने बाजू पर खुजली के कारण बने फोड़े को आहिस्ता-से छू उस पर फूँक मारते हुए बोला, "साले पशु आप तो सारी जिंदगी नर्क ही भोगते हैं लेकिन मरकर हमारे लिए और भी बड़ा नर्क छोड़ जाते हैं।"[119]

चमड़े के कारखाने में काम करनेवाले श्रमिकों का जीवन इसी प्रकार पशुओं से भी बदतर होता है। यह इनके जीवन का सबसे बड़ा दुःख बन जाता है। कारखाने और जीविका को अपने जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा सौंपने के बाद न तो इन्हें भविष्य की कोई आशा प्राप्त होती है और न ही समाज में इनकी कोई स्थापना या पहचान ही। कारखाने में खालों के साथ काम करते-करते उनकी बदबू इनके शरीर का एक अंग बन जाता है। इस बदबू से तंग आकर जब एक दुकानदार अपना नाक-भौहें सिकुड़ता है तो बंसा उसे वास्तविकता का बोध कराते हुए कहता है-

"क्या करें, काम ही ऐसा है। आप लोगों को नंगे पाँव चलने से बचाने के लिए किसी को तो बदबू और गंदगी बरदाश्त करनी ही पड़ेगी।"[120]

चमड़े कारखाने में काम करनेवाले श्रमिक की सामाजिक भावना इस प्रकार की है। लेकिन समाज उन्हें बदले में क्या देता है। इस हिसाब के झमेले में श्रमिक अपना दिमाग नहीं खपाता। यह एक तरह से अच्छा भी है, क्योंकि जिस दिन यह हो जाएगा, तो शायद दुनिया का आधा काम ठप्प पड़ जाएगा। मशीनों के बावजूद हम श्रमिकों की कीमत को तो झुठला नहीं सकते।

लाख बनानेवाले - 'जुलूस वाला आदमी' उपन्यास में ही केवल एक जगह लाख बनानेवाले कारीगरों और मज़दूरों की कला, संघर्ष और संघर्ष के परिणाम की चर्चा हुई है। एक समय में लाख से चमड़ा बना कर उसे अलंकार आदि में प्रयोग कर जमींदार लाखों में कमाते थे।

---

[119] नरककुंड में बास-पृ.156
[120] नरककुंड में बास-पृ.159

"जवाहरात की तरह चमकती कनियों से बना चमपड़ा सचमुच हीरे कमाता था। विलायत की बड़ी-बड़ी रंगरोगम कंपनियाँ इसकी खरीददार होती और इनके सट्टे या व्यापार में कलकत्ता, बंबई के सेठ रात-रात भर में लखपति या भिखारी बन सकते।"[121]

लाख से कीमती चमड़ा बनाने का काम बड़े ही मेहनत का और सूक्ष्म हुआ करता था। लेकिन लोगों को काम के अनुसार मज़दूरी उतनी नहीं मिलती थी। यूनियत का सहारा लेकर इन मज़दूरों और कारीगरों ने हड़ताल की थी और अपनी मज़दूरी बढ़ायी थी।

"मज़दूरों को इस कमाई के लिए बारह-बारह घंटा खटना पड़ता। दो से □ार आने तक मज़दूरी मिलती थी। बच्चों और मज़दूरियों को तो सिर्फ चार से छः पैसे रो□। यूनियन उन्हीं दिनों बनी थी। उसने बारह घंटे से आठ घंटे या दिन करवाया और चार से आठ आने रोज तक मजदूरी बढ़वायी।"[122]

□मड़ा बनाने का यह काम एक तरह से भारत के अनेक गृह उद्योगों में से एक था और बहुतों की तरह इस उद्योग के साथ भी यही हुआ कि कारखाने बंद होने लगे और लोगों को अपने इस पुश्तैनी काम से हाथ धोना पड़ा। उपनिवेशवाद और बाजारवाद के चलते यह काम भी विदेशों में शुरू हो गया। लाख से हीरे पैसा चमड़ा बनाने वाली सैकड़ों हाथ बेरोजगार बनती गईं।

"तभी कारखाने बंद होने लगे। विदेशों में नकली रेसिन और लाख बनने लगा। कुछउसी तरह जैसे नकली नील बनाने के बाद नील के कारखाने बंद हुए थे। नील कारखाने बंद होने से किसानों को नील की जबरिया खेती से मुक्ति मिली थी, लेकिन लाख के कारखाने बंद होने से किसी को मुक्ति नहीं मिली। बेरोजगारी ही फैली थी। कारखानों के साथ यूनियनें भी तितर-बितर हो गयीं।"[123]

---

[121] जुलूस वाला आदमी-पृ.199
[122] जुलूस वाला आदमी-पृ.199
[123] जुलूस वाला आदमी-पृ.200

यह बेरोजगारी और कारखानों का बंद होना ही इन कारीगरों को श्रमिक बनाया गया। अपने हुनर से एक वनस्पति का रूप परिवर्तित कर देश और विदेश के अर्थतंत्र में लाखों रुपयों का अवदान देकर भी यह कारीगर श्रमिक बनने के लिए परिस्थिति और व्यवस्था द्वारा विवश कर दिए जाते हैं।

कपासिए-कपासिओं के संघर्षपूर्ण, अभावग्रस्त और दयनीय जीवन और जीविका का एक छोटा-सा पर मर्मभेदी वर्ण 'बीच में विनय' उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

"सर्दियाँ शुरू हो गई थीं और चारों तरफ के गाँवों से कपास की गाड़ियाँ आनी शुरू हो गई थीं। सड़क पर कपासियों से लदी बैलगाड़ियाँ-ट्रैक्टरों का ताँता लगा हुआ था। रात में ही ये लोग काँकरिया के अहाते में लाइन लगाकर खड़े हो जाएँगे। रात-भर बीड़ी-चिलम, आग और गप्पों के सहारे जागते रहेंगे। सुबह इनके कपासिए को तपाकर, टटोलकर, ग्रेडिंग कर तोला-खरीदा जाएगा अथवा लौटा दिया जाएगा। फिर कहीं और... कहीं और किसी भी भाव गाड़ी बेचकर दिन-भर सौदा सुलफ में बिता तीसरे पहर खाना होकर कल शाम तक ये लोग अपने गाँव पहुँचेंगे।"[124]

आर्थिक रूप से बुरी तरह पिछड़े कपासियों की यही दुरावस्था थी। चाहे माल जितने में भी बिके, अधिक से अधिक भाव या कम से कम भाव, उन्हें किसी भी स्थिति में अपना कपास बेचना होता था। क्योंकि उसे बेचे बगैर वे अपने दूसरे दिन का खर्चा पूरी नहीं कर पाते थे। इनसे भी अधिक संघर्षपूर्ण जीवन उन लोगों का था उड़ते हुए कपासों को पकड़ना अपनी जीविका बनाए हुए थे और अपने अनिश्चित भविष्य नहीं बल्कि वर्तमान को सुधारने का अथक परिश्रम करते थे।

"चलती गाड़ी-ट्रैक्टर से कपासिए के छोटे-छोटे गोले गिरते रहते हैं... छोटी-छोटी लड़कियाँ उन्हें बीन रही हैं। रात-भर बीनेंगी। यही उनकी आजीविका है इसी में वे जिंदा हैं।"[125]

[124] बीच में विनय-पृ.39
[125] बीच में विनय-पृ.39

इसके साथ ही चुड़िहारों, बेलनहारियों, मछुआरों, घरों में काम करनेवाली नौकरानियों, महानगर निगम के अस्थायी सफाई कर्मचारियों, खटाल के श्रमिकों, गन्ने के खेतों में काम कर रहे श्रमिकों के जीवन और जीविका की चर्चा भिन्न-भिन्न उपन्यासों में हुई हैं। मशीनीकरण के इस दौर में शिल्पकारों व इन जीविकाधारी श्रमिकों का अस्तित्व संकट के घेर में है।

पूँजीपतियों के शोषण और श्रमिकों के संघर्ष को मार्क्सवाद ने वर्ग-संघर्ष का उपनाम दिया। वर्ग-संघर्ष एक सतत प्रक्रिया है, जो सदैव चलती रहती है। पूँजी की शक्ति के आधार पर पूँजीपति वर्ग हर संभव ढंग से श्रमिकों का शोषण करता रहता है। लेकिन जैसा कि कहा गया है कि पूँजीवाद अपने विनाश का नींव खुद ही खोदता है, अतः श्रमिकों में शोषण को सहन करने का बाँध टूटता है। वर्तमान परिस्थितियों को परखा जाए तो यह तथ्य सामने उभरकर आता है कि पूँजीवादी सभ्यता ने शोषण के नए तारीकों को अपना लिया है। अब यह आकर्षण के माया-जाल के माध्यम से श्रमिकों का शोषण कर रहा है। रोजगार देने की आशा बाँध वह किसानों को अपनी जमीनों से खदेड़ रहा है। भारतीय बाज़ार में आई.टी.सी. (ITC) का घुसपैट इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। उपभोक्तावादी संस्कृति की चमक श्रमिक वर्ग को भी आकर्षित कर रही है। आर्थिक दुरावस्था, अशिक्षा, जागरूकता की कमी के साथ आज का श्रमिक वर्ग ही शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने से विमुख है। उसे अपने अधिकारों और सहूलतों की प्राप्ति से अधिक अपने घर में चूल्हों के बंद पड़ जाने की फिक्र अधिक है। संगठनों का उदसीन व्यवहार और प्रबंधन तथा राजनीतिक शक्तियों की रणनीति इस संदर्भ में अपनी अवसरवादी भूमिका का निर्वाह कर ही रही है।

* * *

तृतीय अध्याय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन:संगठन की भूमिका

1. संगठन का ज्ञान और निर्माण
2. संगठन-शक्ति और श्रमिक हड़ताल
3. संगठन का विरोध
4. संगठन का नकारात्मक पक्ष
5. प्रभावी मजदूर नेता

तृतीय अध्याय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन:संगठन की भूमिका

परिवर्तन और संघर्ष की जमीन एकता पर ही आधारित रहती है। एकता की अनुपस्थिति में कोई भी संग्राम अपनी चरम सीमा पर पहुँच नहीं पाता। भारत का श्रमिक वर्ग जब अपने उद्‌भव और विकास के शैशवावस्था में था तब उसमें एकता और सहकारिता की घोर कमी थी। वह भाषा, धर्म, क्षेत्रीयता आदि के नाम पर बँटा हुआ था। ऊपर से गरीबी और बेरोजगारी अलग ही उस पर अपना प्रभाव दिखा रही थी। वह अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरा हुआ रहने के बावजूद भी उनकी प्रस्तुतीकरण से कतराता था। इसी समय वैश्विक धरातल के अनेक परिवर्तन, रूस क्रांति की सफलता और मार्क्सवादी विचारधाराओं ने 'श्रमिक संगठन' नामक नवीन संकल्पना को पूरे विश्व के सामने प्रस्तुत किया। संगठन एक शक्ति है, जो विभिन्नताओं में बँटे श्रमिकों को एक ही धर्म 'श्रम' के आधार पर जोड़ता और संगठित करता है। यही वह ऊर्जा है जो पिछड़ेपन को हटाकर साहस की भावना को संचारित कर पाने का सामर्थ्य रखता है। भारतीय श्रमिक आंदोलन की सफलता का सर्वाधिक श्रेय इन्हीं संगठनों को ही है।

संगठन की शक्ति जहाँ श्रमिकों को चेतनासंपन्न और जागरूक बनाती है, वहीं आधुनिकता के निकट भी आती है। समय की माँग और गति से उसका परिचय करा, उसके अनुसार अपने विवेक को जीवित रखते हुए आगे बढ़ना सिखाती है। राजनैतिक लाभ और महत्वाकांक्षाओं से इतर जो संगठन केवल श्रमिकों के उद्धार

और प्रगति के लिए काम करता है उसकी शक्ति उसके समर्पित श्रमिक ही बनते हैं। संगठन केवल श्रमिकों को संघर्ष कराना ही नहीं सिखाता वरन उनके सामाजिक कर्तव्यों से भी परिचित कराता है। उनके सर्वांग विकास पर ध्यान देता है।

संगठन श्रमिकों और प्रबंधन तथा सरकार के बीच का सेतु बनता है। वह उनकी समस्याओं को प्रस्तुत करने के साथ-साथ उनके समाधान की संभावनाओं को भी जोड़ता है। मूल रूप से संगठन श्रमिकों का वह मिलित स्वर है जो उनकी अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन पूँजीवाद की वर्चस्व और रणनीतियों के आगे संगठन बिकता गया। सत्ताधिकार के मोह में वह सिपाही से बिचौलिया बन गया। अपने सबसे सशक्त अस्त्र हड़ताल को वह अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करने लगा और कई हद तक पूँजीपतियों के हाथों बेच भी दिया। अनेक सकारात्मक शक्तियों को ले कर विकसित हुआ यह संगठन आज निष्क्रियता के दल-दल में फँसता □ा रहा है। एक समय में इसके प्रति आशावान दृष्टिकोण रखता श्रमिक ही आज इससे विमुख हो रहा है। संगठन की भूमिका, उसके निर्माण, उसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पक्षों को उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करना इस अध्याय का उद्देश्य है।

1. संगठन का ज्ञान और निर्माण

भारतीय मजदूर वर्ग एक ऐसा वर्ग था जिसे ब्रिटिश सरकार के सौ से अधिक वर्षों की गुलामी और अत्याचार के बाद सीधे औद्योगीकरण और शहरीकरण की गोद में फेंका गया था। गरीबी और पिछड़ापन उन्हें भाग्य और परिस्थिति दोनों ने ही उपहार स्वरूप भेंट दिया था। गुलामी का डर उनके मनमस्तिष्क में गहरे कुंडली जमा चुका था। जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा की विभिन्नता और अशिक्षा उन्हें बाहरी दुनिया से पूर्ण रूप से अलग रख रही थी। इसके साथ ही इस प्रकार की बाधाएँ इन्हें अपनी अवस्था को प्रस्तुत करने की स्वाधीनता और स्वेच्छा को छीन रही थी। यह सारे पक्ष उन अनेक कारणों में से मुख्य हैं जो भारतीय श्रमिक वर्ग को संगठित होने के लिए बाध्य कर रहे थे। इन्हें हम प्राथमिक कारणों और बाधाओं के रूप में

स्वीकार कर सकते हैं। परंतु जो कारण था और लोगों में एकत्रित होने के भय को हर क्षण जीवित करता रहता था, वह था बेरोजगारी। मज़दूर वर्ग के लिए यह सबसे बड़ी चिंता का विषय था कि अगर वे संगठित होते हैं और मालिकों के अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं तो सर्वप्रथम उन्हें अपनी थोड़ी बहुत कमाई के माध्यमों से भी हाथ धोना पड़ेगा। और इसके प्रतिफल में जीवन जीना ही उनके लिए अभिशाप बन जाएगा। लेकिन जैसा कि मार्क्स ने कहा है कि पूँजीवाद स्वयं अपने लिए खतरा पैदा करता है। धीरे-धीरे जब अत्याचार और अन्याय सहन-सीमा से अधिक बढ़ जाता है, तब मुक्ति की इच्छा कहीं-न-कहीं छटपटाने लगती है। श्रमिकों के बीच से ही लोग आगे आने लगे। उन्हें संगठित होने के महत्व को समझाने लगे। संगठन संबंधी अज्ञानता को दूर कर उन्हें संगठन निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित करते। संगठनों का निर्माण श्रमिकों के बीच पहले बैठकी, पंचायत या धार्मिक पाठ आदि से शुरू होता है और धीरे-धीरे अपने दायित्व और कार्य की ओर अग्रसारित होता है।

श्रमिकों में संगठन की अज्ञानता और संगठित होने के डर ने उन्हें पीड़ित बनाए रखा और साथ ही उनके जीवन में किसी भी प्रकार की सुधार या प्रगति नहीं थी।

"परकाश ने इसी बात पर जोर देते हुए कहा था कि जब तक सभी मजदूर एकसूत्र में नहीं बँध जाते तब तक उनके जीवन में कोई सुधार नहीं आ सकता।"[1]

मज़दूरों का यह असंगठित रूप पूँजीपतियों की शक्ति और साहस को बढ़ाता था। वे अच्छी तरह से जानते थे कि चाहे कितना भी अन्याय हो, कितनी भी यातना हो सर्वहारा वर्ग उनके कार्य क्षेत्र को छोड़ कर नहीं जाएँगे।

"जब तक तुम पूरे देश के मज़दूरों को एक साथ नहीं कर लेते, तब तक अपने को मालिकों से अधिक ताकतवर नहीं मान सकते। जब तक मजदूरों के किसी एक जुटाव से निकाल आवाज़ देश-भर में नहीं गूँज जाता और सभी लोग उसे

[1] और पसीना बहता रहा-पृ.17

सुनकर दौड़ नहीं आते, तब तक अपने आपको पूँजीपतियों से शक्तिशाली समझने की भूल नहीं करनी चाहिए।"[2]

मज़दूरों में व्याप्त गरीबी और अभाव ने उन्हें शक्तिहीन बना दिया था। न उनमें किसी प्रकार का विवेक काम कर रहा था और न ही वे अपनी ताकत का प्रयोग करना चाहते थे।

"... लेकिन इतना तो समझो वो गरीब व्यक्ति दीन भी हो जाता है और निर्बल भी। जुझारू क्षमता होने के कारण संतोष भी। ये लोग लड़ने-मरने का साहस गँवा बैठे हैं, बस जीना चाहते हैं किसी भी तरह।"[3]

इस कारण लोगों को संगठित करने से पहले उनके मन में घर कर बैठे अनेक संशय और डर को दूर करना आवश्यक था। डॉ.क्यूरे हरि को समझाते हुए कहते हैं-"वे जिस तरह पड़े होते हैं वहाँ से उन्हें यह विश्वास देकर खड़ा करना और चलने के लिए तैयार करना कभी-कभी बहुत कठिन होता है। मज़दूरों को आजीवन-संगठित करते समय यह जान लेना आवश्यक है। ... कल की बात है, पंडित सहदेव बता रहा था कि दक्षिणी प्रांत के कुछ आयोजनकर्ता मज़दूरों की झिझक और असहयोग के कारण बेहद निराश हैं। तुम दोनों को सबसे पहले मज़दूरों के भीतर बैठे हुए भय को मिटाना होगा।"[4]

परंतु समय के साथ, परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप, श्रमिक वर्ग अपनी विवशताओं को दूर फेंक, अपनी अवस्था को समझ, उसके सुधार के लिए आगे बढ़ता है, एकजुट होता है। लोग अपनी विभिन्नताओं को दूर कर आगे बढ़ते हैं, एकता के साथ, मित्रता के साथ। यही एकता ही संगठन की समझ और निर्माण की बुनियाद बनता है।

"यही समझाती है बार-बार, बिखरोगे तो टूट जाओगे, हार जाओगे। मित्रता बाहर से नहीं, भीतर से पैदा होती है, उजली लकीर की तरह ज्योतिवान। मन

---

[2] और पसीना बहता रहा-पृ.135
[3] इदन्नमम-पृ.182
[4] और पसीना बहता रहा-पृ.66

विशाल और बृहद बनता है मित्र-भावना से। जीवन के ऊबड़-खाबड़ रास्ते स्वयं सुगम होते जाते हैं, सहयोग से, संगठन से।"[5]

इस कारण लोग एक-दूसरे से जुड़ते जाते हैं। अब वे समझ रहे हैं संगठन की आवश्यकता को। उसके निर्माण की तरफ एक आशावान दृष्टि रख रहे हैं।

"मजूर उसे समझ रहे हैं, समझने के लिए उस ओर बढ़ रहे हैं, यह तो अच्छी बात है। फिर यह लोग जो एक संगठन की ओर बढ़ते जा रहे हैं, अब तक के सहे अत्याचारों, शोषण की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप।"[6]

बाबा रामचंद्र भी किसानों को उनकी दयनीय स्थिति से अवगत करते हुए उन्हें एक होने के लिए कहते हैं। क्योंकि यह एकता ही उन्हें उनके दुखों और यातनाओं से उबार सकती है। इन सताए हुए दुखियारों के लिए कोई कुछ तब तक नहीं कर सकता जब तक वे स्वयं संगठित न हों। वे किसानों को समझाते हैं-

"सरकार को लगान से ज्यादा-से-ज्यादा आमदनी इष्ट है। मालगुजारी बढ़ने से सरकार को भी फायदा है। उसका एक हिस्सा उसे भी मिलता है। वह किसानों का साथ क्यों देगी? आप लोग निरक्षर हो भोले-भाले हो। आप में एकता नहीं, दृढ़ता नहीं, धन नहीं, शक्ति नहीं। आप क्यों करोगे? पटवारी,अथिन, गिरदावल, जिलेदार, सिपाही, महाजन सब आपको ही चूसते हैं।"[7]

बाबा उन्हें संगठन निर्माण का आह्वान देते हैं-"जब तक आप में एकता नहीं होगी, संगठन नहीं होगा, कुछ नहीं हो सकता। आप सच्चे दिल से लगकर संघ-शक्ति पैदा करो। उसी में तन, मन, धन लगा दो।"[8]

क्योंकि किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सबसे बड़ा साधन होता है लोगों की इच्छा-शक्ति। उस कार्य के लिए समर्पण और एकाग्र भावना। इसके बिना कोई भी कार्य, और वह भी ऐसा जो एक विशाल वर्ग से जुड़ा हुआ हो, को सफल

[5] इदन्नमम-पृ.231
[6] नदी फिर लौट आई-पृ.60
[7] बेदखल-पृ.74
[8] बेदखल-पृ.74

बनाना सहज नहीं बन पाता। द्वारिका कक्का इसी संदर्भ में कहते हैं-"शरीर से, जन से, पइसा-टका से कहते हैं न कि तन-मन-धन से जुटता है संगठन और तब ही होता है सफल।"[9]

हरि जब मूसा की सहातया से संगठन बनाने का प्रस्ताव रखता है, तब मूसा उससे इस 'संगठन' के अर्थ और उद्देश्य को समझना चाहता है। हरि उसे बड़े ही सहज ढंग से धर्म का उदारण दे कर समझाता है-

"पर मज़दूरों की यह जमात बनाकर करोगे क्या?"

"तुम्हारी जो जमात है, उससे तुम क्या करते हो?"

"उससे तो हम मजहब की बातें करते हैं। एक-दूसरे के दुख-सुख में हिस्सा लेते हैं। बच्चों को पढ़ाते हैं और..."

"बस, मज़दूरों की जमात का मकसद भी यही होगा-मजदूरों का हित, उनके दुख-सुख में भाग लेना, उनकी मदद करना, उन्हें संगठित करना।"[10]

मजदूर वर्ग जब अपने प्रारंभिक पड़ाव में इन संगठनों का निर्माण करते थे, तो लोग इसे गहराई के साथ नहीं अपनाते थे। उन्हें लगता था कि यह संगठन शायद कुछ ही क्षणों का ढोंग हो। पर जब राष्ट्र-निर्माण करने में अपने श्रम को होम देनेवाले आगे आते हैं, तब उनके मनोबल को नकारा नहीं जा सकता। मंद ही सही पर गति अवश्य होती है।

"हमने मजदूर संघ बना लिया है।"

"मजदूर संघ बना लिया है... मतलब।"

"हम इसका, दो-तीन दिनों में पंजीकरण कराने भी जा रहे हैं।"

"कितने लोग..."

"हमने आठ सदस्यों से संघ की नींव डाली थी। पर अब हमारी बही में पंद्रह नाम हैं।"

---

[9] इदन्नमम-पृ.207

[10] और पसीना बहता रहा-पृ.54

"पगलों के?"

"नहीं भैया। साहस करके विरोध करनेवालों के।"[11]

किसी भी मजदूर संगठन की असली ताकत उसके सदस्य होते हैं। संगठन में जितने अधिक सदस्यों की उपस्थित होती है उसका कार्य उतने ही सुचारू ढंग से □लता है। मजदूरों का मनोबल भी बढ़ता है।

"तुमने तो यह सुना ही होगा कि हमने एक यूनियन बनाई है। मजदूरों की अपनी यूनियन। हमारे इस संघ में जितने अधिक सदस्य होंगे, उतनी ही अधिक होगी हमारी ताकत। हम चाहते हैं कि तुम भी उसके सदस्य बन जाओ।"[12]

हरि ग्राबियल को संगठन की महत्ता और उसकी सदस्यता को समझाते हुए कहता है-

"जबरदस्ती नहीं है। हम सभी लोगों को सोचने का मौका दे रहे हैं। अगर आज हमारी एक दमदार यूनियन होती तो गास्तों को इस तरह बेबसी की हालत में नहीं रहना पड़ता।"[13] संगठन की उपस्थिति मजदूरों में एक साहस पैदा करती है, अपनी समस्याओं के विरुद्ध आवाज़ उठाने में। इसकी सामूहिक शक्ति सदैव एक-दूसरे को सहायता करने के लिए तैयार रहती है। संख्या-बाहुल्य और जागरूक संगठन अपना कर्तव्य स्वयं निभाती है। उसे किसी एक विशिष्ट व्यक्ति पर निर्भर नहीं होना पड़ता।

"बाबा ने महसूस किया, किसान सभा के संगठन ने धीरे-धीरे लोगों में सामूहिक जिम्मेदारी की भावना भर दी है जो मौका पड़ने पर अपने-आप सक्रिय हो उठती है। वे मुतमईन हुए कि संगठन की एक अलग चेतना विकसित हो रही है, जो अपने वजूद के लिए किसी व्यक्ति पर निर्भर नहीं है।"[14]

---

[11] और पसीना बहता रहा-पृ.57

[12] और पसीना बहता रहा-पृ.97

[13] ओर पसीना बहता रहा-पृ.98

[14] बेदखल-पृ.197

यूनियन की उपस्थिति, उसके कार्य और आवश्यकता को अनुभव कर लोग स्वयं ही उसमें जुड़ना चाहते हैं। कारखाने में मालिकों के बढ़ते अन्याय को न सहन कर मजदूर संगठन में शामिल होने का निर्णय लेते हैं। ताकि उनकी समस्याओं का निदान हो पाएऔर उन्हें शोषण से मुक्ति मिले।

"आजकल हम कारखाने में काम करनेवालों के साथ भी बड़ी ज्यादती होने लगी है। ... उस स्वाभाविक भूल के लिए रोलो को काम से निकाल दिया गया। पिछले सप्ताह दो मज़दूरों को लात मारी गई। हमसे इधर कुछ दिनों से दो घंटे अधिक काम करवाया जा रहा है। हम सभी ने बात की है और तय हुआ है कि हम भी यूनियन में भर्ती हों।"[15]

यही समय की माँग थी और आज भी है कि श्रमिक बड़ी तादाद में एक हों। एक-दूसरे से जुड़ें, संगठन का निर्माण करें। नहीं तो पूँजीपति वर्ग इस प्रकार उनका शोषण करता रहेगा। साजिश कर उन्हें अपने लक्ष्य से हटाता रहेगा। अगर मजदूर संघ से जुड़ने में पीछे रहेंगे तो आंदोलन ठप्प हो जाएगा। क्योंकि इस आंदोलन को सबसे अधिक आवश्यकता श्रमिकों की संयुक्त-शक्ति की है। और जब श्रमिक इस संयुक्त शक्ति में अपना योगदान देने आता है तब उसे समर्पण के भाव को अपनाना पड़ता है, ताकि सफलता उसके हाथों में हो। रूदे के निराश किसानों को संगठित होने का आह्वान देते हुए बाबा रामचंद्र कहते हैं-

"सभा आपकी है, जो कुछ होगा, आप ही के लिए होगा। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। सच्चा संगठन बनाना है तो आपको यह चिंता छोड़ देनी चाहिए कि हमारे पीछे घर का काम कैसे चलेगा। या आगे चलकर हमें क्या मिलेगा। या लोग क्या कहेंगे। वे हँसेंगे, निंदा करेंगे या वाहवाही करेंगे। यदि यह चिंता लगी है तो संगठन कच्चा रहेगा।"[16]

---

[15] और पसीना बहता रहा-पृ.182

[16] बेदखल-पृ.93

ट्रेड-यूनियन के इतिहास को देखा जाए तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मजदूरों की अवस्था में परिवर्तन तब तक नहीं आ पाया था जब तक लोग एक दूसरे के साथ संगठित रूप से कुछ करने की मनसा नहीं बना रहे थे। एकता की शक्ति का ज्ञान उन्हें शनैः शनैः ही हुआ। □ब एक ही कारखाने में, एक ही काम के लिए एकजुट होकर वे बड़े से बड़े उत्पाद का उत्पादन कर सकते हैं तो एक साथ आगे आकर, एक दूसरे से हाथ मिलाकर अपने हालातों को भी सुधार सकते हैं। इस सचेतना का श्रमिकों में स्थापित होने में निसंदेह बहुत समय लगा लेकिन जब स्थान ग्रहण करने लगा तो बलवान और उत्साह की लहरों के साथ। श्रमिक यह समझने लगे कि बिखराव उन्हें सअफल ही बनाए रखेगा। और एकता की शक्ति किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखती। यह कार्य और प्रयासों का प्रतिफलन होती है। धीरे-धीरे संगठन का निर्माण होता जाता है और श्रमिक उससे जूझते जाते हैं। यह जुड़ाव उन्हें राजनैतिक शक्ति को प्राप्तकरने तक का साहस और जोश प्रदान करता है।

2. संगठन-शक्ति और श्रमिक हड़ताल

संगठन की शक्ति होती है उसके सदस्य। श्रमिक एकजुट होकर संगठन को उसका अस्तित्व प्रदान करते हैं और समूह के तौर पर संगठन उनके लिए काम करते हैं। संगठन की शक्ति होती है उसके श्रमिक-सदस्यों की एकता, मनोबल और सर्वोपरि संगठन पर विश्वास और आस्था। किसी भी कारखाने, मिल या उद्योग में संगठन का कार्य और मुख्य दायित्व यही होता है कि वह श्रमिकों की उन्नति, कार्यक्षेत्र में प्रगति के लिए काम करे ताकि वे एक बेहतर जीवन निर्वाह करने के अधिकारी बनें। संगठन के कार्यक्रमों और सक्रियता का लक्ष्य मज़दूरों को उनके कार्य के अनुसार पर्याप्त मजदूरी दिलाना, रोजगार और काम करने के लिए एक बेहतर और सुरक्षित स्थिति प्रदान करना, मालिकों और श्रमिकों में अच्छे संपर्क और व्यवहार को बढ़ावा देना तथा श्रमिकों को अन्याय से बचाना। इस प्रकार की सक्रियता ही श्रमिकों को संगठन की शक्ति का ज्ञान प्रायोगिक रूप में देती है और श्रमिक उससे जुड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं। उद्योगों में बनाए गए मैनेजमेंट के

सदस्य भी संगठन की गतिविधियों से जुड़े रहते हैं ताकि उत्पादन का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे।

श्रमिकों के जीवन में अधिक से अधिक प्रगति लाने की चेष्टा करनेवाले और एक महत्वपूर्ण भूमिका रखनेवाली संस्था-संगठन-का यह भी लक्ष्य होता है कि वह श्रमिकों की योग्यता और शिल्प को बढ़ाने में उनकी मदद करे। बुरे समय पर उनकी हर संभव सहायता करे। यह संगठन की और श्रमिकों, दोनों की ही उपलब्धि है कि वे कार्यक्षेत्र में सहयोग और मैत्रीभाव से मिलजुलकर काम करने का वातावरण पैदा कर पाते हैं। श्रमिकों के बीच अशिक्षा और सांस्कृतिक विभिन्नताओं की दूरियों को लांघने का साहस देती है। श्रमिकों को आत्मनिर्भर बनाती है और उनके आत्मविश्वास को अधिक मजबूती देती है, जिस कारण वह किसी कारखाने का दबा हुआ या पिछड़ा हुआ श्रमिक न रहकर एक जागरूक और सचेत नागरिक बनने की चेष्टा करता है।

एक पंजीकृत संगठन ही अपने श्रमिकों की समस्याओं को बलपूर्वक प्रस्तुत कर सकता है। इसलिए हरि अपने और अपने साथियों की अदम्य चेष्टाओं से बने संघ का पंजीकरण जल्द से जल्द करा लेना चाहता है ताकि वह मालिकों से आत्मविश्वास और पूरे साहस के साथ अपनी समस्याओं को प्रस्तुत कर पाए।

"...संभव हुआ तो कल ही मजदूर संध का पंजीकरण करवा लेना, ताकि उसे मालिकों से बात करने का हक हासिल हो जाए। उसे यह भी बताया गया था कि मजदूरों का तनख्वाह से एक-दो दिन के पैसे बड़े मनमाने ढंग से काटे जा रहे हैं। कोई वजह बताने तक की जरूरत नहीं समझी जाती।"[17]

जिस प्रकार हरि श्रमिकों की चिंता करता है उसी प्रकार संघ के सदस्य भी हरि की सहायता करने आगे आते हैं। मालिकों के आदेश के कारण जब हरि और मूसा को कहीं भी काम नहीं मिलता तो उनके घर की हालत बिगड़ती जाती है। लेकिन तब

---

[17] और पसीना बहता रहा-पृ.102

संघ के मजदूरों को एकजुट किया जाता है और उनकी सहायता के लिए सभी आगे आते हैं।

"दोनों हमारी यूनियन के प्रधान और मंत्री हैं। सारे खतरों को झेलते हुए आज ऐसी हालत में पहुँच गएहैं कि इस छोटे से गाँव का गरीब से गरीब भी उस स्थिति में नहीं होगा। इसलिए हमारा यह फर्ज हो जाता है कि हम उनकी मदद करें। ... इसलिए हम ऐसा कर सकते हैं कि गाँव-भर के मजदूरों से तहसील करें और जब तक उनकी हालत में सुधार न आ जाए, हर सप्ताह उनके यहाँ अनाज पहुँचाते रहे।"[18]

संगठन के कार्य और संगठित भाव ही श्रमिकों में सहायता के विचार और जोश को परिचालित करता है। निर्धनता और अनेक समस्याओं के पश्चात श्रमिक और संगठन एक दूसरे की सहायता के लिए आगे आते हैं। पुलिस और कोठी मालिकों की अमानवीयता के कारण मारे गए ब्रज गोविंद और नूर मुहम्मद के गरीब परिवार की सहायता की जाती है।

"उसने जेब से पच्चीस रुपये निकालकर ब्रब गोविंद की पत्नी के हाथों में थमा दिए और फिर से उसी पिटे-पिटाए स्वर में बोला-

"मजदूरों की ओर से हमारी संस्था बस इतना ही कर पा रही है।"[19]

हरि और मूसा के प्रयत्नों और संगठन की एकता के कारण नूर मुहम्मद के परिवार को भी बहुत सहायता मिलती है-"मूसा के सहयोग से वह उसके दोनों बेटों में से एक को शहर में बनवारी भाई की चाय की दुकान में नौकरी दिला चुका था। तब से उन लोगों की हालत कुछ अच्छी थी वहाँ भी वह घंटे-भर रहा और उन्हें संयुक्त मजदूर युनियन की ओर से दी गई राशि दी।"[20]

अपने गाँव के अनपढ़-गरीब खेतिहर किसान और मजदूर, जो शहरी प्रगति से कुछ ज्यादा ही पिछड़े हुए थे उन्हें संगठन की शक्ति समझाते हुए मंदाकिनी

---

[18] और पसीना बहता रहा-पृ.202
[19] और पसीना बहता रहा-पृ.154
[20] और पसीना बहता रहा-पृ.154

बताती है-"महाराज जी कहते हैं संगठन में शक्ति होती है। मिलकर चलेंगे। फिर अपनी शर्तें धरेंगे।"[21]

मजदूरों की समस्याओं को प्रस्तुत करना, उनके समाधान के लिए यथा संभव प्रयत्न करना, उनके वेतन संबंधी अनियमितता में सुधार लाना आदि संगठन का और उसके निर्माण का मुख्य उद्देश्य होता है। मैनेजमेंट के साथ श्रमिकों की उपस्थिति या अनुपस्थिति में सीधे-सीधे इन सुधारों के लिए बात करने का दायित्व भी संगठन का ही है। लकिन जब सामूहिक सौदाकारी और समझौतेपूर्ण बातचीत के पश्चात भी मैनेजमेंट न संगठन की बात सुनता है और न ही श्रमिकों की समस्याओं को किसी भी तरह की प्रधानता या प्राथमिकता देता है तब संगठन को एक तीसरे मार्ग का अनुकरण करना पड़ता है। मैनेजमेंट के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए संगठन हड़ताल, घेराओं, तालाबंदी, कार्य-बहिष्कार आदि हथकंडों को अपनाता है। भारतीय श्रमिकों के इतिहास को देखा जाए तो शुरूआती हड़तालें श्रमिकों पर हो रहे शोषण, अत्याचार, अन्याय और सबसे प्रमुख वेतन न देना, बिना वजह वेतन काट लेना, अधिक कार्य और कम दिहाड़ी देना जैसे शोचनीय कारणों की वजह से किया जाता था। बोनस की माँग, आवास की सुविधा, जीवन-बीमा की माँग, बच्चों के लिए स्कूल का निर्माण, मजदूरों की निपुणता को बढ़ावा देना आदि-यह सारी माँगें भारतीय श्रमिकों के पक्ष में प्रगति और मशीनीकरण के प्रभाव के कारण कुछ देर से ही हड़तालों का कारण बनीं।

"हड़ताल! हड़ताल! हड़ताल!

आसपास के सभी गाँवों, बस्तियों तथा कोठियों से निकलते हुए मजदूर खाली हाथ इसी एक शब्द को बोलते-सुनते आते रहे। जमा होते रहे। कुछ अब भी डरे हुए थे, पर धीरे-धीरे बढ़ते हुजूम को देखकर निडर होते गए। मजदूरों ने

---

[21] इदन्नमम-पृ.198

आदेश का पूरा पालन किया था, सूर्योदय होते-होते फलाक-कारखाने के सामने हजार से ऊपर लोग जमा हो गए।"[22]

हड़ताल की समझ को और उसकी आवश्यकता को श्रमिकों के बीच फैलाना संगठनों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती होती है। मालिकों के अत्याचार और शोषण के तले डरे हुए, दबे हुए असहाय-गरीब वर्ग को निडर बना हड़ताल में शामिल करना कठिन कार्य लगता रहा, लेकिन जैसे-जैसे लोगों में एकता बढ़ती गई वे अपनी समस्याओं के सुधार के इस पथ को आत्मसात करते गए। इसकी आवश्यकता को पूर्ण परिपक्वता के साथ समझने लगे और धीरे-धीरे इसमें अपनी हिस्सेदारी को दाखिल करते रहे। श्रमिक-वर्ग ने आपस में ही एक-दूसरे को प्रोत्साहित किया ताकि उनकी शक्ति, उनकी एकता अधिक से अधिक मजबूत बने।

"आज हड़ताल है।"

"कया है?"

"हड़ताल। हड़ताल कर रहे हैं हम लोग। आज कोई मजदूर न तो खेतों में जाएगा और न ही कारखाने में। सब लोग यहीं जमा होंगे। तुम्हें भी हमारे साथ रहना होगा।"[23]

किसान आंदोलन के समय किसान सभाओं की सफलता को लेकर देश के बड़े-बड़े नेताओं को उसके सफल हो पाने पर किसी प्रकार का विश्वास नहीं होता था। लेकिन संगठित शक्ति और आपसी साहस किसानों को उस सभा की तरफ खींचता लाता गया।

"बाबा ने जिले जिले का दौरा किया था, किसानों का उत्साह और किसान सभा के काम में उनका भरोसा अपनी आँखों से देखा था। ....। शाम को उन्होंने किसान-सेवकों से गिनती कराई तो मालूम हुआ लगभग छह हज़ार किसान आ चुके हैं। दूसरे दिन आनेवालों की संख्या दस हज़ार तक पहुँच गई। तीसरे दिन तो करीब

[22] और पसीना बहता रहा-पृ.147

[23] और पसीना बहता रहा-पृ.147

तीस हज़ार किसान आए। अभी तीन दिन बाकी थे। अयोध्या के सारे मंदिर और धर्मशालाएँ भर गई थीं। किसान-सेवक दिन-रात इंतजाम में लगे थे। अब किसी को गिनती करने की भी सुधि नहीं रही।"[24]

श्रमिकों के बीच फैलता यह उत्साह और साहस ही संगठन कर्मियों और नेताओं को उनका प्राप्य प्रदान करती है। संगठन यह भरसक प्रयास करता है कि श्रमिकों का यह जोश बना रहे, वे अपने लक्ष्य से डगमगाएँ नहीं और अपनी लड़ाई स्वयं लड़ें। "हड़ताल का उमड़ता उत्साह लिए बारह सौ मजदूरों की वह संख्या महीने-भर में करीब-ढाई हजार हो चली थी। सभी ने अपने नेताओं की इस बात से मान लिया था कि हड़ताल फसल के मौसम में होनी चाहिए। लोगों को अवसर दिया गया था कि वे अपनी दृढ़ता को बनाए रखें और हौसला बुलंद रखें।"[25]

श्रमिकों के अधिकारों और प्रगति के लिए लड़नेवाले संगठन के समर्पित और निस्वार्थ पर भावना को देख कर ही सर्वहारा वर्ग इसमें अपनी उपस्थिति को प्रस्तुत कर पाता है। हड़ताल की तैयारी, उसका तिथि निर्धारण, हड़ताल के समय श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को संतुलित बनाए रखना, उन्हें पूर्ण सुरक्षा देना भी श्रमिकों-संगठनों का प्रमुख दायित्व होता है। मजदूरों की एकता, उत्साह और साहस संगठनों को इन दायित्वों का निर्वाह करने के लिए प्रोत्साहित करती है। गोविंद और शैलेश हड़ताल की तैयारियों के बारे में चर्चा करते हैं-"उसके लिए आप निश्चिंत रहें। हमने 'करो या मरो' का नारा दिया है। मज़दूर तो उतावले हो रहे हैं हड़ताल के लिए।

एक बात और-हड़ताल जाने कितने दिनों तक चलेगी, सिर्फ फंड पर निर्भर रहना ठीक नहीं। हमें बिलकुल गरीब मजदूरों और उनके परिवार के लिए अनाज का इंतजाम करना होगा।

---

[24] बेदखल-पृ.162

[25] और पसीना बहता रहा-पृ.138

वह काम भी हो रहा है कॉमरेड। मजदूरों में जिनके पास कुछ खेत हैं, उन्होंने सर्वहारा मजदूरों के लिए अनाज सुरक्षित रखा है। मेरा ख्याल है, मजदूर आधा पेट खाकर भी भरसक सुरक्षित खाद्य भंडार में हाथ नहीं लगाएँगे।"[26]

यह मजदूरों की एकता और संगठन-शक्ति के प्रयासों का ही परिणाम था कि लोग हड़ताल जैसी आपातकालीन स्थिति में भी बिना झिझक एक-दूसरे की सहायता करते हैं।

"मजदूरों को यह समझाया जा चुका था कि हड़ताल शुरू हो जाने पर उसकी अवधि का अनुमान लगा पाना कठिन होगा। क्योंकि जब तक मालिकों की ओर से उनकी शर्तों की मंजूरी नहीं होगी, हड़ताल चलती रहेगी। सदस्यों को खुद यह समझने का समय दिया गया था कि मजदूर संघ के पास अनाज और चंदे का होना □रूरी है, ताकि हड़ताल के दिनों में भूखे रहने की नौबत न आए। इस भारी जमावों के बाद मजदूरों ने यथाशक्ति अनाज और चंदा जमा करना शुरू कर दिया था।"[27]

संगठन की सक्रियताओं के साथ ही श्रमिकों की व्यक्तिगत प्रतिभागिता भी ब़□□ती है। मजदूर संगठन की योजनाओं को समझ रहे हैं और उद्देश्य की प्राप्ति की तरफ बढ़ते हैं। हड़ताल की तैयारियों के समय विभिन्न क्षेत्र के प्रतिनिधियों और अलग-अलग संगठन एक दूसरे का समर्थन और सहारा देने आगे आते हैं। हड़ताल के समय खाद्याभाव और पैसों के अभाव की चिंता गोविंद को परेशान करती है। पर दूसरे यूनियनवालों से सहायता की आशा और आश्वासन उसे साहस देती है और वह शैलेश से कहता है-

"ठीक है। कई मजदूर यूनियनों से मेरी बातचीत हुई है। उन्होंने आश्वासन दिया है कि हड़ताल शुरू होने पर वे खाद्य और पैसे से हमारी मदद करेंगे। तुम मजदूरों का हौसला बुलंद रखो, कामयाबी होकर रहेगी।"[28]

---

[26] धारा के बीच से-पृ.285

[27] और पसीना बहता रहा-पृ.138

[28] धारा के बीच से-पृ.285

हड़ताल के समय यूनियन को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि पूँजीपति वर्ग अपनी शक्ति का प्रयोग और षडयंत्रों की आड़ में कहीं किसी प्रकार का विघ्न न पैदा कर डाले। क्योंकि हड़ताल तभी होता है जब पूँजीपति श्रमिकों और संगठन द्वारा प्रस्तुत माँगों को ग्रहण नहीं करता। वह हर संभव प्रयास करता है कि हड़ताल की शक्ति, उसके श्रमिकों की एकता चूर-चूर हो जाए। वह नेताओं और प्रतिनिधियों के विरुद्ध श्रमिकों को भड़काने की चेष्टा करता है। उन्हें गिरफ्तार कराने का प्रयास भी करता है।

"एक बात और मजदूरों को नेतृत्व न मिले, इस उद्देश्य से हो सकता है कि हड़ताल शुरू होने के पहले ही हम गिरफ्तार कर लिए जाएँ। उस आकस्मिकता के लिए सभी मजदूरों को हड़ताल के उद्देश्य और उसके प्रोग्राम से भली भाँति परिचित हो जाना चाहिए ताकि हमारी अनुपरिस्थिति में वे हड़ताल जारी रखें। वैयक्तिक नेतृत्व के बदले हमें सामूहिक नेतृत्व पर भरोसा रखना चाहिए। ... इस प्रकार एक विशाल चेतना संपन्न मजदूर संगठन तैयार हो जाएगा, जिसमें किसी व्यक्ति नेता की उपस्थिति अनिवार्य नहीं होगी। नेता के नहीं रहने पर भी काम चालू रहेगा।"[29]

पूँजीपतियों की तरफ से इस प्रकार की अप्रत्याशित आशंकाओं की उम्मीद के कारण हरि अपने प्रतिनिधियों और डॉ.क्यूरो से अपनी रणनीति के बारे में जानकारी देते हुए कहता है-

"अब जबकि सभी कुछ वैसे ही हो रहा है जैसी हमने उम्मीद की थी तो मैं चाहूँगा कि जमींदारों और मिल-मालिकों को मौका न दिया जाए कि वे सचेत होकर मजदूरों के खिलाफ कोई कदम उठा सकें। यूनिते कोठी में जो अस्त-व्यस्तता अभी चल रही है, उसे ये मालिक लोग बहुत साधारण विरोध समझ बैठे हैं। मैं चाहूँगा कि ये लोग ऐसा ही समझते रहें और फिर एकाएक यह देखकर अवाक् रह जाएँ कि

[29] धारा के बीच से-पृ.285

दूसरे ही दिन पूरे इलाके के करीब ढाई हज़ार मजदूर और छोटे किसान एक साथ हड़ताल कर बैठे हैं।"[30]

श्रमिकों के मनोबल को, पूँजीपतियों के इस प्रकार की मनसा के सामने तटस्थ और मजबूत बनाए रखने के लिए संगठन अपने कार्यक्रमों का आयोजन भी उसी प्रकार करता है जिससे उसकी कोई भी सूचना पूँजीपतियों के पास न पहुँच पाए और वे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ें। हरि हड़ताल की अवधि और कार्यक्रमों का आयोजन कुछ ऐसे ही करना चाहता है कि हड़ताल आकस्मिक रूप से मालिकों को दहला दे और उन्हें किसी प्रकार की अड़चन पैदा करने का मौका भी न मिले।

"बस, अगले सप्ताह। लेकिन सारा निर्णय रात में लेकर दूसरे ही दिन हड़ताल। न कोई मजदूर खेतों में पहुँचे, न कारखाने में। गोरे और काले, दोनों पूँजीपतियों के पाँवों के नीचे से जमीन खिसक जानी चाहिए।"[31]

संगठन की शक्ति तभी प्रतिपादित होती है जब हड़ताल सफलतापूर्वक हो और उसका असर श्रमिकों के जीवन में प्रगति के रूप में परिलक्षित हो। केवल हड़ताल कर लेना या उसकी घोषण कर, अनेक श्रमिकों को उसमें शामिल कर एक जुलूस निकालना भर ही संगठन की शक्ति नहीं। बल्कि परिवर्तन की उपस्थिति और प्रगति का अनुभव ही उस शक्ति को स्थापित करता है।

चीनी कारखानों और मिल मालिकों के साथ एक लंबा और संघर्षपूर्ण हड़ताल करने के बाद मजदूरों को बहुत अधिक संतोषजनक न सही पर अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हुई थीं। हड़ताल का अन्त पूँजीपतियों के कारण एक नृशंस हत्याकांड में बदल गया था। पर इस हत्याकांड के लिए बैठे हूपर आयोग के कारण मजदूरों के जीवन में अनेक परिवर्तन आए थे।

"आयोग में बयाने देते समय हरि ने मजदूरों के वेतन में बीस प्रतिशत वृद्धि की माँग की थी। उसे स्वीकार न करते हुए भी आयोग ने जो दस प्रतिशत की वृद्धि

---

[30] और पसीना बहता रहा-पृ.142

[31] और पसीना बहता रहा-पृ.143

की थी, मजदूर उससे संतुष्ट थे। आयोग ने डॉ.क्यूरे की उस माँग को भी मंजूर किया था कि सड़े-गले तथा कीड़ों से भरे चावल की जगह बेहतर किस्म का चावल दिया जाए।"[32]

एस.ई.एस. के सरकारी अधिकारी अपने घरों के अनावश्यकीय सुरक्षा के लिए अनेक फैक्टरियों तक जाने वाले मजदूरों के एकमात्र और सहज रास्ते पर दिवार बनवा लेते हैं। इससे मजदूरों को मिलों का सफर पैदल पार करना पड़ता था और रात की ड्यूटी कर लौटती स्त्रियों के लिए असुरक्षित। लेकिन अन्ना साहब के साहस और श्रमिकों की एकता के कारण 'दीवार ढहाओ अभियान' जनांदोलन में परिवर्तित हो जाता है और सरकारी अधिकारियों को अपनी ज़िद से हटना पड़ता है।

"उन्होंने भांप लिया-उनकी ओर से जितनी बार दीवार खड़ी करने की कोशिश होगी, उतनी बार ढहाई जाएगी। दीवार के बिना वे अधिक सुरक्षित हैं। प्रतिशोध में मजदूरों की कुदाल ने उनके घरों का रुख कर लिया तो वे दिन-दहाड़े बिना छत के बैठे होंगे।"[33]

बाबा रामचंद्र के प्रयत्नों, किसानों की एकता और सक्रियता के कारण हुए किसान आंदोलन का ही यह परिणाम था कि किसानों और खेतीहर-मजदूरों में साहस और अन्याय के प्रति सचेतनता जाग उठी थी। "हाँ, काकी, अब तुम्हीं बताओ, कहीं सुनाई पड़ती है बेदखली? ... तालुकेदारों की तो छोड़ो, अब तो गोरी सरकार भी डरने लगी है उनसे। रेलगाड़ी का पहिया जाम कर दिया हम लोगों ने। सरकार ने झक मारके हमें अपने-अपने मुकाम पर पहुँचाया।"[34]

कभी-कभी इन हड़तालों और संगठन की पैठ इतनी अधिक होती है कि श्रमिकों को राजनैतिक हिस्सेदारी का भी अवसर प्राप्त होता है। मजदूरों के हड़ताल, उनकी कुर्बानी और संगठन के नेताओं के प्रयास का ही यह प्रतिफल था कि मजदूरों को विधान सभा में स्थान प्राप्त हुआ।

---

[32] और पसीना बहता रहा-पृ.154

[33] आवां-पृ.101

[34] बेदखल-पृ.175

"गन्ने के खेत-मजदूरों को कम से कम थोड़ी प्रतिष्ठा तो मिली। अब इन लोगों को यह छूट है कि हम मजदूरों के लिए बने विशेष विभाग से बातचीत जारी रख सकें। जिस औद्योगिक सभा के गठन की माँग आयोग ने की है, उससे भी हमें सहयोग मिल सकता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि आइंदा मजदूरों के दो प्रतिनिधि विधानसभा में मजदूरों का प्रतिनिधित्व कर सकेंगे।"[35]

हरि और उसके साथियों के प्रयास के कारण मज़दूरों को सरकार और कोठी मालिकों से और भी प्रकार की सुविधाएँ मुहैया कराया जाता है।

"हरि के हस्तक्षेप और दिलेरी का ही यह परिणाम रहा कि मूड़ी आयोग ने सरकार के सामने यह प्रस्ताव रखा कि मज़दूरों की अवकाश प्राप्ति पर उन्हें कोठी की ओर से अनुदान की व्यवस्था हो, उनके बच्चों के लिए स्कूलों में निःशुल्क भोजन का प्रबंध किया जाए। रिपोर्ट में यह भी माँग की गई कि बालिग मजदूर को मतदान का अधिकार दिया जाए और यह भी कहा गया कि निर्धारित समय से अधिक काम करने पर मजदूरों को अलग से पारिश्रकि मिले।"[36]

इन सभी सकारात्मक असर के बावजूद कभी-कभी हड़ताल, इसके प्रयास, गतिविधियाँ आदि विफल भी हो जाती हैं। पूँजीपतियों की साजिश, परिस्थिति की माँग या फिर नेताओं का स्वार्थ इस परिणाम के लिए उत्तरदायी हैं। अगर संगठन अपनी पूरी शक्ति और एकता से हड़ताल की योजना नहीं बना पाते तो उसका उलटा असर मज़दूरों पर पड़ता है। वे संगठन की शक्ति को स्वार्थी और मतलबी मान बैठते हैं।

"बाबा हम लोगों से हड़ताल करवा देते हैं, ये नेता लोग धूप में, बरसात में हमसे जो चाहे काम ले लेते हैं, भीड़ करवा लेते हैं, जुलूस निकलवा देते हैं, नारे लगवा देते हैं, और आखिर में ऊपर से ले-दे कर चुप हो जाते हैं, काम लेते हैं, मजा मारते खुद हैं, भाषण देंगे गरीबी का भूखमरी का अन्याय का और खुद पहने

[35] और पसीना बहता रहा-पृ.154
[36] और पसीना बहता रहा-पृ.263

कीमती-कीमती सूट, बिना मक्खन की कभी रोटी नहीं लेंगे, झोपड़ी की बात करेंगे बड़े-बड़े बंगलों में रहेंगे, सपने महलों के बनेंगे। ... ये लोग हमारी नासमझी का अपने हितों के लिए, खुद के लिए पता नहीं कब तक फायदा उठाते रहेंगे...? हम कब समझेंगे?"[37]

संगठन के प्रयासों के कारण जहाँ एक तरफ हड़ताल और अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने को मजदूर अपना हक और हथियार मानता है वहीं इसकी विफलता या उसका न होना मजदूरों के मनोबल और आशाओं पर पानी फेर देता है। परंतु कुछ असफलताओं और कमियों के बावजूद भी हड़ताल और संगठन की शक्ति सही माइनों में और अनेक कारणों के अनुसार मजदूरों की सशक्तिकरण का सबसे असरदार मार्ग है। मजदूरों के द्वारा और मजदूरों के लिए छिड़ी हड़ताल में न केवल संगठन बल्कि समाज के अन्य वर्ग के लोगों के समर्थन और सहायता की भी आवश्यकता होती है। यह समर्थन मजदूरों को मानसिक और सामाजिक दोनों प्रकार का संतोष और समर्थन देता है।

अठारह महीने लंबी चली कपड़ा मिलों वाली उस हड़ताल की विफलता का कारण समाज से जोड़ते हुए नमिता कहती है-

"श्रमिकों की लड़ाई में समाज का कोई दायित्व नहीं, मैम? बाबूजी का कहना है कि हम संवेदनहीन नपुंसक समाज में जी रहे। अट्ठारह महीने लंबी खिंची वह हड़ताल कभी विफल न होती, न उतनी लंबी खिंचती अगर समाज के अन्य वर्गों ने मजदूरों के संघर्ष को अपने बुनियादी हक की लड़ाई समझा होता और उसका जोरदार समर्थन किया होता।"[38]

मजदूरों को उनकी लड़ाई में समाज के समर्थन और भागीदारी की आवश्यकता निःसंदेह है। हाँ, पूँजीपति वर्ग से किसी भी प्रकार की आशा नहीं की जा सकती। समाज के अन्य वर्ग के लोगों में यह मानसिकता घर करती जा रही है कि

[37] नदी फिर लौट आई-पृ.165
[38] आवां-पृ.68

सभी हड़तालें केवल नेताओं के स्वार्थ और बेमतलबी माँगों की पूर्ति के लिए ही होती हैं। लेकिन यह शत प्रतिशत सही नहीं है। क्योंकि हर कार्य के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्ष होते हैं। इन दोनों ही पक्षों का होना आवश्यक है। यही प्रकृति का भी नियम है। हड़तालें केवल अपनी माँगों को पूँजीपतियों द्वारा मनवा लेना मात्र ही नहीं है। यह मजदूरों को विवेकसंपन्न, जागरूक, सशक्त और संघर्ष की आवश्यकता का अर्थ समझाते हुए उनके व्यक्तिगत जीवन में प्रगति लाने का प्रयास करती है।

"और सुनो, हमारी यह लड़ाई आनेवाली देशव्यापी लड़ाई का एक बहुत छोटा-मोर्चा-भर है, जिसके द्वारा हम मजदूरों को उस लड़ाई के लिए चेतनासंपन्न बना रहे हैं। इसका प्रधान उद्देश्य वही है, यह मामूली बोनस नहीं। मजदूरों को अपनी राय कायम करना है, यह लड़ाई उसी व्यापक संघर्ष का प्रशिक्षण केंद्र है। इस विचार से जब सभी मजदूर लैस हो जाएँगे, तो पूँजीवादी व्यवस्था का गढ़ ताश के महल की तरह बिखर जाएगा।"[39]

सही अर्थों में एक सच्चे, जागरूक और समर्पित संगठन और उसके नेताओं तथा कार्यकर्ताओं की नियत और उद्देश्य इस प्रकार स्वार्थहीन और समाज कल्याण की भावना से ओतप्रोत रहती है। पूँजीवाद को मात देकर श्रमिकों का राज लाने का प्राथमिक पड़ाव यही है कि स्वयं श्रमिक ताकतवर और जागरूक बने। अपने लिए आवश्यक-अनावश्यक, नैतिक-अनैतिक, विरोध-प्रगति, शोषण-अन्याय आदि को सही माईनों में समझें और तब जाकर अपने अधिकारों के लिए लड़ें। नहीं तो वह युद्ध हिंसा, अशांति और अतिगमन के अलावा कुछ नहीं देगा।

समाज के निर्माणक हाथ जब शून्य में अपने अधिकारों के लिए अनिश्चितता के संकट में घूम रहे हों, तब समाज का यह दायित्व है कि वह उन हाथों को सहारा दे। दिशाहीन मार्ग में खो जाने न दे और पथ का साथी बन उनके रणक्षेत्र में उतरे। भारत का स्वाधीनता संग्राम हो या रूस की महान क्रांति यह सब तभी सफल और

---

[39] धारा के बीच में-पृ.286

इतिहास बन पाए हैं, जब उसमें समाज के ये कामगार हाथों ने अपने पूरे जोश, साहस और एकता के साथ उन योजनाओं में अपनी उपस्थिति का डंका ब□ाया है। भारत के श्रामिकों, किसानों और खेतिहर मजदूरों ने हर मुहिम को एक लक्ष्य का न केवल रूप दिया बल्कि उसे प्राप्त कर समाज का निर्माण भी किया है। इसलिए समाज से समर्थन पाना श्रामिकों का हक बनता ही है। कम-से-कम मानवीयता के दृष्टिकोण से। श्रामिकों के विकास और पुनरुत्थान के लिए श्रामिक-संगठन-समाज को एकसूत्र में बँधना समय की आवश्यकता और माँग बनती जा रही है।

3. संगठन का विरोध

पूँजीपतियों द्वारा संगठन का विरोध और इसकी सक्रियता तथा गतिविधियों से किसी भयानक स्थिति की कल्पना को, एक स्वाभाविक और प्राकृतिक प्रतिक्रिया के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। वर्चस्व पर संघर्ष का हावीपन इस प्रकार के मनोभाव को ही जन्म देगा। मजदूरों के बीच एकता न बन पाए, वे एक-दूसरे से जुड़ कर आगे न बढ़ें और सबसे ऊपर वे संगठित न हों इसके उपाय ही पूँजीपतियों की प्राथमिकता बनी रहती थी। क्योंकि अगर जुड़ जाएंगे और संगठित हो जाएंगे तो ज्ञान और चेतना अपने आप उत्पन्न होगी और विरोध की स्थिति भी पनपेगी।

मजदूरों की सक्रियता और कार्यों से मालिकों को इस बात का अंदेशा हो जाता है कि कहीं वे संगठन से तो नहीं जुड़ रहे हैं? संगठन की शक्ति का ज्ञान भले ही श्रामिकों को देर से हो पर पूँजीपति इस शक्ति को बहुत अच्छी तरह से पहचानता है। इस शक्ति की गहराइयों को मापने की पैनी नज़र उसके पास है। मजदूरों की एकता और मालिकों के प्रति असंतोष को देखते हुए जंगबहादुर डर और सहम जाते हैं कि कहीं यह असंतोष किसी क्रांति में न बदल जाए।

"जंगबहादुर सहम गए। उनकी आँखों के सामने फ्रांसीसी, रूसी और चीनी क्रांतियों की तस्वीरें घूमने लगीं। बोले इसीलिए कहता हूँ कि हम अभी से मुकाबले के लिए तैयारी शुरू कर दें। पहले से अगर तैयार नहीं रहेंगे, तो ऐन वक्त हम क्या

करेंगे? कल चंद्रमोहन कहता था कि यूनियन वाले उससे फिरंट हो गए हैं। मज़दूरों में असंतोष फैल गया है। वे फिर बोनस का सवाल उठा रहे हैं।"[40]

इन सभी आशंकाओं के कारण पूँजीपति का पहला कदम यही रहता था कि किसी भी प्रकार संगठन का निर्माण न हो। न संगठन बने, न एकता बने और न ही किसी प्रकार के विरोध या हड़ताल का डर और प्रभाव उनके उत्पादन पर पड़े। इसलिए वह भरसक और अंतिम सीमा तक यह प्रयत्न करता है कि संगठन न बन पाए। इसके लिए अनेक मार्ग अपनाता है यह पूँजीपति वर्ग।

क्रैशर के मालिक बाहर से मजदूर लाते हैं और अपना काम करवाते हैं तथा स्थानीय लोग बेरोजगारी और गरीबी का शिकार होते हैं। इसका कारण बताते हुए मंदाकिनी कहती है-"स्थानीय मजदूर रखते नहीं ये लोग। डरते हैं, संगठन न बना लें। एक मिट्टी से जन्में लोग एक होकर उनके विरुद्ध ही जेहाद न छेड़ दें। बस, यही एहतियात बरतते हुए ठेकेदारों ने भूखों के मुख की रोटी छीन ली।"[41]

मजदूरों की एकता मालिकों की नींद हराम कर देती है। पर वे मौन साधे बैठनेवालों में से नहीं होते। इसलिए इस एकता को तोड़ने और उस पर अंकुश लगाने के लिए वे सरकार और कानून का सहारा लेते हैं जो उनकी ही भाषा बोलते हैं। मालिकों की इस साजिश की खबर मज़दूरों को देते हुए हरि कहता है-

"1922 में जो श्रम कानून बना था, वह मज़दूरों से कहीं अधिक मालिकों के हितों में था। उस कानून को आज पंद्रह साल बाद फिर से अमल में लाया जा रहा है। जैसा कि आप सभी जानते हैं, उस अंधे और पक्षधर कानून के तहत किसी भी स्थान पर पाँच आदमियों का जुटना कानून के खिलाफ समझा जाता है। इसलिए फिर से इसे इसलिए लागू किया गया है ताकि किसी भी बैठक या रास्ते के मोड़ पर हमें इकट्ठे पाकर पुलिस हिरासत में ले सके। इस कानून के अंतर्गत हमें कोई भी नया संघ या नई सभा बनाने का हक नहीं है। सरकारी मदद से इस देश के धनी जमींदारों

---

[40] धारा के बीच से-पृ.219

[41] इदन्नमम-पृ.182

और मिल-मालिकों के हाथ में दिया गया यह कानून मजदूरों को डराकर बेबस कर देनेवाला हथियार है...।"[42]

श्रमिकों का अपने जीवन को उन्नत बनाने के सारे प्रयास भी मालिकों की आँखों में चुभते हैं। क्योंकि अगर वे उन्नत बन गए तो गुलामी कौन करेगा और पूंजीपति अपने शोषण का प्रकोप किस पर ढाऐंगे।

"भइया जी को खुद अहसास है कि अभिलाख के साथ-साथ छोटे-मोटे ठेकेदारों की छाती में भी फफोले पड़ते हैं इस ट्रैक्टर को देखकर। अभिलाख कहता है, किसी दिन हमारे राउतों को न बरगला दे यह महाकाली। उन्हें भी न पाठ पढ़ाने लगे अपने पाँवों खड़े होने का। बस, इसी कारण यह ट्रैक्टर हमें शत्रु-समान दीखता है। खतरे की घंटी लगती है। पर हम भी कर देंगे इस घंटी की आवाज़ सुन्न।"[43]

मजदूरों के दृढ़ संकल्प और एकता इनके पैरों की नीचे से जमीन खींच लेती है। इस कारण पूँजीपति अपने एकमात्र हथियार शोषण को तीव्र से तीव्रतर कर देते हैं ताकि श्रमिक अपने लक्ष्य से हट जाएँ। "करीब पंद्रह दिन पहले से बेल-वी-आरेल तथा उत्तरी-प्रांत की कई कोठियों में मजदूरों का शोषण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। मजदूर नेताओं ने धमकियों की परवाह किए बिना मालिकों को चेतावनी दी थी। ... हरि की अध्यक्षता में हुई एक बैठक में तय किया गया था कि मजदूर अप्रत्यक्ष रूप में हड़ताल शुरू करें। उस आदेश का भी दिलेरी के साथ पालन हुआ था और करीब सात दिनों से खेती की सारी चहल-पहल जाती रही थी। कारखानों से धुआँ उठना बंद हो गया था। सरकार और मालिक दोनों विचलित थे। मजदूरों के दृढ़ संकल्प से मालिकों में तहलका मचा हुआ था।"[44]

मजदूरों के चेतना संपन्न जागरण और एकता को तोड़ने का प्रयास मालिकों का लक्ष्य बन जाता है। हर प्रकार से वे उन्हें सताने की कोशिश और योजनाओं में

---

[42] और पसीना बहता रहा-पृ.139
[43] इदन्नमम-पृ.225
[44] और पसीना बहता रहा-पृ.257

जुट जाता है। पूँजीवाद का अहं इतनी आसानी से हार माननेवाला नहीं। हरि श्रामिकों को मालिकों की इस प्रवृत्ति के बारे में सतर्क करते हुए कहता है-

"... क्योंकि धमकियों के बेकार चले जाने पर पूँजीपतियों ने दूसरा षडयंत्र शुरू किया था। मजदूरों पर कई तरह के आरोप लगाए जाते रहे। साजिशों पर साजिशें होती रहीं, ताकि मजदूर अधीर होकर अपने संकल्प को तोड़ दें। महादेव और उसके साथियों पर चोरी के आरोप लगाए गए। परकाश ने भी मजदूरों से बात की थी और उन्हें बताया था कि यह मालिकों का बहुत पुराना तरीका है। पुलिस ने भी गलत तरीकों से मजदूरों को सताना शुरू किया था।"[45]

जब शोषण और अत्याचार के विभिन्न हथकंडे सफल नहीं होते तब पूँजीपति ब्रिटिश नीति को अपनाता है। वह श्रमिकों की एकता को नष्ट कर, उनके बीच शत्रुता पैदा कर उन पर काबू पाना चाहता है।

"फूट डालो-राज करो।" कंपनी अपने इस मकसद में पहले ही कामयाब हो चुकी है।

"मशीनों से चिपके बैठे हमारे गुमराह भाइयों ने कंपनी के पांव-तले अपनी अकालग्रस्त दरकी भूमि-सी हथेलियों को कालीन-सा बिछाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी।"[46]

गरीब और अकालग्रस्त मजदूर इन बहकावों में जरूर फँस जाता है। परंतु हर बार मालिकों की यह नीति काम नहीं आती। पिछड़ेपन और अज्ञानता की भी एक सीमा होती है, जहाँ तक पहुँच श्रमिक स्वयं अपनी आज़ादी की इच्छा और आशा करता है। इसलिए वह संगठन से जुड़ता है। संगठन के योजनानुसार हड़ताल में भी सक्रिय भागीदार बनता है। इस स्थिति में पूँजीपति हड़ताल को रोकने और उसे असफल बनाने की साजिशें रचता है।

[45] ओर पसीना बहता रहा-पृ.258
[46] आवां-पृ.178

पैसों और सुविधाओं का लालच देकर मालिक मजदूरों को बहकाने का अथक परिश्रम करते हैं। कभी-कभी इस कोशिश में वे सफल भी हो जाते हैं। गन्ने के खेतों और चीनी कारखाने में काम करनेवाले श्रमिकों की पहली सक्रिय हड़ताल एक नृशंस हत्याकांड में इसलिए बदल गयी थी क्योंकि मालिकों ने हड़ताल के जत्थे में अपने लोगों को शामिल करवा लिया था जिन्होंने उस हड़ताल को हिंसात्मक रूप दे दिया और मजदूरों के हाथों विफलता और असहायता।

"इस बीच दूसरा मालिक भी गाड़ी से बंदूक निकाल लाया। लोग जहाँ थे, वहीं ठिठके रहे, पर काली कमीजवाला वह आदमी नहीं रुका। वह मालिकों पर झपट पड़ा। इतने में ही ठायँ-ठायँ करके गोलियाँ चलीं और काली कमीजवाला वह आदमी देखते ही देखती आँखों से ओझल हो गया।"[47] यह काली कमीजवाला आदमी मालिकों का भेजा हुआ था जो शांतिपूर्वक हड़ताल कर रहे श्रामिकों को भड़का रहा था।

जंगबहादुर सिंह भी गोविंद और मजदूरों के विरुद्ध, हड़ताल में अपेन लोगों को शामिल करा लेते हैं। पुलिस भी जंगबहादुर का साथ देती है1 इस हड़ताल का अंत भी दुखद ही हुआ।

"जनता में जोरों की चर्चा थी कि ईंट-पत्थर हड़ताली मजदूरों ने नहीं, बल्कि चंद्रमोहन और उनके लोगों ने मैनेजर के उकसाने पर फेंके थे। यह भी अफवाह थी कि यह काम पूर्व नियोजित था। चंद्रमोहन और उसके साथियों को लुक-छिप-कर भागते कई लोगों ने देखा था। इसके बाद ही पुलिस ने लाठी चार्ज किया।" [48]

परंतु इन षडयंत्रों से श्रमिक हार नहीं मानते वे पूरे उत्साह और एकता के साथ आगे बढ़ते हैं और भविष्य की योजनाओं में जुट जाते हैं। श्रमिकों की एकता भंग करने में अगर पूँजीपति असफल हो जाते हैं तो उसका अगला निशाना होते हैं संगठन के नेता। इस कारण सबसे पहले कारखानों के मालिक या मैनेजमेंट इन

---

[47] और पसीना बहता रहा-पृ.150
[48] धारा के बीच में-पृ.295

नेताओं को नौकरी से निकालने की धमकी देते हैं या साजिश र□ते रहते हैं। हरि □ो कि एक बहुत ही प्रभावी मजदूर नेता हैं उसके कोठी मालिक पहले नौकरी से निकाल देते हैं और बाद में हर जगह उसका प्रवेश-निषेध कर देते हैं। "पास-पड़ोस के सभी कोठियों में उसके लिए त्रेसपास थी। हर जगह प्रवेश-निषेध। एक मित्र के सहयोग से करीब सात मील दूर सोलीचीद कोठी में उसे काम मिला था। पर वहाँ उसे अभी महीना-भर भी नहीं हुआ था कि निकाल दिया। बोला कि न तो उसे कारण पूछने का अधिकार है और न ही कारण बताने के लिए बाध्य। वह तो हरि के मित्र सिमों ने उसे बताया था कि पिछले सप्ताह कोठी के दफ्तर में पूरे उत्तर प्रांत के मालिकों की जो बैठक हुई थी, उसी में वह निर्णय लिया गया था कि उक्त प्रांत की किसी भी कोठी में उसे नौकरी देना मालिक संगठन की अवहेलना समझा जाएगा।"[49]

पूरे प्रांत के मालिक लोग बैठकी बुलाकर हरि के किसी भी जगह नौकरी न देने और न कर पाने का फैसला लेते हैं, साथ ही छोटे किसानों और अन्य लोगों को भी धमकी देते हैं, जिससे हरि पूरी तरह बे रोजगार बन जाए। मूसा हरी को बताता है-

"उनसे कहा गया है कि अगर वे हमें अपने खेतों में नौकरी देंगे तो उनके गन्ने का वजन कम बताया जाएगा और उन्हें फैक्टरी की ओर से न तो किसी तरह की खाद दी जाएगी और न सहूलियत। देश के इस छोर से उस छोर तक गोया यह कानून बना दिया जाएगा और जो भी आदमी यूनयिन की नेतागिरी करेगा, उसे न तो खेतों में काम दिया जाएगा और न ही चीनी कारखानों में।"[50]

यूनियन नेताओं को बेरोजगार और आर्थिक विषमता से असहाय बनाने की यह साजिश इसलिए गढ़ी जाती है ताकि वे परिस्थितियों से हार कर, उनसे समझौता कर मालिकों के गुलाम और पक्षधर बन जाएँ। लेकिन सच्चे और ईमानदार नेता ऐसा नहीं करते। कारखाने के श्रमिकों पर जब गोविंद की नेतागिरी प्रभाव दिखाना

---

[49] और पसीना बहता रहा-पृ.161
[50] और पसीना बहता रहा-पृ.200

शुरू करती है, और बोनस की माँग जोर पकड़ती है तब गोविंद के चरित्र पर आरोप लगाकर उसे यूनियन से निकाल दिया जाता है।

"मीटिंग तो उसने बुलाई नहीं, लेकिन मीटिंग हो गई। न उससे कुछ कैफियत पूछी गई और न मीटिंग में उसे बुलाया ही गया। एक-ब-एक उसे नोटिस दी जाती है कि वह यूनियन के सेक्रेटरी और सदस्य के पद से भी मुक्त कर दिया गया...। यह सारी बदमाशी मैनेजिंग एजेंट की है। वह मजदूरों में इसका भंडाफोड़ करेगा कि मैनेजिंग एजेंट ने यूनियन के सदस्यों को खरीद लिया है ताकि वे मजदूरों के बोनस की माँग न कर सके।"[51]

संगठन का विरोध, उसका डर और अपने साम्राज्य का विघटन इन पूँजीपतियों को हमेशा सताता रहता है। उन्हें इस बात की चिंता लगी रहती है कि कहीं यह संगठन उनके अस्तित्व और राजस्व में सेंध न लगा दे। वह तो एक शक्ति है, संस्था है, जुड़ाव है। इस जुड़ाव को वे कैसे तोड़े, कैसे उसे तितर-बितर कर डालें ताकि एकता भंग हो जाए। कोई ऐसी साजिश काम कर जाए जिसके फलस्वरूप संगठन की ईमानदारी नष्ट हो जाए, श्रमिकों की आस्था उस पर से हट जाए। संगठन के भाव को नष्ट करने के लिए यह सब पूँजीपतियों की रणनीति न रहकर कूटनीति बन जाती है।

पवार, नमिता को पूँजीपतियों के इसी कूटनीति के बारे में समझाता हुआ कहता है-

"घर-घर जाकर उन्हें चेतना संपन्न बनाना होगा, ताकि वे चेत सकें। स्वयं के संग होनेवाले भेदभाव पूर्ण व्यवहार और शोषण के प्रतिवाद में आवाज़ उठा सकें। उस षडयंत्र को समझ सकें कि किस चतुराई से उनमें से ही किसी एक को बहला-फुसला, गोद में बैठा, प्रबंधन उनकी संगठनात्मक शक्ति में सेंध लगा, उन्हें एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर देता है। कूटनीति है प्रबंधन की-स्त्री कामगार हो या पुरुष,

[51] धारा के बीच से-पृ.124

भीतरघाती पैदा करो। पूँछ सहलाओ उसकी, छेड़ दो कटहे कुत्ते-सा। वह अपने लोगों को ही चबाता फिरेगा...।"[52]

यह कूटनीति एक दृष्टि से पूँजीपतियों की मजबूरी भी कही जा सकती है। संगठन और संगठनात्मक शक्ति जब भूखे-बेबस श्रामिकों के आर्तनाद के साथ मिलेगा तो अवश्य ही कुछ अनसोचे और अकल्पनीय परिवर्तन को ही प्रस्तुत करेगा। इसलिए बेहतर है कि जैसा चाहे वैसे इन भूखे-नंगों का इस्तेमाल किया जाए ताकि दबे रहो। पर जब जागृत श्रमिक संगठन के समर्थन से आगे बढ़ती है तो धनपतियों का आसन हिलने लगता है।

"मंदाकिनी को भी पता है कि क्रैशर मालिकों और ठेकेदारों ने लोगों को समझाने में परास्त करके वापस तो भेज दिया है, लेकिन भीतर ही भीतर खलबली मच गयी, नंगे बड़े परमेश्वर से। क्या भरोसा? इस लड़की ने क्या-क्या सिखा दिया हो भूखों-नंगों को? न जाने क्या कुपचित मचा डालें? काम में विघ्न-बाधा डालने लगें? कुछ भी कर सकते हैं।"[53]

श्रमिक संगठन का जन्म एक आंदोलन के रूप में हुआ। आंदोलन इस कारण, क्योंकि पूँजीपति वर्ग को इस बात का ज्ञान और इस कारण यह डर लगा रहता था कि जो सर्वहारा वर्ग अपना हाड़-मांस गला कर, निःस्वार्थ भावना से अनेक अत्याचार और शोषणों को सहन कर केवल दो जून-रोटी के लिए इतनी मेहनत कर सकता है, अगर वह अपनी ही दशा और दिशा के लिए संगठित हो गया तो सत्ता बदलने में देर न लगेगी।

4. संगठन का नकारात्मक पक्ष

यह तथ्य निस्संदेह है कि संगठन ही वह ऐसी प्रथम संस्था थी जिसने श्रामिकों को उनकी दुरावस्था से ऊपर उठाने के लिए हर संभव प्रयास किये थे। संगठन न केवल उनके अधिकारों एवं सहूलियतों के लिए लड़ा और उनके संघर्ष को अपना

---

[52] आवां-पृ.98
[53] इदन्नमम-पृ.199

संघर्ष बनाया बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक धरातल पर भी उन्हें प्रगतिशील बनाने की चेष्टा की। पर आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण का अविश्वसनीय विकास और सबसे ऊपर राजनैतिक शक्ति बनने और प्राप्त करने के मोह ने संगठन को स्वार्थी, एकपक्षीय, मालिकों का प्रतिनिधि और श्रमिकों को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रयोग करने वाली संस्था बनाता गया और आज तो इनकी हालत और भी बुरी है। आज के समय में 'संगठन' शब्द ही नकारात्मकता को प्रस्तुत करता है। अगर कोई व्यक्ति किसी कारखाने या उद्योग के किसी संगठन से ुड़ा हुआ है तो लोग उसकी नीयत पर संदेहात्मक दृष्टिकोण रखते हैं और उसे अविश्वासी मानते हैं। यूनियन के कार्यकर्ताओं की सक्रियता के साथ संदिग्धता अधिक से अधिक जुड़ती जा रही है। यूनियन को आलसी, बेईमान, विश्वासघाती और राजनीतिक शक्तियों के प्रभाव के तले दबे और उसके संकेतों पर काम करने वाले लोगों का सम्मेलन माना जा रहा है। शायद यही कारण है कि श्रमिक संगठन के निकट आने के विपरीत उससे दूर जा रहे हैं। एक समय था जब श्रमिक संगठन प्रभावी समाज के स्थापित और लोकोपकार लोगों के द्वारा संचालित रहता था जिसमें अपना सब कुछ स्वाहा करके संघर्ष के होम को जलते रहने देना, उसके सदस्य अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानते थे। पर आज परिदृश्य कुछ अलग ही है। श्रमिक संगठन के निर्माण और इस अवनतिपूर्ण मार्ग में उसके अग्रसर रूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाना न्यायसंगत लगता है-

"संगठन अजेय शक्ति है। संगठन हस्तक्षेप है। संगठन प्रतिवाद है। संगठन परिवर्तन है। क्रांति है। किंतु यदि वही संगठन शक्ति सत्ताकांक्षियों की लोलुपताओं के समीकरणों की कठपुतली बन जाए, तो दोष उस शक्ति की अंधनिष्ठा का है या सवारी कर रहे उन दुरुपयोगी हाथों का जो संगठन शक्ति को सपनों के बाजार में बरगलाए-भरमाए अपने वोटों की रोटी सेंक रहे? ये खतरनाक कीट बालियों को नहीं कुतर रहे, फसल अंकुआने से पूर्व जमीन में चंपे बीजों को ही खोखला किए दे रहे हैं। पसीने की बूँदों में अपना खून उड़ेल रहे भोले-भाले श्रमिकों को, हितैषी की

आड़ में छिपे इन छद्म कीटों से चेतने-चेताने और सर्वप्रथम उन्हीं से संघर्ष करने की जरूरत नहीं?" [54]

स्थिति आज यह बनती जा रही है कि श्रमिकों को मालिकों और पूँजीपतियों से लड़ने से पूर्व उन्हें अपने इन तथाकथित हितैषियों से ही लड़ना होगा। मोर्चा स्वयं श्रमिकों को ही संभालना पड़ेगा। दिन-ब-दिन संगठन राजनीति का अड्डा बनता जा रहा है। बेमतलबी और स्वार्थहीन हड़तालें करना, अवांछनीय माणों को प्रस्तुत करना, मजदूरों को बहकाना और अपने लाभ के लिए मालिकों के साथ साझेदारी कर लेना आदि ही इसके ऐजेंडे हैं और योजनाओं के प्रमुख बिंदु बन रह गए हैं। ट्रेड यूनियनों की वर्तमान स्थिति को और इस प्रकार के मनसों को समझाते हुए भुवनेश विनय से कहते हैं-

"... और ट्रेड यूनियनों में क्या हो रहा है, तुम्हें पता है? मजदूर-औद्योगिक और संगठित मजदूर-हमारा सबसे ज्यादा जुझारू सिपाही... क्या चरित्र है उसका? क्या उसकी योग्यता है? क्या उसकी बौद्धिक चेतना है? क्या है उसकी समझ का स्तर? किस काम में लगा रखा है उसे हमने? कौन-सी लड़ाइयाँ लड़ी जा रही हैं लगातार? ... प्रमोशन की, बोनस की, ग्रेच्युटी की... पैसे की... तनख्वाह... मजदूरी बढ़ाने की... वेतन आयोग तथा वेतन में समानता की। कहीं कोई तालमेल नहीं उसका दुनिया के मजदूरों से... दूसरे उद्योगों के मजदूरों से.... मजदूरों की राजनीति से। उसके लिए पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, सामंतवाद-सब उसका मिल-मालिक है। उसकी सारी लड़ाई थोड़ी-सी राहत, थोड़ी-सी आर्थिक लाभ, थोड़े-से टुकड़ों पर समेटकर रख दी है हमने।"[55]

संगठन का प्रमुख दायित्व मालिक और श्रामिक के बीच सेतु बनकर उन दोनों में समझौते करा कर समस्याओं का समाधान करना होता है। लेकिन संगठन जब

---

[54] आवाँ-फ्लैप से
[55] बीच में विनय-पृ.69

अपनी जिद, अहं और हठ के कारण बेमतलबी और स्वार्थ केंद्रित हड़तालें करता है तब वह यह भूल बैठता है कि इससे श्रमिक के घर का चूल्हा कैसे जलेगा।

"बी.बी.सी. ने खूब मजे लिए। हड़ताली मजदूरों की भूख से बिलबिलाती औरतों और नंग-धड़ंग बच्चों को सड़कों या गाड़ियाँ रोक-रोककर भीख मांगते हुए दिखा... कुछ घरों में जीवन से ऊबी हताश औरतों को गले में फंदा डाल लटकते...।

घृणा है मुझे ऐसे महत्वाकांक्षी मजदूर नेताओं से... परमपूज्य अन्ना साहब से। पहले दर्जे का सिरफिरा आदमी है हत्यारा...

बंद करवा दीं मिलें की मिलें सनकी ने। कमर तोड़ दी देश के उद्योगों की। अब भी तोड़ने पर तुला हुआ है। नशा नहीं उतरा उस सनकी का। खुद कभी भूखा नहीं सोया होगा न!"[56]

अन्नसाहब एक प्रभावी और मजदूरों के हित में काम करनेवाले और उनके सम्मुख प्रतिबद्ध नेता हो सकते हैं, लेकिन सही योजना की कमी के कारण, वे एक ऐसे अर्थहीन और बेमतलबी हड़ताल को नौ महीनों तक खीचंते रहे जिसका कोई भविष्य नहीं था। इसकी विफलता का परिदृश्य बेरोजगारी, अभाव, विषमता और गरीबी ही बन कर रह गयी।

अन्नासाहब की इसी गलती का फायदा उठा रिचर्डसन बेवरी का दूसरा श्रमिक संगठन 'सेना की लोकशाही' मजदूरों को अपने दल में शामिल होने का सुझाव देता है। "याद करिए। सावधान हो जाइए। यही वो आदमी है सैकड़ों मजदूर भाइयों की रो□ी-रोटी छीननेवाला। उन्हें बरबाद करने वाला। इसी के चलते मुंबई का अधिकांश कपड़ा उद्योग मुंबई के हाथों से निकल कर पड़ोसी राज्य के सूरत शहर में फल-फूल रहा है। कोई भी उद्योगपति साल में नौ महीने कंपनी बंद रखने के लिए

[56] आवां-पृ.68

नहीं खोलता। देश का विकास अवरुद्ध होता है हठवादिता से। देशवासियों के इस हितचिंतक को वास्तव में उनकी चिंता है।"[57]

एक ही कारखाने या उद्योग में दो संगठनों को बनना ही अराजकता और संगठन में राजनीति की उपस्थिति को प्रमाणित करती है। और इस कारण इनके बीच शत्रुता और प्रतिस्पर्धा की भावना जागृत होती है। इन सबके बीच अपने भविष्य को कुछ थोड़ा बेहतर बनाने की आशा में संगठन की तरफ एकटक देख रहे-श्रमिक को कुछ भी हासिल नहीं होता। क्योंकि संगठन अपनी नैतिकता खोता जा रहा है।

"परसों दोपहर को 'रिचर्डसन बेवरी' की दोनों यूनियनों-'कामगार आघाड़ी' एवं 'सेना' के 'लोकशाही' के अनुयायी कामगारी गुटों के बीच, मिल के प्रांगण में ही सरिया और बंबू में जमकर घमासान हुई। 'सेना' के कुछ लोगों का सिर फट गया। अन्ना साहब के चक्कर जाम के आवाहन का सेना-समर्थकों ने विरोध किया। वे मशीनें छोड़ने को तैयार नहीं थे। आघाड़ी-समर्थक श्रमिकों ने आवेश में आकर उन्हें बलात मशीनों से अलग करने की कोशिश की। बस, आपस में गुत्थम-गुत्था आरंभ हो गई।"[58]

एकता और अखंडता का पाठ पढ़ानेवाले संगठन ही जब सत्ता अधिकार के लोभ में आपस में लड़ने लगते हैं तो इस अवसर का फायदा पूँजीपति अवश्य ही उठाएगा। क्योंकि पूँजीपति जो सर्वदा एकछत्र शासन और वर्चस्व का आकांक्षी होता है वह संगठन के कर्मियों को ही खरीद लेता है और श्रमिकों की सभा में भी अपने अनुसार कार्य करता रहता है।

बिकाऊ और लालची कार्यकर्ताओं के माध्यम से कंपनी और मालिक मनचाहा फायदा उठाता है। सत्ता का लोभ दिलाकर, पैसा खिलाकर पूँजीपति संगठन को खरीदता रहता है।

---

[57] आवां-पृ.173
[58] आवां-पृ.171

"प्रबंधन ने फूट डालो, स्वार्थ सिद्ध करो की नीति अमल की। सेना की लोकशाही यूनियन के नेता गोपीनाथ को आमंत्रित कर, उनके पिता सेना-प्रमुख को कंपनी में लहरा रहे 'कामगार आघाड़ी' के झंडे का वर्चस्व खतम कर दे। वे सेना की यूनियन तले आघाड़ी-निष्ठ कामगारों को प्रलोभन दे, फोड़ लें। बस, मिल की 'कामगार आवास योजना' की जो भूमि है, श्रमिक उससे पूर्णतः विमुख हो जाएँ, ताकि आघाड़ी का मनोबल ध्वस्त हो जाए और कंपनी मुंबई के विख्यात बिल्डर 'बंसल्स' से मनोवांछित सौदा कर सके।"[59]

संगठन के कार्यकर्ताओं और संगठन के भविष्य की समालोचना करते हुए भुवनेश विनय से कहते हैं-

"ये अर्थवाद है। विशुद्ध अर्थवाद, जहाँ हमारी ट्रेड यूनियनों को ले जाया जा रहा है। इसीलिए इनका चरित्र खतरनाक तरीके से बुर्जुआ हो गया है। संघर्ष भावना खत्म हो गई है। ट्रेड यूनियनों के नेता लाठियाँ खाने के बजाय समझौता-वार्ताओं में मगन रहना ज्यादा पसंद करते हैं। वे मालिकों के दलाल तक हो जाते हैं और इसलिए कई बार बहुत प्रतिष्ठित ट्रेड यूनियन नेता पार्टी से निकाल दिए जाते हैं। ऐसा होना चाहिए?"[60]

ऐसा होना नहीं चाहिए परंतु ऐसा ही हो रहा है। अपने आपको प्रतिष्ठित और विख्यात बनाने के लिए मजदूर यूनियन के कुछ लोग अपनी सोच, नैतिकता और साहस को बुर्जुआ वर्ग के सम्मुख बेच डालते हैं और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप कुछ ब□-कुचे अच्छे और समर्पित नेताओं के हाथ बदनामी और विरोध ही लगता है। गोविंद के साथ भी यही होता है। मालिकों के हाथों बिका चंद्रमोहन गोविंद के चरित्र और उसके व्यक्तित्व के प्रति मजदूरों की धारणाओं को ही पलट कर रख देता है और अपने आपको उनका हितैषी।

---

[59] आवां-पृ.172

[60] बीच में विनय-पृ.69

"और उस दिन शाम को जब गोविंद ने मज़दूरों की मीटिंग बुलाई, तो मज़दूरों ने ही नारा लगाना शुरू किया-'गद्दार गोविंद, वापस जाओ। पूँजीपतियों के दलाल, वापस जाओ। मज़दूरों का नेता, चंद्रमोहन सिंह। गद्दार गोविंद मुर्दाबाद। मज़दूर नेता चंद्रमोहन जिंदाबाद।'"[61]

प्रबंधन के लाभ के लिए, संगठन उस पर आस्था रखनेवाले, उस पर निर्भर और उसे रूप प्रदान करने वाले हजारों श्रमिकों को राजनीति और भ्रष्टाचार का एक हिस्सा बना देता है। अंततोगत्वा श्रमिक एक शोषण तंत्र से निकलकर दूसरे तंत्र का प्रतिभागी बन जाता है। संगठन प्रबंधन का प्रतिनिधि बनता जाता है और केवल अपने आपको प्रतिष्ठित और सर्वमान्य बनाने के लिए बहकाता है। 'कामगार आघाड़ी' के विरुद्ध 'लोकशाही' प्रबंधन के साथ मिलकर श्रमिकों को ऐसे ही बहकाता है-

"प्रबंधन ने हमारी मांगें स्वीकार कर ली हैं। इस वर्ष दीपावली पर आप लोगों को इक्कीस टका बोनस प्राप्त होगा। 'रिचर्डसन बेवरी' के पैंतीस वर्ष के इतिहास में न कभी इक्कीस टका बोनस न दिया गया, न कोई दिला पाया। प्रत्येक कामगार को किराया-भत्ता देने की भी सहमति हो गई है। बढ़ती हुई महंगाई को देखते हुए आप लोगों के वेतनमान में डेढ़ प्रतिशत की बढ़ोत्तरी होगी। आप लोगों का सहयोग हासिल होते ही अनुबंध हस्ताक्षरित हो जाएगा...

कामगार हितों के संरक्षण के लिए लोकशाही यूनियन अपनी संपूर्ण निष्ठा से कटिबद्ध है। 'हमारे झंडे तले आइए, न्याय पाइए'-सेना प्रसारण का नारा है।"[62]

इतना ही नहीं इन योजनाओं को शत-प्रतिशत कार्यान्वित करने के लिए श्रामिकों के बीच विद्यमान भाषा और क्षेत्र की विभिन्नता को भी वे हथियार के रूप में प्रयोग करने से पीछे नहीं हटते। जिस विभिन्नता को हटाना संगठन का प्रमुख दायित्व बनता है उसी का ही उपयोग होता है।

---

[61] धारा के बी□से-पृ.125

[62] आवां-पृ.173

"अन्ना साहब को छोड़िए। 'लोकशाही' से हाथ मिलाइए। महाराष्ट्रियों को तो विशेष रूप से सेना की लोकशाही यूनियन का सदस्य होना चाहिए। अन्ना साहब मराठी होते हुए भी मराठी-भाषियों के हितों के प्रति उदासीन है। हमने कंपनी प्रबंधन से आप लोगों के लिए खुल कर विमर्श किया है।

कंपनी प्रबंधन को हमने चेतावनी दे दी है। महाराष्ट्र में आप उद्योगों से लाभ कमाना चाहते हैं-कमाइए, मगर महाराष्ट्रियों की उपेक्षा कर पाना आपके लिए संभव नहीं।"[63]

संगठन का सबसे बड़ा नकारात्मक पक्ष है उसका राजनैतिक मनोभाव। सत्ता में बने रहने की लालसा, सत्ता अधिकार करने या अपने प्रतिद्वंद्वी से छीन लेने की मनसा और प्रभावशाली या शक्तिशाली संगठन में रूपांतरित होने की चाह ने इनके अनुशासन, नैतिकता और विचारों की धज्जियाँ उड़ा चुका है। उसके द्वारा उठाया जा रहा कदम, उसकी हर योजना, उसकी प्रत्येक सक्रियता का उद्देश्य केवल संस्थागत लाभ तक ही सीमित होता जा रहा है। संगठन केवल इस मौके की अपेक्षा और इस मनसूबों को बनाने में व्यस्त रहता है कि ऐसा कुछ हो जाए या ऐसी कोई घटना घटे जिससे वह श्रमिकों को अपनी तरफ आकर्षित कर पाए। अपने संगठन के मूल्यों और विचारों का समाज के सामने बार-बार नंगा नाच कराते हैं, केवल उन हज़ारों श्रमिकों का वोट पाने के लिए।

'आवां' उपन्यास में अपने ही संगठन के कार्यकर्ता की मृत्यु या हत्या (संदेहात्मक) की घटना के बाद संगठन इस बात पर दुखी नहीं होता कि उसने एक सक्रिय और कर्मठ कार्यकर्ता खो दिया बल्कि उसके दोष के कारण बदनाम हो रहे 'कामघार अघाड़ी' की सत्ता समाज और श्रमिकों के बीच बना रहा, इसकी खुशी होती है।

"... किरपू दुसाध ने आत्महत्या की या उसकी हत्या हुई? हो सकता है अन्ना साहब का संशय निराधार न हो। असलियत क्या है, कौन जाने। किरपू दुसाध के

[63] आवां-पृ.173

बहाने कौन-सी चुनावी रणनीति खेली जा रही पवार ने उसे फोन पर अवगत कराया था। वैसे इस प्रकरण में सेना का हाथ होने की संभवना उसे कम ही लग रही।"[64]

समय के साथ-साथ लोगों में यह विचार और भावना बनती जा रही है कि रा□नीति में प्रवेश करने के लिए संगठन भी एक सीधा, सरल और उपयोगी मार्ग है। संगठन राजनैतिक दलों के साथ जुड़ते जा रहे हैं। यह बात गलत नहीं है। वरन उसे जुड़ना ही चाहिए। देश का कामगार जब देश का भविष्य बनाने की प्रक्रिया और परिप्रेक्ष्य के साथ जुड़ेगा, उसके विभिन्न पहलुओं को समझेगा तो जाहिर सी बात है कि उसकी स्थिति में परिवर्तन और विकास होगा, जो प्रत्यक्ष रूप से देश के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि अपने लाभ के लिए हम योजनाओं को रूप देने के लक्ष्य से ही काम करें।

महिला श्रमिकाओं से वोट अपनाने के लिए विमला बेन भी तो ऐसा ही करती है। वह भी किरपू दुसाध की मृत्यु-घटना को अपने फायदे के साथ जोड़ती है- "विमला बेन के लिए रास्ता प्रशस्त। 'जागो री' की समस्याएँ अनीसा के हत्यारे को दंड दिलवाना चाह रही थी। हत्यारे ने अपराध स्वीकार कर स्वयं अपने लिए सजा तजवीज कर ली। विमला बेन ने 'जागो री' की समस्याओं से वादा किया था-वे तब तक चैन से नहीं बैठेगी जब तक अनीसा के हत्यारे को मौत की सजा नहीं दिलवा देगी।"[65]

संगठन कर्मियों की इस प्रकार की भावनाओं के बारे में गोविंद स्वयं की आत्मालोचन कर कहता है-

"बात ठीक थी। सचमुच वह नेता ही तो बनना चाहता था-बोनस दिलवाकर या हड़ताल कराकर।"[66]

---

[64] आवां-पृ.216
[65] आवां-पृ.406
[66] धारा के बीच से-पृ.126

अपनी स्वार्थी योजनाओं को संगठन, श्रमिकों के सम्मुख उनके विकास, उनकी प्रगति के लिए अपने द्वारा प्रस्तुत 'रणनीति' का नाम देते हैं। क्या सही अर्थों में यह रणनीति की किसी भी प्रवृत्ति के साथ मिलता जुलता है?

"रणनीति।" दाँत पीसकर भुवनेश बोले। और फिर विनय का हाथ भींचकर। "विनय! सोचो? अभी या अगले साल क्रांति नहीं हो रही है, युद्ध नहीं हो रहा है, बम नहीं फूट रहा है... रणनीति शब्द का किस भयानक तरीके से दुरुपयोग हो रहा है। रणनीति-इस एक शब्द की आड़ में कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे मसझौते हम करते चले □ा रहे हैं।"[67]

यही हो रहा है। श्रमिकों को सहुलतें देने के नाम पर संगठन अपने प्रबंधन और मालिकों के साथ गठबंधन और समझौते का संबंध कायम करता जा रहा है। इन सब के बावजूद मौका मिलते ही संगठन अपनी नीतियों, अनुशासन और नैतिकता का ढोल पिटवाने से पीछे नहीं हटता।

"लेकिन 'कामगार आघाड़ी' की नैतिकता पर आक्षेप लगाना सूरज को दिया दिखाना होगा। सच तो यह है कि श्रमिक किरपू दुसाध जीवित होता तो वे उसे इसलिए हरगिज क्षमा नहीं करते कि वह 'कामगार आघाड़ी' का सदस्य है। घर में अनाचारी को प्रश्रय देना स्वयं अनाचारी होने से कम नहीं। हमारे मजदूर भाई अपने घर का कूड़ा-करकट बुहारना भली भाँति जानते हैं। उसके लिए उन्हें चाहे अपने किसी भी प्रिय सहकर्मी की कुर्बानी ही क्यों न देनी पड़े।"[68]

संगठन की वर्तमान स्थिति, उसके अनुशासन, मूल्य-विघटन पर अपनी व्यग्रता और चिंता प्रस्तुत करते हुए भुवनेश विनय के सम्मुख इसकी चर्चा करते हैं-"यह सब तो मजदूरों को बहलाने और अपना उल्लू-सीधा करने की तरकीबें हैं। इसीलिए इस देश में मजदूर आंदोलन भी टुकड़े-टुकड़े हो गया है। इंटक, एटक, सीटू, हिंद मजदूर सभा। और यहाँ तक कि भारतीय मजदूर संघ। ... ओह माई...।

[67] बीच में विनय-पृ.144
[68] आवां-पृ.407

इसलिए देख लो, कैसा गलत इस्तेमाल हमारे सिद्धांतों का हो रहा है। कैसी झूठी, नकली, बनावटी लड़ाइयाँ होती हैं। हड़ताल होती हैं दिखावटी, सर्वाधिक योग्य, सर्वाधिक कुशल और सर्वाधिक प्रतिष्ठित मज़दूरों के बजाय गुंडे ट्रेड यूनियनों के नेता बनते जा रहे हैं। सबसे ज्यादा योग्य वह जो सबसे ज्यादा मेंबर बनाए या जो सबसे ज्यादा चंदा लाए। ये हाल है।"[69]

अपने कार्यों और साहस तथा इसके चलाते देशव्यापी संघर्ष को अंजाम देनेवाला संगठन नकारा क्यों बनता जा रहा है। उसके अस्तित्व पर लोग क्यों प्रश्न चिह्न लगा रहे हैं? वर्गहीन समाज बनाने का उसका संकल्प और प्रण आज केवल स्वार्थ और सत्ताधिकार तक ही क्यों सीमित होता □ा रहा है। जिसका आशय श्रमिकों को पूँजीपतियों के शोषण और शोषक तत्वों से रक्षा करने की प्रतिश्रुति देता था, जो अपने इस प्रण को पूरा करने के लिए निःस्वार्थ पर भावना से लड़ने-मरने को तैयार रहता था आज उसके कार्य इतने संदेहास्पद क्यों बनते जा रहे हैं।

"संगठन में कितनी शक्ति है। आश्वसित है। संगठन को धुन क्यों लगते हैं।"[70]

विचार करने पर यही तथ्य सामने आता है कि संगठन भी पूँजीवाद, अवसरवादिता और उपभोक्तावादी समाज का हिस्सा बनता जा रहा है। वह भी इन फंदों से अपने आपको दूर नहीं कर पाया। समाज में शक्तिशाली बनने की लोलुपता का अंकुरोदय अब जड़, वह भी मजबूत जड़ पकड़ने लगा है। समाज के कुरुपतम व्यवस्था-उसकी आर्थिक व्यवस्था-जो सबसे बड़ा वैषम्य है, उसने शोषक और शोषित वर्ग को बनाया। इस भिन्नता को समाप्त करने के लिए संगठन ने भी अपना सीना ताना था, हर परिस्थिति को झेल कर आगे बढ़ने की, इस भिन्नता को मिटाने की, पर आज इसके लिए इसके कंधों पर शक्तिशाली वर्ग के हाथ की थपथपाहट को वह अधिक महत्व दे रहा है। आज किसी भी श्रमिक संगठन के जमावड़े पर जाइए उपस्थित लोगों में प्रबंधन और संगठन के सदस्य ही आपको नज़र आएंगे। श्रामिकों

[69] बीच में विनय-पृ.70
[70] आवां-पृ.335

का अब उनकी कार्यकारिणी योजनाओं में कोई स्थान नहीं रहा। स्वार्थ केंद्रिता, विलास और बाजारवाद संगठन को नकारात्मक बनाता जा रहा है।

5. प्रभावी मजदूर नेता

श्रमिक संगठनों के सूत्रधार उनके कार्यकर्ता व श्रमिक नेता होते हैं। मालिकों एवं प्रबंधन के सम्मुख श्रमिकों की समस्याओं को प्रस्तुत करना, श्रमिकों में उनके अधिकारों के लिए जागरूकता पैदा करना, उनके हित और विकास के लिए सभी संभव कार्य और पदक्षेप लेना एक सच्चे और कर्मठ श्रमिक नेता का कर्तव्य और परिचय है। चयनित उपन्यासों में श्रमिक समस्याओं की प्रस्तुतीकरण के साथ ही अनेक प्रभावी मजदूर नेताओं के चरित्र को उभारा गया है, जो न केवल श्रमिकों की अवस्था में सुधार को अपना उद्देश्य बनाते हैं, बल्कि उसे प्राप्त करने के लिए निःस्वार्थ पर भावना से कर्मठ हो कार्यरत हैं।

मंदाकिनी

'इदन्नमम' उपन्यास की मुख्य नायिका एक कर्मठ, निष्ठावान और सकारात्मक भावना से ओतप्रोत पात्र-'मंदाकिनी' इस पूरे उपन्यास में मंदाकिनी उर्फ मंदा एक प्रभावशाली चरित्र है। एक अभावग्रस्त, अभिशप्त और अपने गाँव से दूर दूसरे गाँव में व्यतीत अपने बचपन की स्मृतियों के साथ युवावस्था में वह अपने गाँव लौट आती है। यह गाँव भरा है अनेक समस्याओं और भूमिहीन तथा खेतीहर मजदूरों से। ये निवासी जो किसी-न-किसी तरह उसके सगे-संबंधी थे उन्हें क्रैशर मालिकों और अभिलेख सिंह के अत्याचार और शोषण से मुक्त करने की प्रतिज्ञा लेती है और उसे ही अपने जीवन का लक्ष्य और श्रेय मानकर चलती है। "उसने वहीं बैठे-बैठे संकल्प उठाया। मुझे तो किसी सरकार से भी नहीं लड़ना, किसी रा□तंत्र का विरोध नहीं करना, चंद व्यापारियों के विरुद्ध ही तो आवाज़ उठानी है। वह भी वे जो परदेसी हैं।"[71]

---

[71] इदन्नमम-पृ.190

एक विकासहीन और प्रगतिशीलता से दूर-दूर तक संबंध न रखने वाले गाँव की एक युवती, मंदा जो किसी भी श्रमिक संगठन से संबंध नहीं रखती और न ही विशेष जानकारी रखती है, वह गाँव के अनपढ़, गँवार श्रमिकों को संगठित करने में सफलता प्राप्त कर लेती है। क्योंकि संगठित होने की शक्ति को वह हृदयंगम कर चुकी थी। वह लोगों को जागरण और एकजुट होकर आंदोलन करने के लिए प्रोत्साहित करती है। एक यूनियन नेता की भांति यही उसके जीवन का संकल्प बन जाता है। वह अपने आत्मविश्वास को मजबूत करती है। यही उसके जीवन का एकमात्र ध्येय बन जाता है।

"मंदाकिनी ने सोना छोड़ दिया। आँखों में नींद की जगह क्रैशर मालिकों से सामना करने की युक्तियाँ करकारीं, मन में संकल्प सरिया की तरह खड़ा हो जाता और इरादे पत्थर की शिला से अड़िग और अविचलित गढ़े रहते।"[72]

मंदाकिनी का यह साहस, संकल्प और मनोबल उसे संगठन के नेता का रूप प्रदान करता है। जो स्वार्थहीन भाव से, अनेक समस्याओं से धीरे श्रमिकों के अधिकार के लिए लड़ने का मनसा बना लेती है। मंदाकिनी अपने गाँव के मजदूरों को सहूलतें प्रदान कर उससे प्रोत्साहित हो कर अन्य गाँव के लोग भी अपने अधिकारों के लिए लड़ते हैं।

क्रैशर, अभिलख सिंह, ठेकेदार, नेता, प्रशासन इन सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार और शोषण देख एक निष्ठावान और ईमानदार मानवीय मूजदूर नेता की भाँति वह भी विचलित हो उठती है।

"हाँ, शोषण है। याद करती है मंदाकिनी, किस-किसको बचा लेगी शोषण से? हिल जाता है उसका आत्मविश्वास, दहलने लगती है आत्मा और छटपटाने लगता है अपना वजूद। क्रैशर पर जाने के लिए निकली थी कि चलते-चलते ठिठक पड़ी।"[73]

[72] इदन्नमम-पृ.197
[73] इदन्नमम-पृ.233

परिस्थिति चाहे जैसी भी हो उसका सामना करने का मनोबल और न्याय पाने की आशा मंदाकिनी में भरी हुई है। उसकी प्रशंसा करते हुए दिवान बोलता है-

"मान गये तुम्हारी हिम्मत को। कोई और होती तुम्हारी जगह, तो राजा साब पर पहुँचती अभी तक। निर्भीक निड़र इसी को कहते हैं। अपने बलबूते काम करना, सुना है, दरोगा जी बहुत प्रसन्न हैं तुमसे?"[74]

उपन्यास के अंत तक वह अभिलाख सिंह के अन्याय के विरुद्ध, प्रशासन के भ्रष्टाचार के विरुद्ध और सुगना को न्याय दिलाने के लिए लड़ती है। उसका मनोबल एक बार के लिए थर्रा जरूर जाता है पर टूटता नहीं। सर्वहारा की लड़ाई को अपना युद्धस्थल मान चुकी मंदा थकती नहीं है। आगे बढ़ती है। एक नई आशा, नयी ऊर्जा और नई प्रतिबद्धता के साथ।

मन में पनप रहे ताप और आक्रोश के विरुद्ध समाधान ढूँढ़ने के लिए वह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है।

"ओउम् भूर्भुवः स्वः अग्नि ऋषि पवमानः पांचजन्य
पुराहितः तमीरहे महागयम् स्वाहा।
इदं अग्ने पवनाइ इदन्नमम्।।"[75]

उपन्यास में लेखिका द्वारा प्रस्तुत इस श्लोक का पालन मंदाकिनी जीवन भर करती है।

"भृगुदेव, महाराज हर मंत्र के बाद इदन्नमम बोलते हैं। क्या अर्थ है इसका? जानते हो?"

"यह मेरा नहीं। जो कुछ मैं अर्पण कर रहा हूँ यह मेरा नहीं।"[76]

मंदाकिनी ने अपना घर त्यागा, प्रेम त्यागा, परिवार से बिछुड़ी और यहाँ तक कि श्रमिकों के संघर्ष के होम में 'अर्पण' ही मानती रही। यह सभी अर्पण उसके नहीं

---

[74] इदन्नमम-पृ.292
[75] इदन्नमम-पृ.191
[76] इदन्नमम-पृ.191

हैं, क्योंकि उसने इन सबके ऊपर उन असंख्य सर्वहाराओं के अंतर्नाद की पीड़ा को समझ लिया है। वह मानव कल्याण के यज्ञ और युद्ध का आह्वान कर रही हैं।

बाबा रामचंद्र

अवध किसान आंदोलन के सूत्रधार और अग्रणी नेता बाबा रामचंद्र ही वह प्रेरणास्रोत रहे जिनके कारण अवध के अनपढ़, गरीब और सताए हुए हज़ारों किसानों को लगान और बेदखली से मुक्ति मिली। बाबा रामचंद्र की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि जाति, धर्म और क्षेत्र के नाम पर बँटे अनेक किसानों को संगठित कर पाए। उन्होंने किसानों में एकता और भाईचारे के भाव को पनपाया और उन्हें एक दूसरे का सहकर्मी और सहयोगी भी बनाया।

किसानों और खेतिहर मजदूरों के अगुआ बनने से पहले वे स्वयं एक गिरमिटिया मजदूर बने रहे। इस कारण श्रमिकों और किसानों की समस्याओं और अवस्था से वे न केवल अवगत ही थे बल्कि उसे आत्मसात भी कर पा रहे थे। किसानों की दयनीय स्थिति के बारे में सोचकर उनका हृदय मर्माहत हो जाता है।

"... यहाँ के किसान गरीब हैं, कमजोर हैं, सताए हुए हैं। तालुकेदारों के मुलाजिम बात-बात पर उनसे अकड़ते हैं, आँखें दिखाते हैं। जब चाहे बेगार के लिए हाँक ले जाते हैं। लगान वसूल लेते हैं, रसीद नहीं देते। बेदखली का कूत हमेशा सिर पर सवार रहता है। नजराने की रकम जोड़ते-जोड़ते उम्र बीत जाती है। कौसी रिसती, धुआँती-सी जिंदगी है उनकी। ... क्या कुछ नहीं हो सकता? जितना सोचते हैं, मन उतना ही उलझता जाता है।"[77]

एक सजग और परिस्थिति से परिचित नेता की तरह ही वह इस समस्या का समाधान खोजने को व्याकुल हो उठते हैं और समाधान के रूप में किसानों को संगठित करने का संकल्प लेते हैं। गाँव में मंदिर बनाने के बहाने लोगों में सामूहिक जीवन के भाव को फैलाते हैं और पंचायत की स्थापना करते हैं।

---

[77] बेदखल-पृ.36

सबसे पहले वे किसानों को उनकी परिस्थिति और पिछड़ेपन से परिचित कराते हैं। जिस स्थिति और समस्या के मूल को एक नेता होने के नाते वे समझ चुके थे उसका खुलासा वे किसानों के आगे प्रस्तुत करते हैं।

"तालुकेदार जब चाहे, लगान बढ़ा दे, आपको बेदखल कर दे, आपको बरबाद कर दे। आपके पास किसी का सहारा नहीं। हाकिम उनके, वकील-बालिस्टर उनके। कचहरी उनकी, पुलिस उनकी। आप डर के मारे घर में घुस पड़े हों ऐसे में क्या होगा?"[78]

यह सारे प्रश्न इस बात को प्रमाणित करती हैं कि बाबा रामचंद्र एक तटस्थ नेता थे और परिस्थिति का ज्ञान उन्हें अच्छी तरह से था। इन समस्याओं के निवारण और लोगों के मन में बसे डर को निकालने के लिए बाबा किसानों से चौदह मंत्रों की पतिज्ञा कराते हैं और आंदोलन कर अपने अधिकारों के प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

"मैंने चौदह मंत्रों की एक प्रतिज्ञा तैयार की है। हर किसान नर-नारी निड़र होकर ये चौदह मंत्र लें। मुसलमान किसान कुरान की ओर हिंदु किसान गंगा की कसम खाएँ कि हर हालत में ये वचन निभाएँगे और किसी से डरेंगे नहीं। ... अब मैं हर मंत्र को एक-एक कर पढूँगा और आप उसे दोहराएँगे।"[79]

अपने अधिकारों के लिए लड़ते रहे किसानों को आंदोलन में एकता और संगठित रूप से डटे रहने के लिए, क्या किया जाए, कैसे उनका मनोबल बाँधा जाए इस बारे में भी बाबा चिंतित रहते हैं। क्योंकि वे आंदोलन को सफल बनाकर किसानों को उनका अधिकार और प्राप्य देना चाहते हैं।

"हिंदु-मुसलमान, जाति-पाँति, ऊँच-नीच का भेद भुलाकर साथ-साथ दुःख-तकलीफें झेल रहे हैं। कैसा उफन है यह? कौन-सी आशा, कौन सा दर्द लेकर आए

---

[78] बेदखल-पृ.74

[79] बेदखल-पृ.74

हैं वे? उनसे क्या चाहते हैं? उन्हें कौन-सी बात बताई जाए कि उनका मनोबल बढ़े, वे संघर्ष में डटे रहें और यह आंदोलन आगे बढ़े।"[80]

अवध किसान आंदोलन और किसानों के अधिकार के माँग के प्रति बाबा रामचंद्र के समर्पणात्मक व्यवहार से कई लोग प्रोत्साहित होते हैं और अपने इलाके में सभाएँ आदि का आयोजन करा किसानों की समस्याओं पर विचार करते हैं।

एक जागरूक, कर्मठ, प्रतिबद्ध और स्वार्थहीन नेता की भाँति बाबा रामचंद्र किसान आंदोलन को आगे बढ़ाते हैं। लेकिन उस समय के राजनैतिक परिदृश्य और कांग्रेसी नेताओं के षडयंत्र में फँस कर उनका आंदोलन दिशाहीन हो जाता है। इन सबके पश्चात् भी उनका प्रभाव कम नहीं होता। किसानों के हक की लड़ाई में एकाग्रचित्त और समर्पित भावना न केवल उन्हें एक प्रभावशाली नेता बनाता है बल्कि इतिहास के पृष्ठों में उनका नाम दर्ज कराता है। "बाबा ने दो लाख हाथों को एक साथ ऊपर उठे देखा और उनकी आँखों में आँसू छलछला आए। उन्होंने भाव-विभोर होकर कहा-अवधपूरी के किसान भाइयों और बहनो, आपका सहयोग देख कर लगता है, आज मेरा जीवन सफल हो गया। आप मेरा कहा याद रखना। मुझे चाहे फाँसी हो, चाहे कालापानी, चाहे जेल, मैं आपके हक की लड़ाई लड़ता रहूँगा। आपके दुखों को दूर किए बिना मैं चैन नहीं लूँगा।"[81]

हरि

'और पसीना बहता रहा' उपन्यास का नायक और एक प्रभावी मजदूर नेता का उदाहरण है-हरि। हरि मूलतः गन्ने के खेतों में काम करनेवाला एक श्रमिक ही था। लेकिन परिस्थितियों का ज्ञान, अन्याय और शोषण के प्रति सजगता, सशक्त मनोबल और समाज के प्रति कर्तव्यनिष्ठता, हरि को मजदूर नेता बनाती है। वह न किसी संस्था से जुड़ता है और न ही अपने लाभ की मनसा से मजदूरों का अगुआ बनता है। वह मजदूरों में संगठन का ज्ञान और निर्माण की चेतना को फैलाता है,

---

[80] बेदखल-पृ.165
[81] बेदखल-पृ.167

उन्हें परिस्थितियों से अवगत कराता है, हड़ताल के लिए प्रोत्साहित कराता है और सबसे ऊपर उनमें राजनैतिक जागरण और महत्व की सीख देता है।

गन्ने के कारखानों और क्षेत्रों में काम कर रहे मज़दूरों के बीच संगठन के ज्ञान और उसकी शक्ति का बोध कराना हरि का प्रमुख उद्देश्य रहा। वह लोगों को संगठित होकर एकता के साथ अपनी समस्याओं का सामने करने का उपदेश देता और इसे कार्यान्वित करने के लिए वह गाँव-गाँव और विभिन्न कोठियों के मजदूरों से मिलता, सभाओं का आयोजन करता। उसकी यही चेष्टा रहती है कि अधिक से अधिक किसान और मजदूर सभाओं में भाग लें और संगठन के सदस्य बनें।

"हरि ने जब अपनी डायरी खोलकर देखी तो पाया था कि उन तीस-□लीस दिनों में पछहत्तर जुटाव करने पड़े थे। पहली बार हरि को लगा था कि उसकी बातों का मजदूरों पर भारी प्रभाव है।"[82]

मज़दूरों की स्थिति और शोषण के परिदृश्यों को वह चित्र का रूप दे देता था और अखबार में छपवाता था। यह चित्र शोषण के विभत्स रूप को ही प्रस्तुत करती थी। क्योंकि हरि श्रमिक जीवन की समस्याओं, विडंबनाओं और मजबूरियों से परिचित था।

"घर के भीतर खाली बैठे रहने की ऊब से राहत पाने के लिए वह कागज पर मज़दूरों के रेखाचित्र बनाता रहा। एक चित्र में उसने एक बैलगाड़ी पर कोठी-मालिक को बिठाया था और बैल की जगह एक दुबला-पतला मजदूर जुता हुआ था। एक सरदार चाबुक लिए मजदूर की नंगी पीठ पर वार कर रहा था। उन चित्रों का कथा संकेत हरि कभी फ्रेंच में लिख देता, कभी हिंदी में, कभी भोजपुरी में। ... एक बार उसके मन में आया था कि उन तमाम चित्रों को वह कोठियों और उनके दफ्तरों पर चिपका आए।"[83]

[82] और पसीना बहता रहा-पृ.138
[83] और पसीना बहता रहा-पृ.203

मजदूरों के उत्थान के लिए वह देश भर के पदयात्रा करने की योजना बनाता है ताकि पूरे देश के मजदूरों में संगठन के प्रति ज्ञान का विकास हो और हर कोई आंदोलन का हिस्सा बन पाए। इस योजना को सफल बनाने के लिए वह अपने परिवार और उसकी आवश्यकताओं को भी पीछे छोड़ देता है।

श्रमिक कल्याण की भावना रखनेवाले व्यक्ति के कंधों पर अनेक दायित्व रहते हैं जो कि महत्वपूर्ण और विशिष्ट होते हैं। अपने विवेक का प्रयोग और समर्पण की भावना ही इन दायित्वों के निर्वाह की शक्ति प्रदान करते हैं और परिणाम तक ले जाने का साहस देते हैं। इस कार्य के लिए अपने आराम, आवश्यकताओं और परिवार के मोह को त्यागना पड़ता है। लेबर कमिशनर जॉन क्लार्क हरि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं-

"कल शाम यह जानकर खुशी हुई कि देश-भर का आपका वह दौर शांति और सफलता के साथ संपन्न हुआ। हरिप्रसाद जी, मैं आपसे और आपकी गतिविधियों से तो प्रभावित हूँ ही, आपकी खासियत के सामने तो नतमस्तक हूँ। आप खुद भूखे रहकर और अपने परिवार को भी कष्टों में डालकर मजदूरों की भलाई में लगे हुए हैं।"[84]

कोठी मालिकों के योजनानुसार जब पुलिसवाले बैठिका में आए लोगों पर लाठी चार्ज करते हैं, और कई मजदूरों की हत्या भी हो जाती है। इससे हरि एकदम टूट जाता है पर वह हारता नहीं। वह फिर से मजदूरों को एकत्रित करता है। मजदूरों की एकता और आंदोलन के भय से सरकार एक आयोग का गठन करती है और मजदूरों की माँगें पूरी होती हैं।

"रिपोर्ट में यह भी माँग की गई कि बालिग मजदूरों को मतदान का अधिकार दिया जाए और यह भी कहा गया कि निर्धारित समय से अधिक काम करने पर मजदूरों को अलग से पारिश्रमिक मिले।"[85]

---

[84] और पसीना बहता रहा-पृ.219

[85] और पसीना बहता रहा-पृ.263

अपनी इस सफलता का पूरा श्रेय अपने नेता हरि को दिया। गाँव भर के मजदूर उसकी प्रशंसा करते न थकते। श्रमिकों के सामाजिक जीवन के उत्थान हेतु वह शराब विरोधी अभियान भी चलाता है। इस कारण पुलिस उसे गिरफ्तार भी कर लेती है। लेकिन इन्हीं जागरूक मजदूरों के प्रयास से जब हरि रिहा होता है तो एक जिम्मेदार मजदूर नेता के नाते वह कहता है-

"मैं उन सभी नेताओं, मित्रों, विद्वानों और तमाम मजदूर दोस्तों का आभार मानता हूँ जिनके प्रयास से आज मैं समय से पहले रिहा हो सका। शराब-विरोधी आंदोलन की सफलता के पीछे मजदूरों की एकता ही सबसे बड़ा कारण है। इस देश के मजदूरों के लिए अगर बार-बार जेल जाने के अवसर आए, तो भी मैं नहीं चूकूँगा। ... आप मेरे साथ पूरी ताकत से नारा लगाएँ-

"मजदूर आंदोलन जिंदाबाद।

मजदूर शक्ति जिंदाबाद।"[86]

हरि हर परिस्थिति में श्रमिकों के मनोबल बढ़ाता रहता है। उसे प्रोत्साहित करता रहता है और उन्हें यह एहसास भी दिलाता है कि वह हर हालात में उनका साथी है और रहेगा। उसका नेतृत्व प्रभावशाली और परिणामबोधक है।

मजदूर आंदोलन के लिए हरि के मन में निहित समर्पण की भावना ही उसे सबसे अलग और साहसी बनाता है। वह किसी भी स्थिति में मजदूरों को निराश नहीं करता। यह आंदोलन अब उसके जीवन का उद्देश्य बन चुके हैं। डॉ.क्यूरे उसकी गतिविधियों को देख कहते हैं-"यों इस आंदोलन से और भी कई नेता जुड़े हुए हैं। लेकिन तुम जैसे साहसी और समर्पित लोग बहुत कम मिलते हैं। मैं कल ही किसी को बता रहा था कि मजदूर आंदोलन तुम्हारे लिए महज एक आंदोलन नहीं, बल्कि तुम्हारा अपना जीवन बन गया है।"[87]

---

[86] और पसीना बहता रहा-पृ.263

[87] और पसीना बहता रहा-पृ.283

हरि का इस निःस्वार्थ भावना से श्रमिकों की उन्नति के कार्य में शामिल होना, उसके लिए बार-बार जेल जाने से भी पीछे न हटना और उनमें सामाजिक चेतना का प्रचार-प्रसार करना-यह सभी उसे एक प्रभावी मजदूर नेता के रूप में स्थापित करते हैं। यह एक ऐसा नेता है जिसके अथक परिश्रम और एक आह्वान से पूरे देश के श्रमिक एक हो लड़ने की ठान लेते हैं। इस प्रकार के नेताओं की आवश्यकता और महत्व को प्रस्तुत करते हुए हरि के वकील आंद्रे नेराक की यह उक्ति विशेष और शत-प्रतिशत सही है-

"देश की उन्नति के लिए बड़े-बड़े विद्वानों, डॉक्टरों, वकीलों, इंजीनियरों तथा धनपतियों से कहीं अधिक आवश्यकता साहसी, निःस्वार्थ और ईमानदार लोगों की होनी चाहिए। मेरा क्लायेंट केवल अपने चुनाव-क्षेत्र का ही नहीं, बल्कि पूरे देश का अत्यंत साहसी, निःस्वार्थ और ईमानदार नेता है।"[88]

हरि जैसे समर्पित और साहसी नेताओं की आवश्यकता देश को ओर देश के मजदूर वर्ग को आज भी है।

परिमल बाबू

परिमल बाबू अहिंसा के मार्ग को अपनानेवाले शांतिप्रिय व्यक्तित्व हैं। वे आंदोलनों या हड़ताल के पक्षधरी नहीं हैं। बल्कि अपने आप में सुधार और जागरण के विस्तार को ही वे समस्याओं के समाधान का मूल मानते हैं। अपने आप में बसे कुसंस्कारों, मलिनता और असभ्यता का दूरीकरण ही समाज के सर्वहारा वर्ग का उत्थान कर पाएगा इसी मंत्र को लेकर वे लोगों के बीच जाते और सभाओं का आयोजन करते।

समाज-सेवा की इस भावना को रूपरेखा प्रदान करने के लिए वे बिहार के गरीब और पिछड़े हुए श्रमिकों के बीच अपने आपको ले जाते हैं। वे युवाओं को अपनी सभा के तरफ आकर्षित करते हैं। सामाजिक उत्थान के बहाने ही वे श्रमिकों

---

[88] और पसीना बहता रहा-पृ.320

को सशक्त बनाना चाहते हैं, जिससे वे स्वयं अपनी दशा को प्रस्तुत करें और अपनी लड़ाई खुद लड़ें।

"हमें जत्थों में श्रमदान करना है। दुखियों की सेवा करनी है। गरीबों की पुकार सुननी है। उन्हें उस लायक बनाना है कि वे समर्थ हो जाएँ और अपनी बात कहने से उन्हें कोई रोक नहीं सके। इसके लिए हमें कष्ट उठाना पड़ सकता है। हमारा इस कारण विरोध भी होगा। पर हमें उसका सामना करना है।"[89]

मजदूरों में सामाजिक चेतना और अपने दुर्दशा के प्रति सजग बनाने के लिए गाँव-गाँव □या करते हैं। अजय और रूपाली के अनुरोध पर तथा सोनबरसा गाँव की परिस्थितियों की जानकारी के बाद वे वहाँ जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। रास्ते में अनेक असुविधाओं के पश्चात उन्हें अनदेखा कर वे अपने उद्देश्य पर डटे रहते हैं। "परिमल बाबू की कमर और पीठ एक हो गई थी। मारे दर्द के उनका बदन अकड़ रहा था। ... यह रामधानी पटना से जुड़े मुख्य मार्ग की दशा है। इस पर न जाने हमारे कितने नेता गुजरते हैं, पर किसी को इसकी परवाह क्यों हो। परिमल बाबू यही सोचते जा रहे थे।"[90]

सोनबरसा के लोगों के बीच साहस, आत्मविश्वास, एकता और संघर्ष करने की शक्ति का अकुंरोदय करने के पश्चात् वे वहाँ से किसी अन्य गाँव को जाना □हते हैं। "आप लोगों की लड़ाई में अजय और रूपाली भी साथ होंगे। इन्हें यहीं रहना है, मैं फिर आऊँगा और देखूँगा कि आप लोगों ने सोनबरसा के जंगल काट डाले हैं या नहीं।"[91]

सोनबरसा गाँव में परिमल बाबू की सबसे बड़ी उपलब्धि यही रहती है कि वे लोगों में कट्टर भाव दे बैठे। □ति-धर्म के भेदभाव को मिटाने का सकारात्मक प्रयास करते हैं। वे एक ब्राह्मण लड़का (अजय) और एक हरिजन लड़की (रूपाली) को इस गाँव के लोगों की लड़ाई का अगुआ बनाते हैं। वे □ते-जाते लोगों को न केवल

---

[89] सोनबरसा-पृ.66
[90] सोनबरसा-पृ.105
[91] सोनबरसा-पृ.139

स्थिति का ज्ञान कराते हैं, बल्कि उन्हें एक लक्ष्य भी देते हैं, जो उनमें नयी शक्ति, नए सोच-विचार और प्रगति की आशाओं को प्राप्त करने के लिए अग्रसरित होता है।

कॉमरेड लक्ष्मण माधव

कॉमरेड लक्ष्मण माधव मजदूरों का चहिता, प्रिय, विश्वसनीय और संपूर्ण रूप से क्रांति में विश्वास रखने वाला नेता है। वह स्वयं भी कंपनी में श्रमिक रह चुका है। अपने श्रमिक जीवन से ही उसने शोषण और गलत निर्णयों के विरुद्ध आवाज़ उठाया है। वह यह मान कर चलता है कि क्रांति, आंदोलन, हड़ताल यह सभी पदक्षेप ही श्रमिकों को उनका हक दिला सकता है।

कॉमरेड लक्ष्मण माधव जब एक साधारण सा श्रमिक था तब भी उसने पूँजीपतियों की मनमानी को नहीं सहा। उसके अपने साहस और आत्मविश्वास ने उसे हर अन्याय के विरुद्ध लड़ने को अग्रसारित करता रहा।

"लोगों को सिर्फ इतना याद है कि जब काँकरिया सेठ ने यहाँ सबसे पहली जिनिंग मिल खोली थी, तब जिनिंग मशीन का जाननेवाले जो मजदूर बाहर से आए थे उनमें लक्ष्मण माधव भी एक था। जब बीस दिन काम करने पर भी जगार नहीं बँटी और एडवांस के पैसों से खरीदा आटा-दाल खुट गया तो मशीन बंद करके और साथ के बीस-तीस मजदूरों को साथ लेकर लक्ष्मण माधव मैनेजर के दफ्तर के आगे जमीन पर अकड़ूँ बैठ गया था। उसी वक्त किसी को बैंक भेजकर पैसे मँगवाए गए थे और पगार बँटी थी।"[92]

परिस्थिति की आवश्यकता के अनुकूल और श्रमिकों की दयनीय स्थिति के अनुसार ही लक्ष्मण माधव ने हमेशा कदम उठाए हैं, जिसमें केवल मजदूरों के हित की भावना निहित रहती है। कपास फैक्ट्री के मजदूरों के पैंतीस दिन की पगार से आधी पगार बड़े ही अन्यायपूर्ण ढंग से इसलिए काट लिया जाता है क्योंकि वे फ्रैक्ट्री की जमीन पर झोपड़ी डाले बसे हुए हैं। लक्ष्मण माधव को भी निकाल दिया जाता है

[92] बीच में विनय-पृ.15

ताकि वह फिर से मालिक के विरुद्ध कोई काम न कर डाले। लेकिन लक्ष्मण माधव हार नहीं मानता।

"मैनेजर ने लक्ष्मण माधव का हिसाब कर दिया-पैंतीस रुपए चालीस नए पैसे, जिनसे वह वापस भी नहीं जा सकता था। ... बीस दिन तक फैक्ट्री बंद रही। कपास की आवक के मौसम में बीस दिन तक फैक्ट्री का बंद रहना मायना रखता था। लेकिन मजदूरों की सारी बातें सेठ को सुननी पड़ी। लक्ष्मण माधव को बहाल करना पड़ा। नया मैनेजर लगाया गया। फैक्ट्री चल पड़ी और लक्ष्मण माधव बगैर वोट-चुनाव, संस्था, सील-मुहर, रजिस्ट्रेशन-एफिलिएशन-रिकग्नीशन कांकरिया के मजदूरों का सर्वमान्य नेता बन गया।"[93]

श्रमिक से नेता बना लक्ष्मण माधव इसी तरह कॉमरेड भी बना था।

"गेट से घुसते ही एक गुमटीनुमा कमरा दिखाई देता है, जिस पर लाल झंडा फरफराता रहता है। लक्ष्मण माधव बीसियों बार पिटकर, नौकरी से निकाला जाकर, शहर से भगाया जाकर, चोरी-चकोरी-बलात्कार-लौंडेबाजी के इल्जाम में फँसवाया जाकर, पेशियाँ भुगत-भुगतकर, थाने की रोटियों का एक से अधिक बार स्वाद चखकर और अधिक मजदूरों का दिल और विश्वास जीत माधव से कॉमरेड लक्ष्मण माधव बन गया है।"[94]

मजदूरों को उनका हक दिलाने के लिए वह हर संभावित लड़ाई लड़ने को तैयार है। वह हक माँगने में नहीं वरन छीनने में विश्वास रखता था। क्योंकि उसका मानना था कि अब देश में जो भी शासन है वह सब धनपतियों के लिए और उनके हाथों में है। इस कारण सर्वहारा को क्रांती कर ही अपना प्राप्त लेना होगा।

"पर जनतंत्र हो गया धनतंत्र। वहाँ वही होगा, जो वे लोग चाहेंगे। तो आप कहाँ जाएँगे? आजादी तो है अपनी बात कहने की, पर साधन नहीं है। तो हमारा आदमी क्या करे? आप उसे पंचायत में घुसने नहीं दोगे, बिजनेस में बैठने नहीं दोगे,

---

[93] बीच में विनय-पृ.15
[94] बीच में विनय-पृ.16

अदालत में बैठने नहीं दोगे, पुलिस में घुसने नहीं दोगे... मजदूरी, खेती, हम्माली, कराओगे, उसमें भी वाजिब उजरत नहीं दोगे। तो क्या करेगा वह? फिर उसे सिद्धांत सिखाओगे। कुछ बोलेगा तो गुंडा बोलोगे। ऐसा कैसे चलेगा कॉमरेड? उसका भी कुछ हक है कि नहीं? अगर वे अपना हक माँगने की बजाय छीन लेता है तो आपको तो खुश होना चाहिए। जिसको आप गुंडागर्दी बोलते हो, मैं उसे मिलिटेंसी बोलता हूँ।"[95]

मार्क्सवाद और मार्क्सवादी क्रांति संबंधी विचारधारा को लक्ष्मण माधव इतना अधिक महत्व देते हैं क्योंकि वे सर्वहारा की शक्ति, एकता और मेहनत पर पूर्ण रूप से विश्वास करते हैं।

इस कारण लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, उस पर विश्वास करते हैं और उसका अनुसरण भी करते हैं। श्रमिक उससे इतनी मैत्री रखते हैं कि अपने दूकान का नामकरण उसके नाम पर करना चाहते हैं।

"एक दर्जी ने तो जिद ठान ली कि उसकी दुकान का नाम तो 'लक्ष्मण माधव टेलरिंग शॉप' ही होगा। बस, बहुत समझाने पर वह इस बात पर राजी हुआ कि चलो, लक्ष्मण टेलर कर देते हैं।"[96]

यह था लक्ष्मण माधव का अपने साथी मजदूरों पर प्रभाव।

गोविंद

गोविंद एक युवा श्रमिक नेता है जिसके पिता ठाकुर जंगबहादुर सिंह के यहाँ रैयत पर जमीन लेकर अपना जीवन-यापन कर रहे थे और बाद में ठाकुर के गलत इरादों के कारण उनसे एकमात्र साधक को भी छीन लिया गया। स्वयं श्रमिक न होने के पश्चात भी गोविंद ने एक श्रमिक जीवन को पास से देखा और भोगा है। उस जीवन की विडंबनाओं, उपेक्षा और अभाव के साथ पला-ब[illegible] है। इस कारण कालांतर में अपनी जंगबहादुर के कारखाने को ही अपने कार्यक्षेत्र के रूप में चुनता

[95] बीच में विनय-पृ.133
[96] बीच में विनय-पृ.232

है और श्रमिकों के उत्थान, अधिकार और सुधार के लिए काम करता है। एक मजदूर नेता होने के कारण वह न केवल श्रमिकों की हक की लड़ाई लड़ता है बल्कि उनमें जागरूकता फैला कर उन्हें हड़ताल के लिए भी प्रेरित करता है।

गोविंद हमेशा से ही मजदूरों के उत्थान के लिए कोई सराहनीय काम करना चाहता था और उनका नेता बनाना भी। "बात तो ठीक थी। वह सचमुच नेता ही बनना चाहता था-बोनस दिलवाकर या हड़ताल करवाकर।"[97]

लेकिन जब उसे इस बात की अनुभूति होती है कि मजदूर बने बिना, कोई भी मजदूरों का विश्वासपात्र नहीं बन सकता, तो वह भी मजदूर बनने की बात और मजदूरी करने की ठानता है। क्योंकि वह अपने शत-प्रतिशत शक्ति, बुद्धि और विवेक से श्रमिकों की ओर से लड़ना चाहता था। उनका विश्वास जीतना चाहता है।

"अगर इसी विचार-प्रक्रिया से गुजरते हुए मजदूर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि वह मैनेजमेंट का आदमी है, तो यह सत्य न होते हुए भी क्या स्वाभाविक नहीं है? नहीं! मजदूरों में काम करने के लिए इसे खुद भी मजदूर बनना पड़ेगा।"[98]

एक अच्छे मजदूर नेता के क्या दायित्व होते हैं और उसके क्या मायने होते हैं उसे गोविंद खूब अच्छी तरह से समझ चुका था। वह इस बात का बखूबी ज्ञान रखता था कि मजदूर संगठन के नेता का क्या कार्य होता है। वह अपने पिता को समझाते हुए कहता है-"ओह बाबू! 'किसकटरी' नहीं, 'सेक्रेटरी' यानी मंत्री जो यूनियन का काम संभालता है और मजदूरों के हितों, उनके पावनों के लिए जरूरी कार्रवाई करता है।"[99]

गोविंद एक ईमानदार और अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित नेता है। क्योंकि जंगबहादुर की अनेक प्रस्ताव को ठुकरा कर वह श्रमिकों के हित के लिए डटा रहता है।

---

[97] धारा के बीच में-पृ.126
[98] धार के बीच से-पृ.126
[99] धार के बीच से-पृ.120

वह मजदूरों की माँगों का सीधा प्रस्तुतीकरण करता है। जंगबहादुर अनेक कोशिश करते हैं कि मजदूरों को बोनस न दी जाए। लेकिन गोविंद सारी दलीलें उनके सामने प्रस्तुत करता है और बोनस की माँग करता है।

"उस दिन मजदूरों की माँग लेकर वह बाबू साहब के ऑफिस में आया। माँग बोनस की थी। उसका कहना था कि 'सुगर मिल्स' को गत वर्ष वास्तव में सात लाख का मुनाफा हुआ था। उसे छिपाने के लिए बैलेंस शीट में प्लांट विस्तार एवं प्लांट सामग्री की खरीद के मद खर्च दिखलाकर मुनाफे की जगह घाटे की रकम प्रस्तुत की गई है। यह इसलिए कि इनकम टैक्स और मजदूरों के बोनस की रकम मारी जा सके।"[100]

बोनस की माँग को वापस लेने के लिए और हड़ताल आदि की नौबत न लाने के लिए जंगबहादुर उसे अनेक प्रलोभन भी देते हैं। लेकिन गोविंद उन्हें ठुकराता है और कहता है-

"मैं चाटर्ड एकाउंटेंट या लेबर वेलफेयर ऑफीसर नहीं हूँ, मैं मजदूरों का प्रतिनिधि हूँ। उनके हक के खिलाफ मैं किसी कीमत पर समझौता नहीं कर सकता, यह आप जान लें, और आइंदा इस तरह का प्रस्ताव कृपया मेरे सामने न रखें। या तो मजदूरों को उनका उचित बोनस दिया जाय, वरना मुझे स्ट्राइक नोटिस देने को मजबूर होना पड़ेगा।"[101]

मजदूरों की माँग और अधिकार को ही वह सर्वोपरि मानता है। उसकी इस मनसा से उसे कोई अलग नहीं कर सकता। कोई प्रलोभन या प्रस्ताव उसे पिछलगुआ नहीं बना सकता। गोविंद के इन्हीं गुणों के कारण मजदूर उसके पक्षधर थे और उसे मानते थे। मैनेजमेंट की साजिशों के कारण गोविंद पर झूठा इलजाम लगाकर उसे हटाया जाता है लेकिन फिर से मजदूरों के समर्थन और बहुमत के कारण वह वापस

---

[100] धारा के बीच से-पृ.114
[101] धारा के बीच से-पृ.115

यूनियन नेता के रूप में चयनित होकर आता है। अब गोविंद का प्रथम लक्ष्य श्रमिकों में सही-गलत का जागृति को फैलाना है।

"मजदूरों से हर हालत में जुड़ा रहना है, गोविंद ने कहा, "उन्हें जागरूक रखने की कोशिश जारी रहनी चाहिए, ताकि दोस्त और दुश्मन की सही पहचान हो उन्हें और वे किसी तरह गलत प्रचार से गुमराह न हों।"[102]

गोविंद अपनी प्रतिबद्धता और प्रयासों के कारण मजदूरों को संगठित करने में सफल होता है। श्रमिकों को उस पर पूरा विश्वास है। वे जानते हैं गोविंद जो भी करेगा उनकी भलाई का लक्ष्य रखकर ही करेगा। उसका प्रभाव इतना है कि उसके एक इशारे पर लोग हड़ताल पर उतरने को तैयार रहते हैं। शैलेश गोविंद से कहता है-

"कॉमरेड, हौसला तो इतना बुलंद है कि हम लोग इंतजार में हैं उस निर्धारित तिथि के। उस दिन आप देखेंगे कि मजदूर कितने संगठित हैं। आपके एक इशारे पर वे मरने-मारने को तैयार हैं।"[103]

एक प्रभावी मजदूर नेता होने के नाते गोविंद न केवल श्रमिकों को उनका बोनस दिलाने के लिए संगठित रूप से हड़ताल करवाता है, वरन उसके हक की लड़ाई लड़ते-लड़ते अपने प्राण भी त्यागता है। मजदूरों को उनकी बोनस, मजूरी में पाँच प्रतिशत वृत्रि आदि सभी माँगों का सहर्ष स्वागत किया जाता है।

अन्ना साहब

'आवां' उपन्यास में अन्ना साहब का चरित्र एक बड़े ही प्रतिभासंपन्न और जनता में प्रभावित मजदूर नेता के रूप में है। इस उपन्यास में चित्रा मुद्गल ने 'अन्ना साहब' पात्र के माध्यम से संगठन के नेताओं के वास्तविक चरित्र को उखेरा है। एक तरफ जहाँ वह श्रमिकों का मसीहा है वहीं दूसरी तरफ राजनैतिक सत्ताधिकार का लोभी भी। उसका चरित्र एक तरफ श्रमिकों की अवस्था और दीनता

---

[102] धारा के बीच से-पृ.220

[103] धारा के बीच से-पृ.285

देख आँसू बहाता है तो दूसरी तरफ नमिता जैसे सरल मध्यवर्गीय लड़की का यौन शोषण भी करता है।

अन्ना साहब 'कामगार अघाड़ी' नामक मजदूर संगठन के मुख्य हैं। वे मजदूरों में सबसे अधिक प्रभावी हैं और अन्य संगठन के नेताओं पर भी उनका दबदबा रहता है। जब मंच पर अपने श्रमिक भाइयों और बहनों को संबोधित करते थे तब वे सिंह की तरह गरजते थे, कि उनकी आवाज़ मन-मस्तिष्क पर अपना प्रभाव दिखाए। श्रमिकों के उद्धार और विकास के लिए उन्होंने अपने आपको पूर्ण रूप से समर्पित किया है। इस कारण देश का एक प्रभावी व्यक्तित्व होने के बाद भी श्रमिकोत्थान के लिए वे राजनति का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं-"श्रमिकों की अस्मिता का प्रश्न मेरे लिए राजनीति का खेल नहीं। समता अर्जन का धधकता हुआ संघर्ष है। अपने रक्त की... रक्त की आखिरी बूंद तक मैं इस लड़ाई को जारी रखूँगा।"[104]

श्रमिकों तथा संगठन के अन्य कर्मचारियों के बीच वे अपनी ईमानदारी और निष्ठा के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी प्रशंसा में देवीशंकर कहते हैं-"प्रतिदान का लहू पिए बिना पूँजीपति की अनुकंपा संतुष्ट नहीं होती। मालिकों की जमात से वे जब भी मिलने जाते हैं, नियम है उनका, उनकी एक कप चाय तक नहीं छूते।"[105]

अन्ना साहब अपने आपको मजदूरों के बीच इस प्रकार प्रतिष्ठित कर चुके हैं कि उनकी आह्वान पर अनेक सघन और सफल आंदोलन हो चुके हैं। उनकी एक पुकार पर लाखों श्रमिक रास्ते पर उतर आते हैं। सत्ता, सरकार सब उनके आगे झुकती है। श्रमिकों के सामने मालिकों और प्रबंधन की वास्तविकता और षडयंत्रों का पर्दाफाश करते हैं और श्रमिकों को अपने हक की लड़ाई लड़ने के लिए उत्साहित करते हैं-"मैं आप सबसे इन षडयंत्रों के खिलाफ मुट्ठियाँ तान प्रतिवाद का आह्वान

[104] आवां-पृ.178
[105] आवां-पृ.73

करता हूँ। चौदह तारीख हमारे लिए यज्ञ की तारीख है, भाइयों। मैं रहूँ न रहूँ, कामगार अघाड़ी का हवन-कुंड सतत् प्रज्ज्वलित रहना चाहिए।"[106]

लेकिन उपन्यासकार अन्ना साहब के माध्यम से आधुनिक युग के संगठन नेताओं की वास्तविकता को प्रस्तुत करती हैं। श्रमिकों के हितैषी अन्ना साहब अंत में राजनैतिक सत्तालोलुपता के शिकार होते हैं। इतना ही नहीं इस प्रकार के नेताओं के व्यक्तित्व का एक अलग और विभत्स पक्ष भी प्रस्तुत किया है। अपने ही सहकर्मी और साथी देवीशंकर की बेटी नमिता के साथ अन्ना साहब का यौन शोषण। इस घटना पर उन्हें कोई अफसोस नहीं होता। वे संबंधों और आत्मीयता को ताक में रखकर अपनी वासना को पूरा करते हैं। प्रतिवाद करती नमिता से कहते हैं-"देखो! दोस्त की बेटी हो तुम, बेटी नहीं हो मेरी। पिता समान हूँ मैं तुम्हारे, पिता नहीं हूँ। ... न छुड़ाने की कोशिश करो, न उठने की... कहा न पिता नहीं हूँ, पिता समान हूँ।"[107] अन्ना साहब के चरित्र के इस पक्ष को उजागर करते हुए उपन्यासकार मजदूर नेताओं के दोनों ही पक्ष सकारात्मक एवं नकारात्मक, सामाजिक और व्यक्तिगत-सभी पक्ष को सामने लाता है। आज वास्तविकता यही है। अधिक से अधिक मजदूर नेता अपने मूल लक्ष्य से हटकर अपने व्यक्तित्व लाभ और स्वार्थ पर केंद्रित हो रहे हैं।

भारतीय श्रमिक वर्ग के इतिहास में श्रमिक संगठनों का निर्माण न केवल उन्हें पिछड़ेपन और अज्ञानता की दलदल से उभारकर बाहर लाने का काम करता है, बल्कि उनमें अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष करने की क्षमता को भी उजागर कराता है। श्रमिकों की सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक स्थिति के सुधार और विकास में इन संगठनों का प्रमुख योगदान रहा है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक श्रमिक संगठन अपनी भूमिका में निष्क्रिय और अपने दायित्वों के प्रति उदासीन नज़र आ रहा है। राजनीतिक सत्ता और शक्ति प्राप्त करने की चाह तथा प्रबंधन के प्रलोभनों के आगे यह श्रमिक वर्ग और उसकी समस्याओं से दूर हटता जा रहा है।

[106] आवां-पृ.179
[107] आवां-पृ.136

अब यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों और श्रमिकों के बीच बिचौलिये सा काम कर रहा है। वर्तमान समय में श्रमिकों की स्थिति के सुधार का सबसे बड़ा दायित्व जिन कंधों पर है, वह स्थितियों से अवगत होकर उनके समाधान के प्रति सकारात्मक कदम उठाएँ, जिसके फलस्वरूप प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से श्रमिक वर्ग का विकास हो पाएगा।

श्रामिकों की अबोधता, संगठन की राजनीति, कार्यकर्ताओं का पद और सत्ताधिकार की उच्च आशाएँ और इन सबके साथ पूँजीपतियों की कूटनीति यह सब जब एक साथ मिलकर अपना काम करती हैं, तो संगठन अपनी परिभाषा से हटकर अगल एक नकारात्मक और शोषक वर्ग का रूप धारण कर लेता है।

श्रमिकों का सिपाही, श्रमिकों के लिए लड़ने वाला, श्रमिकों के अधिकार और सुरक्षा के लिए कटिबद्ध उसका सुरक्षा कवच, संगठन जब पूँजीपतियों के हाथों का कठपुतली बन जाता है और उनके इरादों पर नाच उनकी योजनाओं को व्यावहारिक रूप देने के लिए इन्हीं बेसहारा श्रमिकों को ही अपना मुहरा बनाता है, तब वह संगठन का सबसे बड़ा विफल और नकारात्मक पक्ष कहा जाता है।

* * *

चतुर्थ अध्याय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : विविध परिस्थितियाँ

1. सामाजिक परिस्थितियाँ
    - 1.1 आपसी संबंध
    - 1.2 शहर का डर
    - 1.3 विविध सामाजिक कार्यक्रम
    - 1.4 समाज कल्याण की भावना
    - 1.5 सरकारी उपेक्षाएँ
2. आर्थिक परिस्थितियाँ
    - 2.1 गरीबी
    - 2.2 मौलिक आवश्यकताओं का अभाव
    - 2.3 इच्छाओं का दमन
    - 2.4 वेतन जनित समस्याएँ
    - 2.5 अर्थाभाव व मूल्य-विघटन
3. राजनैतिक परिस्थितियाँ
    - 3.1 राजनीति और श्रमिक
    - 3.2 राजनैतिक शोषण और श्रमिक
    - 3.3 वोट
4. धार्मिक परिस्थितियाँ
    - 4.1 धार्मिक भेदभाव
    - 4.2 भगवान और भाग्य
    - 4.3 धार्मिक समता का प्रयास

चतुर्थ अध्याय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : विविध परिस्थितियाँ

समाज में रह रहे प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग का जीवन उसकी विभिन्न परिस्थितियों के वृत्त में ही समाया हुआ रहता है। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज के सभी परिवर्तन और कारक तत्व तथा इकाइयाँ उसके जीवन को प्रभावित करती हैं। इन प्रभावों के फलस्वरूप उसका जीवन विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करने लगता है तथा इसका अनुभव कर ही निरंतर आगे बढ़ता है।

1. सामाजिक परिस्थितियाँ

किसी समाज या उसके समूह का अंग होने के कारण, व्यक्ति विशेष का अन्य लोगों के साथ व्यवहार, संबंध, प्रतिक्रियाएँ एवं उसके सोच-विचार यह सभी तथ्य एक तरफ उसके व्यक्तित्व को प्रस्तुत करते हैं तथा दूसरी तरफ विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में उसके समायोजन और सहकारिता की शक्ति को भी प्रस्तुत करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की विचारधारा और मान्यताएँ अलग होती हैं। परंतु जब वह किसी निर्दिष्ट समाज में दूसरे लोगों के साथ एक सामाजिक जीवन जीता है और सामाजिक संबंध स्थापित करता है तब उसे अपने आपको समाज की आवश्यकता के साथ परिवर्तित भी करना पड़ता है और बहुत हद तक सुधारना भी पड़ता है। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते वह समाज से कट कर या अलग होकर नहीं रह सकता। एक संगठन के रूप में, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को एक सूत्र में बाँधे रखने के लिए समाज द्वारा विभिन्न धरातल पर कुछ नैतिक और मानवीय मूल्यों, संस्कारों और मान्यताओं की स्थापना की गई, जिसके प्रभाव से और जिससे बंधे रहकर व्यक्ति

एक सुगम और व्यवस्थित सामाजिक जीवन होता है। यह मान्यताएँ व मूल्य आदि समय और व्यक्तियों की मानसिकता के साथ-साथ बदलते भी रहे हैं। इसके फलस्वरूप 'सामाजिक परिवर्तन' की अवधारणा भी सामने उभरकर आयी। इन सामाजिक परिवर्तनों के प्रभाव में व्यक्ति का निजी व्यक्तित्व और समाज के अन्य लोगों के साथ उसका संबंध, परिवर्तनों को ग्रहण करने या उससे बचने की उसकी क्षमता और इन सबके साथ समाज के प्रति उसका कर्तव्य-यह सभी तथ्य उसकी सामाजिक परिस्थितियों को निर्धारित करती हैं।

भारत के श्रमिक वर्ग का जन्म प्राचीन सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया और संबंधों पर नवीकरण और आधुनिकता के वर्चस्व के फलस्वरूप हुआ। आधुनिक तकनीकी समाज के विकास के फलस्वरूप उत्पन्न नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं तथा पूँजीवादी सभ्यता का इस पर एकल अधिकार के परिणामस्वरूप भारत का सामाजिक परिदृश्य, जो संस्कारों, मूल्य और संबंधों के वैशिष्ट्य के आधार पर संचालित था वह बहुत ज्यादा बिगड़ने लगा। इसका सबसे अधिक प्रभाव निःसंदेह भारत के मध्य वर्ग पर पड़ा। लेकिन समाज का श्रमिक वर्ग भी इससे अनछुआ नहीं रहा। गाँव की पारंपरिकता टूटने के साथ ही उसके विचार, उसका आपसी संबंध टूटा। शहरीकरण और औद्योगीकरण के फलस्वरूप विस्थापन की प्रक्रिया में वह शहर भी भागदौड़ में पिछड़ा हुआ रह गया। आधुनिकता से कोसों दूर, इस श्रमिक वर्ग को सामाजिक परिवर्तनों और परिवर्तित परिस्थितियों की कसौटी पर परखा गया है, जो इस वर्ग के लिए सदैव चुनौतीपूर्ण रहा है।

1.1 आपसी संबंध

एक समूह के रूप में दूसरे लोगों के साथ एकत्रित हो तथा जुड़कर रहने के कारण समाज के लोगों के बीच सामाजिक संबंध विकसित होते हैं। अपनी समस्याओं, जटिलताओं, कुंठा, ग्लानि आदि भावों में लोग एक दूसरे के साथ बाँटते हुए, आपसी संबंध प्रतिष्ठित करते हैं। एक दूसरे की सहायता करना एक दूसरे पर भरोसा करना इनके आपसी संबंधों का द्योतक है। ये संबंध सामाजिक

संबंध भी होते हैं, पारिवारिक भी होते हैं तथा व्यक्तिगत भी होते हैं। इस कारण समाज को मानव संबंधों की पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। "इसमें प्रत्येक मानव अपने आत्मविस्तार, आत्म संरक्षण और आत्मोपलब्धि का प्रयास करता हुआ भी एक व्यवस्था में रहता है। यह सामाजिक लक्षण मानवीय जीवन के समान ही संगठित, गतिशील और परिवर्तनशील है।"[1] इसलिए कहा जा सकता है कि समाज की रूपरेखा और परिवर्तन तथा व्यक्ति का समूह के साथ आपसी संबंध एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

समाज में व्यक्तियों का आपसी संबंध एक दूसरे के प्रति भरोसे, प्रेम और भाईचारे के आधार पर बनता है। समस्या के समय एक दूसरे की सहायता करना, अपनी मनःस्थितियों को बाँटना, मिलकर खान-पान करना और विपदा में भी सुख का अनुभव करना यह सब आपसी संबंध और मेल मिलाप का ही परिणाम होता है। श्रमिकों का आपसी संबंध उनके दिन चर्या का ही अंग है। श्रम करने के दौरान न केवल श्रम बाँटकर एक दूसरे की सहायता करते हैं, वरन बातचीत के द्वारा अपनी स्थितियों की चर्चा भी करते हैं।

'नरककुंड में बास' उपन्यास में बस अड्डे के श्रमिकों और चमड़े कारखाने के श्रमिकों के सामाजिक संबंधों का चित्रण देखने को मिलता है। बस अड्डे के श्रमिक आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे की ड्यूटी बाँट लेते हैं। अगर कोई छुट्टी पर जाता है तो उसकी जगह दूसरा उसके हिस्से का काम कर लेता है। सभी लोग आपसी सहकारिता के साथ काम करते हैं। श्रमिकों के बीच मिल-बाँटकर खाने का स्वभाव, उनके आपसी संबंधों को और गहरा रूप और परिपक्वता प्रदान करता है। बस अड्डे में सभी लोग बिना किसी भेदभाव के एक दूसरे का खाना बाँटकर खाते हैं। "वे □ारों बरामदे में आ बैठे। सोमे ने मनसुख की पोटली से दो अलग लपेटी रोटियाँ निकाल लीं और पोटली को दोबारा बाँध ली। रोटियों की तहें खोल उसने अचार को सूंघा।

[1] समाज एवं संस्कृति, डॉ.सावित्री चंद्र शोभा-पृ.1

फिर अपने साथियों पर नज़र डाली, 'आओ सज्जनो। एक-एक ग्राही (ग्रास) हो जाए।'"[2]

एक-दूसरे के साथ अपना सामान बाँटकर वे एक अनौपचारिक रिश्ते में बंधे रहना चाहते थे, जिसमें कोई छल-कपट या द्वेष नहीं रहता था। 'नदी फिर लौट आई' में लेखक ने मजदूरों के इसी मनोभाव को चित्रित किया है। "गोविंदा ने भी अपनी पोटली खोली। ज्वार के टिक्कड़ पर मिर्ची की चटनी रखी थी। एक मजदूर के पास दो-तीन प्याज़ थे। उसने एक पूरा प्याज गोविंदा की ओर फेंका। गोविंदा ने बिना कुछ कहे प्याज छील दिया। जैसे इस लेन-देन में उन लोगों को कोई हिचक, संकोच नहीं है। सभी एक-दूसरे के बीच रहते हैं रहना चाहते हैं। शिकायत, दुख-दर्द सभी एक साथ बाँट लेना जानते हैं, बाँट लेते हैं।"[3]

श्रमिक वर्ग आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़ा हुआ होने के कारण जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से ही सुख प्राप्त कर एक सुखद जीवन जीने का प्रयास करता है। आज भी श्रमिक वर्ग सामान का आदान-प्रदान कर अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है। यह आदान-प्रदान या लेन-देन आर्थिक आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए नहीं वरन सामाजिक संबंधों की घनिष्ठता को बढ़ाने के लिए है। 'लहरों की बेटी' उपन्यास में लखन और लछमन की बातें इस कथ्य को स्पष्ट करती हैं। "लछमन जब उसे पैसे देने लगा तो लखन ने कहा, "साले तू पहले मुझ से उन सारे सब्जियों के, पौधों और बीजों के पैसे ले ले, तब मैं तुझसे मछलियों के पैसे लूँगा।"[4]

'नरककुंड में बास' उपन्यास में श्रमिकों की आपसी सहायता और आपसी संबंध को बड़े ही सहजता के साथ सामाजिक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। गाँव से भाग आए 'काली' को शहर में बस अड्डे और रेढ़ा खींचने वाले श्रमिक ही सहायता करते हैं। वे न केवल कांती के लिए काम जुगाड़ने में मदद करते हैं वरन

---

[2] नरककुंड में बास-पृ.26
[3] नदी फिर लौट आई-पृ.123
[4] लहरों की बेटी-पृ.54

उसके रहने की सहूलियत भी देते हैं। "जब तक माँझा ठीक नहीं होता, तू हमारे साथ काम करेगा। उसके ठीक होने में दो-चार दिन तो लग ही जाएँगे। x x x माँझा को काम करने पर सवा रुपया मिलता है। क्योंकि तू उसकी जगह पर काम करेगा इसलिए आधी दिहाड़ी उसे और आधी तुम्हें मिलेगी। रोटी नहीं खाएगा लेकिन दवा-दारू का खर्च तो है।"[5]

काली को एक तरफ जहाँ अपरिचित शहर में रोजगार मिल जाता है वहीं चमड़े कारखाने के साथी मजदूर उसे रात गुजारने के लिए अपने ठिकाने पर आश्रय देते हैं। "पहलवान, काम बने या न बने, शाम को तुम यहीं लौट आना। जब तक तुम्हारा कहीं पक्का ठिकाना नहीं बनता, इस कमरे को ही अपना घर समझो। हमें कोई फर्क नहीं पड़ता।"[6]

विषम परिस्थितियों में एक-दूसरे की सहायता करना श्रमिक वर्ग पुण्य कमाना समझता है। उन विषम परिस्थितियों का अनुभव उसे रहता ही है। इस कारण वह दूसरे श्रमिकों की सहायता बिना किसी शर्त पर करता है। मदद पाकर माँझा किशने से कहता है-"यारा, जरूरतमंद की मदद करने, भूखे को रोटी देने और बे आसरा को आसरा देना बहुत बड़ा पुण्य माना जाता है, लेकिन बेकार को रोजगार देना या दिलाना सब से बड़ा पुण्य है।"[7]

श्रमिकों की आर्थिक स्थिति कभी भी स्थिर नहीं रहती और वह एक अभावग्रस्त जीवन जीता है। इसलिए शादी-ब्याह जैसे कार्यक्रमों में वे एक दूसरे की आर्थिक सहायता, अपनी हैसियत के अनुसार करते हैं। 'लहरों की बेटी' उपन्यास में जब दुलारी और लखन की शादी होती है तब पूरा गाँव उनकी सहायता करता है। कोई दाल-चावल की जिम्मेदारी लेता है तो कोई भाजी-सब्जी की। इस प्रकार का लेन-देन इन श्रमिकों को एक-दूसरे के साथ घनिष्ठता से बाँधे रखने का कार्य करता है। चमड़े के कारखाने से बहुत कम दिहाड़ी मिलने के बावजूद किशना अपने बीमार

---

[5] नरककुंड में बास-पृ.88
[6] नरककुंड में बास-पृ.122
[7] नरककुंड में बास-पृ.132

पड़े साथी नंजू की आर्थिक सहायता करने से पीछे नहीं हटता। किशने से पैसा लेने से इनकार करता हुआ नंजू उससे कहता है-"यह क्या?"

"चाचा मैं तेरा शागिर्द रहा हूँ। तेरे से काम सीखा है।" किशने ने आग्रह किया।

"मैं कहता हूँ रहने दे। तू आप टब्बरदार है। महँगाई इतनी बढ़ गई है कि घर के खर्चे चलाना मुश्किल हो रहा है।"

"नहीं चाचा रख लो। तुम्हारी टहल-सेवा करना मेरा भी तो फर्ज बनता है।"[8]

'और पसीना बहता रहा' उपन्यास में भी गाँव के गरीब श्रमिक, जो मूलतः बंधुआ मजदूर हैं, अपने यूनियन के नेता हरि की सहायता करते हैं। जब कोठी मालिक हरि को उसकी नौकरी से निकाल देता है तथा हर जगह उसका प्रवेश निषेध कर देता है तब गाँव का हर श्रमिक उसकी मदद के लिए आ खड़ा होता है।

"यह किसी एक आदमी की ओर से नहीं, गाँव के सभी लोगों का सहयोग है इसमें। इससे इनकार का मतलब होगा, सभी का अपमान करना। x x x पूरे आठ दिन बाद उस शाम को उसके घर भात बना था। आज दो सप्ताह बाद तीसरी बार वे लोग उसके यहाँ अनाज पहुँचा गए थे। एक दूसरी टोकरी में परकाश के यहाँ से आई हुई सब्जियाँ भी थीं।"[9]

लोगों की इस सहायता से हरि भावुक हो उठता है और उसे अपने श्रमिक भाइयों के सामाजिक दायित्व और एकता के प्रति गर्व महसूस होता है।

श्रमिकों के जीवन में व्यस्तता का अर्थ है जीविकोपार्जन के लिए सदैव श्रम करते रहना। श्रमिक अपनी जीविका में इतना अधिक जुड़ा रहता है कि उसे एक सामाजिक जीवन व्यतीत करने का सही मौका नहीं मिलता। इस कारण वह छोटा हो या बड़ा, जब भी मौका मिलता है किसी समूह या सामूहिक कार्यक्रम से जुड़ता है। इससे जहाँ एक तरफ वह सामाजिक जीवन जी सकता है वहीं दूसरी तरफ इस मेल

---

[8] नरककुंड में बास-पृ.180

[9] और पसीना बहता रहा-पृ.202

मिलाप में अपने जीवन के दु:ख को कम करने की कोशिश करता है और सामाजिक संबंध भी स्थापित कर पाता है। इसलिए जब गाँव में मंदिर बनने का प्रस्ताव रखा जाता है तब गाँव के किसान और खेतिहर श्रमिक उसमें भाग लेते हैं और संतोष पाते हैं। "मंदिर बनकर तैयार हो गया। पुरानी मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा हुई और गाँव-भर का भोज हुआ। जिस काम के लिए पंचायत बनी थी वह पूरा हो गया पर पंचायत □लती रही। लोग खुश थे, सामूहिक शक्ति के एहसास से उनमें एक नया विश्वास आ गया था। धीरे-धीरे पंचायत में दीवानी और फौजदारी के बड़े-बड़े मामले भी सुलझने लगे।"[10]

जीवनदत्त फौज से अपाहिज-अवस्था में वापस अपने मछुआरे जीवन और समाज में लौट आने के बाद अपने साथियों और हमउम्र लड़कों के साथ मिलकर सामूहिक रूप में काम की योजनाएँ बनाता है। "मैं और गौतम, हम दोनों मिलकर एक काम शुरू करने □ा रहे हैं। उस काम में मैं अपना दिमाग और पैसे लगाऊँगा और गौतम, सलीम, टोनी मिलकर मेहनत करेंगे। अपने मेजर के सुझावों पर मैंने यह योजना बनाई है। अगर यह चल पड़ी तो आगे चलकर यहाँ के और भी नौजवानों को हम शामिल कर पाएँगे।"[11]

इस प्रकार के सामूहिक कार्य में लोग आनंद लेते हैं। अपने दिन भर के कठिन परिश्रम की थकान को भुलाने और जवीन में, यह उत्साह लाने का एक माध्यम बनता है। इससे वे समाज की गतिविधियों से भी जुड़े रहते हैं। गाँव में एक अनौपचारिक पंचायत की स्थापना लोगों के जीवन को गतिमान बनाता है। "चुने गए कार्यकर्ताओं के अलावा कुछ और लोग भी सक्रिय हो गए और अपने-आप गाँववालों के झगड़े-निपटाने और सुबह कारखाने का काम करने लगे। दिन-भर तो लोग काम-धाम में लगे रहते, उजली रात देखकर खवाई-पिआई के बाद पंचायत जुड़ती। कभी-कभी

---

[10] बेदखल-पृ.38

[11] लहरों की बेटी-पृ.144

भजन और गाना बजाना भी होता। लोगों को सामूहिक जीवन का रस आने लगा। उनमें एक अजीब-सा आलस था।"[12]

श्रम की खोज में अधिक से अधिक श्रमिक शहरों की ओर आते हैं और शहर में ही अपने वर्ग के अन्य लोगों के साथ संपर्क स्थापित कर लेते हैं। एक-दूसरे के प्रति अजनबीपन उन्हें एक अनकहे संबंध में बाँधे रखता और समय के साथ यह संबंध गहरा होता जाता है। शहर में अजनबी और एक दूसरे से अनजान होने के बावजूद भी काली का किशने और उसके परिवार के साथ गहरा संबंध स्थापित होता है। वह किशने के छोटे भाई कल्लू को अपना ही भाई समझता है और उसके बच्चों को खुश करने के लिए बार-बार मिठाई लेकर जाता है। किशने के गरीब परिवार से मिला आदर और स्नेह काली के लिए बहुत मूल्यवान बन जाता है। "सीधा लेट आकाश में फैले सितारों को देखने लगा। उसे महसूस हुआ कि बहुत लंबे अंतराल के बाद उसे सुख मिला है। भाभी, बच्चों का प्यार, घर की रोटी... आत्मीयता...।"[13]

एक दूसरे के प्रति इसी आत्मीयता के कारण अपने निम्न स्तरीय जीवन-शैली में भी वे एक दूसरे की परवाह करते हैं। सागर में तूफान में फंसे अपने मछुआरे साथियों की वापसी को लेकर विदुला चिंतित हो उठती है। "उस दूर के घटाटोप अंधेरे को भेदने के लिए उसकी आँखें बार-बार प्रयत्न करके भी असफल रह जाती थीं। बीतते जा रहे वक्त के साथ उसे और भी अधिक पछतावा होने लगा था कि आखिर वह भी अपने मछुए साथियों की तलाश में क्यों नहीं गई।"[14]

इस प्रकार अपने उस्ताद नंजू चाचा की शारीरिक अस्वस्थता जिसने उसे एक तरह से अपाहिज बना डाला था, उसकी इस अवस्था पर टिप्पणी करता हुआ किशना काली को बताता है-"कारखाने ने उसमें कुछ नहीं छोड़ा। सब साँस-सट पूरी तरह

---

[12] बेदखल-पृ.38

[13] नरककुंड में बास-पृ.267

[14] लहरों की बेटी-पृ.99

निचोड़ लिया था उसका। उसकी हालत तो अपाहिजों से भी बुरी है। किशने ने होंठ सिकोड़ लिये।"[15]

श्रमिकों के बीच का आपसी संबंध उन्हें एक दूसरे के प्रति दायित्ववान बनाता है। ये आपसी संबंध जन्मों का संबंध नहीं होता। सामाजिक एकता और सामूहिक आग्रह के आधार पर यह संबंध पलते-बढ़ते हैं।

समाज विभिन्न प्रकार के अलग-अलग लोगों का समूह है। इसमें भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के लोग अपनी स्वतंत्र विचारधाराओं के साथ रहते हैं। इस कारण सामाजिक संबंधों में जहाँ एक तरफ स्नेह, आत्मीयता, सहायता जैसी सकारात्मक शक्तियाँ काम करती हैं, वहीं दूसरी ओर आपसी प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या जैसे नकारात्मक कारक भी उपस्थित रहते हैं। अपने साथी श्रमिकों की अधिक कमाई, कार्य में उन्नति या मालिकों द्वारा उनकी प्रशंसा श्रमिकों में आपसी बैर का कारण बनता है।

चमड़े कारखानों में काली को फोरमैन दलान के काम से मुक्त करा हिसाब-किताब का काम सौंपता है। सबसे नया होने के बावजूद भी उसे मिली इस तरक्की के कारण उसके साथी उससे ईर्ष्या करते हैं। श्रमिकों की इस आचरण पर किशना उन्हें कोसता हुआ कहता है-"ये सब माँ के खसम हैं। किसी का थोड़ा फायदा हो जाए तो इनके पेट में सूल उठने लगता है। किसी को नुकसान पहुँचे तो ये घी की चुपड़ी रोटी खाने की बातें सोचते हैं। तू फिक्र न कर।"[16]

अपने साथी मजदूरों की अधिक कमाई पर भी श्रमिक एक-दूसरे के प्रति अपनी धारणा बदल देते हैं और ईर्ष्या की भावना रखते हैं। "मनसुख जान-बूझकर इंद्रजीत को परे ले गया ताकि काली को पता न चल सके कि उसने कितने पैसे लिए हैं। इंद्रजीत ने अपने बटवे से एक-एक रुपए के चार नोट निकाल मनसुख की हथेली पर रख दिए।"[17]

---

[15] नरककुंड में बास-पृ.175
[16] नरककुंड में बास-पृ.253
[17] नरककुंड में बास-पृ.48

समाज के भिन्न-भिन्न मानसिकतावाले लोगों के साथ संबंध स्थापित करना सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पक्ष को प्रस्तुत करता है जो एक तरह से समाज को संचालित करने का मानविक पक्ष हो सकता है। इन सब के पश्चात अपने मूल निवास को त्यागकर रोजगार की तलाश में भटकता यह श्रमिक वर्ग अपने लिए, अपने स्तर का समाज स्वयं ही निर्मित करता है और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अपने सामाजिक संबंधों का निर्माता भी यह स्वयं ही है। जीवन की हर तरह की अनुभूतियों को अनुभव करता, सुख-दुख, मैत्री और द्वेष सभी के मिश्रण के साथ वह अपने आपसी संबंधों का निर्वाह और पालन करता है।

1.2 शहर का डर

भारतीय श्रमिक वर्ग में अधिकतम उन्हीं लोगों ने श्रमिक का रूप धारण किया जो कृषि और अपने पारंपरिक उद्योगों से खदेड़े गए थे। इस कारण किसान और शिल्पकार ही समय चक्र में फँस कर श्रमिक बने। इन किसानों और शिल्पकारों का निवास स्थान था गाँव। उद्योगों की स्थापना, पूँजी के आगमन और शहरीकरण की तीव्र गति के कारण गाँव का श्रमिक रोजगार की तलाश में शहर की ओर भागा। शहर की भीड़-भाड़ भरी जिंदगी ने उसे रोजगार के अवसर तो दिए ही परंतु साथ में उसे पिछड़ा होने का अहसास भी दिया। शहरों की आधुनिकता और जीवन शैली के साथ तालमेल जमाने के लिए भारतीय श्रमिक वर्ग को बहुत लंबा समय लगा। अलग-अलग क्षेत्रों और सांस्कृतिक भिन्नताओं को अपने साथ धारण करने के कारण उन्हें आपसी संबंध स्थापित करने में भी समय लगा और शहर के अजनबीपन से जुड़ने में भी काफी समय लगा। आज भी भारत का श्रमिक वर्ग, जो किसी-न-किसी रूप में विस्थापित हो शहर को आता है, गाँव की परंपरा को छोड़ शहर की आधुनिकता को अपनाना उसके लिए कष्टसाध्य होता है।

गाँव छोड़ने की अपनी विवशता को व्यक्त करते हुए काली कहता है-"गाँव छोड़ शहर में वही आदमी आता है, जिसका वहाँ समाना मुश्किल हो जाए। कोई

आस-मुराद न रहे। पाँव-तले की जमीन भी काटने लगे।"[18] काली की इस विवशता पर सहमति देते हुए सोमा अपनी मनःस्थिति को प्रस्तुत करता है और कहता है- "खुशी से शहर कोई नहीं आता, तंगी-तुर्शी ही गाँव छोड़ने पर मजबूर करती है। सोमा बोला-हम तो अभी तक गाँव और शहर के बीच में ही लटक रहे हैं। काम शहर में करते हैं... सोते गाँव में हैं।"[19]

कहने को तो काली, सोना जैसे श्रमिक परिस्थिति के शिकार बन शहरों में आ जाते हैं परंतु उनकी आत्मा गाँव की संस्कृति और परिवेश में ही जीवित रहती है। शहर उन्हें सदैव पराया ही लगता है। शहर के प्रति डर और उसके परिवेश में व्याप्त अनिश्चितता के बारे में काली कुछ इस प्रकार सोचता है-"शहर देखने में सुंदर लेकिन ईंट-पत्थर और लोहे-सीमेंट का होता है। यहाँ मेहमान के लिए रोटी भी तैयार होती है और गाड़ी भी। लेकिन दोनों में से सिर्फ एक मिलती है। अक्सर ऐसा होता है कि कोई भी नहीं मिलती।"[20]

'आसमान झुक रहा है' उपन्यास में भोला अपने चाचा चंदा से उसके शहर के अनुभव को सुनकर दंग रह जाता है। दिखावा, फरेब और कृत्रिमता के वातावरण में जी पाना हर किसी के लिए संभव नहीं होता। शहर के दोगलेपन से भयभीत चंदन नौकरी की इच्छा त्याग कर अपने गाँव वापस जाने का निर्णय लेता है। वह कहता है- "अब कभी भूलकर भी नहीं आऊँगा। भूखा रहूँगा तो अपने गाँव, नंगा रहूँगा तो अपनों के बीच। मगर वकील की सफेद कमीज, काली पेंट पहनकर मैं वकील सैब-सा नहीं बनना चाहता। मैं उनकी बराबरी का छलाव नहीं कर सकता।"[21]

गाँव से शहर की ओर विस्थापित हुए श्रमिकों को शहर में आसानी से नौकरी या कोई काम भी नहीं मिलता। शहरों में गाँव के लोगों की इस अवस्था पर टिप्पणी करता हुआ मिस्त्री ध्यानसिंह कहता है-"शहर को देखा भालो। शहर में हर परदेसी

---

[18] नरककुंड में बास-पृ.35
[19] नरककुंड में बास-पृ.38
[20] नरककुंड में बास-पृ.39
[21] आसमान झुक रहा है-पृ.63

को चोर-उचक्का समझा जाता है। काम उसी को मिलता है जिसका कोई सदनामा हो, कोई अता-पता हो, कोई बाली-वारिस हो। वहाँ तो लोग गली के बाहर के कुत्ते को भी टुक्कड नहीं डालते, परदेसी को काम के लिए घर में कैसे घुसने देंगे।"[22]

इस प्रकार की वास्तविकताओं से परिचित होने के बावजूद भी रोजगार के लिए विवश श्रमिक या खेतीहर किसान शहरों की ओर विस्थापित होते हैं। आज के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो औद्योगीकरण और पूँजीवाद के वर्चस्व विस्तार की लालसा के कारण शहरों की आधुनिकता गाँव के वातावरण में प्रवेश कर रही है और गाँव के सामाजिक तंत्र को विघटित कर रही है। विश्वंभर दयाल गुप्त का मानना है कि-"औद्योगिक क्रांति के पश्चात् गाँवों ने अपना रूप नगरों में प्रकट कर एक नई संस्कृति एवं समुदाय को जन्म दिया छोटे गाँव कस्बों में और कस्बे, शहरों में विकसित हुए तथा बड़े-बड़े नगर अंतर्राष्ट्रीय नगरों के रूप में विकसित होते जा रहे हैं।"[23]

समाज में हो रहे इस प्रकार के विकास और परिवर्तन के कारण श्रमिकों में शहर के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। बेहतर जीवन और रोजगार की अधिक संभावनाओं की आशा में श्रमिक शहरों की तरफ हर प्रकार के संशय के साथ भाग रहा है। इसके साथ ही शहर की संस्कृति से एक तरह से डरा हुआ भी रहता है। गाँव के अपनेपन और शहर की अजनबीयत को देखते हुए काली टिप्पणी करता है- "इन मुहल्लों से कई नाले इस छप्पड़ में गिर रहे हैं। और कई तंग गलियाँ छप्पड़ के किनारों पर खुल जाती थीं। ऊँची इमारतों के पानी में प्रतिबिंब को देख काली को महसूस हुआ कि पानी के अंदर भी एक शहर बसा हुआ है। उसने सोचा कि गाँव के मुकाबले शहर कितना बड़ा है, इसमें काम धंधे भी कितने ज्यादा हैं। लेकिन यहाँ जमीन गाँव की अपेक्षा कितनी ज्यादा तंग है।"[24]

---

[22] नरककुंड में बास-पृ.61
[23] उपन्यास का समाजशास्त्र, विश्वंभर दयाल गुप्त-पृ.68
[24] नरककुंड में बास-पृ.41

शहर की तेज़ भागती जिंदगी, बदलते रिश्ते, आधुनिक सभ्यता और स्वार्थी-स्वभाव को जानने के बाद भी, प्रमुख रूप से रोजगार के संधान में श्रमिक शहरों की ओर भागते हैं।

1.3 विविध सामाजिक कार्यक्रम

श्रमिकों में सामाजिक जागरूकता लाने के लिए कभी संगठन या उसके नेताओं द्वारा तो कभी स्वयं श्रमिकों द्वारा ही कई प्रकार के सामाजिक जागरण के कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इन कार्यक्रमों का सीधा और स्वच्छ उद्देश्य श्रमिकों में समाज में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों और विसंगतियों तथा स्वयं श्रमिकों की चारित्रिक विकृतियों को सुधारने और उसे अवगत कराने का ही मंसा रहता है। दिन भर शारीरिक श्रम करने और मानसिक स्तर पर उलझा हुआ श्रमिक वर्ग अपने चारों ओर घट रही घटनाओं, प्रगति और परिवर्तन से अनभिज्ञ ही रहता है। सामाजिक, आर्थिक और कानूनी तौर पर जो भी प्रगति या परिवर्तन आते हैं उनका प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव देश की जनसंख्या के इस सबसे बड़े हिस्से पर पड़ता है। इस कारण यह आवश्यक है कि श्रमिक वर्ग में सामाजिक जागरूकता को संचालित किया जाए।

श्रमिकों के बीच सामाजिक जागरूकता को फैलाने का सर्वप्रथम दायित्व श्रमिक-संगठनों का ही होता है। अपने शुरुआती दौर में भारतीय श्रमिकों के बीच अखबार के माध्यम से जागरूकता फैलाने की भरपूर कोशिश की गई थी। इस प्रकार के प्रयास में शशीप्रदा बनर्जी[25] का नाम अग्रगण्य है। वास्तव में उस समय समाज के शिक्षित और स्थापित लोगों ने ही श्रमिकों के उत्थान के लिए अनेक विकासमान कदम उठाए और विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का संचालन किया था। श्रमिकों के बीच विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से जागरूकता को जन्म देने के विभिन्न प्रयासों का उत्कृष्ट उदाहरण 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास में द्रष्टव्य है। सहदेव ठाकुर श्रमिक नेता हरि के साथ मिलकर 'मजदूर' नामक अखबार निकालना चाहते हैं, जो श्रमिकों का इतिहास लिख पाए, जो उनकी समस्याओं और अवस्थाओं को समाज के

---

[25] Indian Trade Unions, V.B.Karnik-p.35

अन्य वर्गों के सम्मुख प्रस्तुत कर पाए। इस अखबार का उद्देश्य मजदूरों की आवाज़ को बुलंद करना होगा। सहदेव ठाकुर को ऐसा अनुभव रहा है कि पक्षपातपूर्ण दस्तावेजों के आधार पर श्रमिक इतिहास को मलिन किया गया है। अतः यह उनका सामाजिक दायित्व बनता है कि वे उसमें सुधार का प्रयास करें। इस संवाद से यह स्पष्ट है-

"यानी कि मजदूर अखबार मजदूरों का इतिहास लिखेगा?"

"हमारी कोशिश तो यही होनी चाहिए।"[26]

श्रमिकों के बीच सरकार द्वारा बाँटे जा रहे घटिया चावल के वितरण के विरुद्ध जब हरि राज्यपाल के पास शिकायत दर्ज करता है और उसके फलस्वरूप गिरफ्तार होता है तो भड़के हुए श्रमिकों को शांत करने के लिए सरकार उन्हीं अखबारों की मदद लेती है जो श्रमिकों के अगुआ होते हैं।

"तीन दिन बाद उन्हीं अखबारों (मजदूर, जनता, जमाना) में यह खबर भी आई कि हरि इसी शर्त पर जेल से बाहर आने को तैयार है कि मजदूरों को दिया जा रहा चावल तुरंत बदला जाए। अगले ही दिन अखबारों ने यह खबर छापी कि सरकार ने करीब सात सौ टन चावल समुद्र में फेंककर मज़दूरों के लिए अच्छे चावल की व्यवस्था की है।"[27]

गाँव के अशिक्षित श्रमिक हर साल पूँजीपतियों के द्वारा आयोजित घुड़दौड़ में शामिल होते थे और अपने कठोर परिश्रम से कमाई हुई महीनों की कमाई को उसमें गवा आते थे। इन अशिक्षित और पिछड़े हुए श्रमिकों को इस घुड़दौड़ से रोकने तथा इनमें सामूहिक चेतना लाने के लिए हरि व उसके साथी उसी दिन गाँव में विभिन्न कायक्रमों का आयोजन करते हैं। "घुड़दौड़ के दिनों में गाँववालों को शहर जाने से रोकने के लिए गाँव-गाँव में खेल-कूद तथा गाने-बजाने के कार्यक्रम रखे गए। इनकी व्यवस्था स्थानीय ट्रेड-यूनियन नेताओं तथा विष्णुदयाल के स्वयं सेवकों

[26] और पसीना बहता रहा-पृ.225
[27] और पसीना बहता रहा-पृ.294

द्वारा की गई थी। ठीक घुड़दौड़वाले दिन उत्तरी प्रांत में ही जनता के मनोरंजन के लिए कोई तीस जलसों का आयोजन हुआ। दो दिन बाद अखबारों ने लिखा कि जिस घुड़दौड़ में साठ-सत्तर हज़ार लोग उपस्थित होते थे, उसमें कठिनाई से सात सौ लोग इकट्ठा हुए।"[28]

श्रमिकों को अपनी आर्थिक स्थिति के प्रति सचेत करते हुए हरि और उसके साथी उन्हें शराब का परित्याग करने का आह्वान करते हैं। क्योंकि अनेक हड़तालों और संघर्ष के बाद मज़दूरों को जो बोनस मिल रहा था वे उसे शराब में खर्च कर दे रहे थे। इस कारण हरि और उसके साथी श्रमिकों में शराब विरोधी मुहिम भी चलाते हैं। परिणामस्वरूप इसका फल सकारात्मक ही होता है और मज़दूरों में शराब की खपत कम होती है।"[29]

'आवां' उपन्यास में अन्ना साहब और विमल बेन जैसे यूनियन नेताओं के माध्यम से तथा 'कामगार अघाड़ी' जैसे ट्रेड यूनियन के द्वारा शराब रोको जैसे अनेक सामाजिक सुधार और जागरण के कार्य संचालित किये गये हैं। लेकिन उपन्यासकार ने इन कार्यक्रमों का सुखद परिणाम नहीं प्रस्तुत किया है। यूनियन नेताओं का इन कार्यक्रमों के पीछे अपने सामाजिक और राजनैतिक छवि को सुधारने की मनसा इन कार्यक्रमों को विफल बनाती है तथा कोई भी सकारात्मक परिणाम प्रस्तुत नहीं करती।

विविध प्रकार के सामाजिक कार्यक्रमों का आयोजन 'बेदखल' उपन्यास में बाबा द्वारा भी किया जाता है। शाम के समय भजन-कीर्तन तथा पूजा-पाठ के आयोजन के पीछे बाबा रामचंद्र का उद्देश्य उन खेतिहर-श्रमिकों के जीवन में थोड़ा सा उल्लास लाने का होता है। 'लहरों की बेटी' उपन्यास में भी गाँव के लोग अपनी समस्याओं को प्रस्तुत करने तथा उनके समाधान के लिए 'सभा'[30] का निर्माण करते

[28] और पसीना बहता रहा-पृ.308
[29] और पसीना बहता रहा-पृ.270, 278
[30] लहरों की बेटी-पृ.65

हैं। इसके साथ ही सभी लोग इस बात पर पूरा भरोसा करते हैं कि सभा के कार्य, संगठन और शक्ति के लिए सभी का एकजुट रहना आवश्यक है।

श्रमिकों के बीच इस प्रकार के विभिन्न सामाजिक कार्यक्रमों का दो प्रकार से महत्वपूर्ण स्थान है। सामूहिक रूप से यह कार्यक्रम श्रमिकों को जागरूक और सामाजिक बनताी है। कम-से-कम वे अपने ही वर्ग के अन्य लोगों से जुड़ सकते हैं। संगठन और सभाओं के द्वारा आयोजित विभिन्न कार्यक्रम, जलसों और संगठन कर्मियों के प्रयासों के फलस्वरूप श्रमिक वर्ग समाज की गतिविधियों से जुड़ता है। इस प्रकार उसका सामाजिक जीवन उन्नत बनता है। दूसरी तरफ इन कार्यक्रमों का परोक्ष प्रभाव उसके व्यक्तिगत जीवन पर भी पड़ता है। वह अपनी जीवन की समस्याओं को दूसरों के साथ बाँट पाने का अवसर प्राप्त करता है और समूह से उसके समाधान की संभावनाओं को प्राप्त कर पाता है।

1.4 समाज कल्याण की भावना

सामाजिक स्तर पर पिछड़ा हुआ, आर्थिक अभावों को झेलता हुआ तथा सरकारी उपेक्षाओं की मार सहते हुए इस वर्ग के एक अन्य पक्ष को भी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। वह पक्ष है श्रमिकों में समाज कल्याण की भावना। किसी एक समाज में या समूह में रहने के कारण श्रमिक केवल अपनी प्रगति के बारे में नहीं सोचता। व्यक्ति होने के नाते उसमें ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, बैर ऐसी विकृतियाँ अवश्य रहती हैं, लेकिन इन सभी के साथ उसमें दूसरों की अच्छाई और विकास की भावना भी रहती है।

श्रमिकों की एकता, सामूहिकता, आपसी संबंध और स्वार्थहीनता को देखकर इंजीनियर कुमार इनकी एकता और संकल्प की भावना पर इस प्रकार टिप्पणी करते हैं-"ये लोग हकीकत में इधर-उधर बह जाने वाली इस नदी को ठीक रास्ते से बहाने के, पाने के संकल्पी से हो गए थे। बांध में दरार क्या पड़ी सभी उसे बचाने के लिए जुट गए। हर टूटे भाग को इन लोगों ने कितने प्यार से, उत्साह के साथ बनाया और उसकी देख-रेख की। कभी लगता है, बाबा इस बस्ती के दधीचि हैं और ये गोविंद

इस युग का इंद्र है, जो अपनी कर्मण्यता से असुरों का आज भी संहार कर रहा है।"[31]

बाँध निर्माण कार्य में कार्यरत सभी मजदूर अपने समूह के कल्याण के लिए चिंतित था। सभी यही चाहते थे कि बाँध बन जाए और उनके भविष्य और बच्चों का जीवन सुधर जाए। इस बॉध निर्माण कार्य में कई लोग शहीद हुए। एक विधवा के साहस और सर्व कल्याण की भावना को व्यक्त करते हुए सुधीर कहता है-"इस औरत को बुरे दिनों का जमकर सामना करना पड़ा, पर इसने बांध पर इस कदर काम किया कि आपसे क्या कहूँ, मुझे तो लगता है इसे दुख हुआ होगा, पर उसी ने एक दिन बताया कि बस्ती की भलाई के लिए एक आदमी मरता है तो क्या होता है, कइयों को जिंदगी तो मिलती है, वह कम है क्या?"[32]

खेतिहर श्रमिक बना दिवानसिंह अपनी बंजर पड़ी जमीन को कुछ पैसे के लोभ में या उसके बहकावे में आकर पंचायत को नहीं बेचता, वरन गाँव में पाठशाला खोलने के लिए दान देने की ठान लेता है। वह नैनसिंह को सीधे-सीधे कह देता है कि-"पैसे नहीं चैन मिलेगा काका! भोलू की शादी मुझे पाठशाला बनने से अधिक सुख-आनंद नहीं दे सकती। गाँव में पाठशाला खुलेगी तो भोलू के बच्चे पढ़ेंगे उसमें, वरना उसी की तरह वे भी गाँव के खेत-खलिहान और चौपाल में बैठे घूरते रहेंगे।"[33]

नदी पर बाँध बनाने की खुशी और लाभ को व्यक्त करते हुए गोविंद सोनी से कहता है-"इस बांध से अब हमारी ही बस्ती नहीं पूरा यह इलाका खुशहाल हो जाएगा, सुना है पूरा बन जाने के बाद यहाँ से बिजली भी पैदा की जाएगी और सारे इलाके भर में फैला दी जाएगी, सिंचाई के लिए बहुत मदद मिला करेगी।"[34]

---

[31] नदी फिर लौट आई-पृ.241
[32] नदी फिर लौट आई-पृ.239
[33] आसमान झुक रहा है-पृ.137
[34] नदी फिर लौट आई-पृ.185

बाँध बनाने में गाँव के मजदूरों ने न केवल कठोर परिश्रम किया है बल्कि ठेकेदारों और नेताओं से विद्रोह भी करना पड़ा है। लेकिन बाँध बनने के लाभ को वे निस्वार्थ रूप से सभी के साथ बाँटने को तैयार हैं।

मनुष्य के जीवन में उसके दार्शनिक विचार दो रूप से स्थापित हो पाते हैं। एक तो उन विचारों और संस्कारों के माध्यम से जो बचपन से ही हमें मिले हों और दूसरे अपने जीवन की परिस्थितियों और अनुभवों के माध्यम से। यही विचारधारा उसे अपने और समूह के कल्याण के लिए मार्ग दिखाती है। इस संदर्भ में ‘बेदखल’ उपन्यास का यह अंश युक्तिसंगत लगता है। "जीवन में एक चीज़ साफ-साफ देखने में आती है। लड़ाई में एक पक्ष जीतता है, दूसरा हार जाता है। जो जीतता है, उसकी चलती है, जो हारता है उसका सब कुछ छिन जाता है। वह जीता नहीं, मजबूरी में घिसटता है। लेकिन पासा पलटने की लड़ाई बराबर चलती रहती है। और इसी के सहारे आदमी का वजूद कायम रहता है।"[35]

अभावों और समस्याओं को झेलते, पिछड़ेपन और अशिक्षा की मार को सहता श्रमिक वर्ग अपने जीवनानुभवों से ही अपने विचार स्थापित करता है। सामाजिक योजनाओं, सभाओं या संगोष्ठियों में भले ही इसकी सदस्यता या उपस्थिति खुलकर सामने नहीं आ पाती लेकिन अपने संगठित कार्यों और श्रम के माध्यम से वह समाज के कल्याण व विकास की कामना करता है।

1.5 सरकारी उपेक्षाएँ

वर्तमान परिदृश्य में श्रमिकों की जो भी अवस्था है उसकी उत्तरदायी सरकार और उसकी व्यवस्था है। समाज व लोगों को दिखाने के लिए तथा सही समय पर वोट बटोरने के लिए सरकार अनेक ऐसे नियमों व योजनाओं को पारित करता है जो केवल कागजों के पृष्ठ पढ़ाने का काम करती है। यह सभी योजनाएँ दिखावे के लिए होती हैं तथा परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से सरकार के अपने लाभ के लिए होती हैं। इन योजनाओं व सुविधाओं से कोसों दूर श्रमिकों को इन सभी का ज्ञान भी नहीं होता।

---

[35] बेदखल-पृ.97

अतः इन्हें पाने की बात तो बहुत दूर की है, देश के विकास में सबसे बड़ा भागीदार होने के बावजूद भी वह सभी प्रकार की सरकारी योजनओों से वंचित रहता है। उसे कार्यक्षेत्र में भी न्यूनतम सहूलियतें नहीं मिलतीं। वह न केवल सामाजिक भेदभाव का शिकार होता है बल्कि सरकारी कार्यक्रमों में उसे हर बार अपमानित किया जाता है और उसे उसके पिछड़ेपन का एहसास दिलाया जाता है। श्रमिक वर्ग की सबसे अधिक उपेक्षा देश का पुलिस विभाग ही करता है। यह विभाग इन श्रमिकों के प्रति हमेशा से ही हीन विचारधारा रखता आया है।

देश की स्वाधीनता के बाद किसानों और श्रमिकों का शोषण कर रहे शोषक तंत्र-जमींदारी प्रथा का प्रस्थान हुआ। लेकिन इसके बदले पूँजीपतियों के चक्रव्यूह से पनपा भारत का देसी पूँजीपति ठेकेदार, पंचायत, तहसील का रूप धारण कर सामने आया। शोषकों का मुखौटा बदला, लेकिन शोषण और शोषित वहीं रह गए, वरन् उनकी हालत और शोचनीय होती चली गई। आज़ाद भारत में सरकार के शोषक रूप पर तेजु अपना मंतव्य इस प्रकार रखता है-"तब सिर्फ एक शोषक था, जमींदार और उसके कारिंदे। ... अब सिस्टम बदल गया है तो भी क्या शोषण खत्म हो गया? अब एक जमींदार की जगह तहसील और सरकार के कारकुनों की पूरी फौज शोषण करती है। कुर्क अमीन, लेखपाल और पुलिस, चकबंदी अधिकारी, बी.डी.ओ., पंचायत का मुखिया और न जाने कौन-कौन!"[36]

वास्तव में यही आज के समय का यथार्थ है। देश का श्रमिक विदेशी सरकार के हाथों जितना प्रताड़ित हुआ था, देश के अपने शासन ने भी उसका उतना ही शोषण किया है। प्रशासन चलाने के नाम पर बैठे चपरासी से लेकर सरकार हर कोई इनका साधारण सा कार्य करने के लिए भी रिश्वत माँगता है। गाँव के कल्याण के लिए आए अनुदान से गाँववालों के लिए कुछ सहूलतें मुहैया करवाने के लिए जब प्रधान जी पंचायत सेक्रेटरी से अनुरोध करते हैं तो वह सीधे उत्तर देता है कि-

[36] जुलूस वाला आदमी-पृ.129

"प्रधान जी इसमें हमारा हिस्सा क्या होगा? परसेंट क्या होगी? बीस प्रतिशत से कम नहीं लेंगे।"[37]

यही होता है रक्षक रूपी प्रशासन के अधिकारियों का असली मुखौटा। इनके स्वभाव और ईमान पर टिप्पणी करते हुए प्रधान जी कहते हैं-"इन ससुर सरकारी आदमियों पर तो कतई भरोसा नहीं रखते। सबकी मिली-भगत रहती है। प्रधान की घिची (गर्दन) पर कटारी धरकर भरते हैं अपनी जेबें। गिद्ध-चील की-सी निगाह रहती है इनकी, जैसे इसके बाप की तिजोरी से आया हो गाँव वालों के लिए पइसा।"[38]

सरकारी कर्मचारियों के इस स्वभाव और इस पर प्रशासन के मौन को गाँव के किसान और श्रमिकों के सामने प्रस्तुत करते हुए बाबा कहते हैं-"आपकी ही कमाई से तालुकेदारों, जमींदारों की मोटर-लारी, हाथी-घोड़ा, शादी-गौना, नाटक-लीला, रंडी का नाच, शराब, गोश्त, गाँजा, भाँग, अफीम, दूध, दही, घी, चीनी, तेल, घड़ी, छाता, पाँच-पाँच सौ की साड़ियाँ, जेवरात, अदालत, वकील-बरिस्टर सब चले हैं। बनिया, महाजनों की ब्याह की कमाई भी आपकी जेब से जाती है। पर आपकी बात सुननेवाला, आपके लिए कानून बनानेवाला कोई नहीं।"[39]

श्रमिकों के प्रति उदासीन प्रशासन और सरकार परिस्थितिवश अगर कोई कानून बनाता भी है तो पूँजीपतियों के स्वार्थ और लाभ को प्राथमिकता देकर ही बनाता है। कानून के माध्यम से श्रमिक या समाज के कमजोर और पिछड़े हुए वर्गों के लोगों को न्याय नहीं मिलता। कानून कमजोरों के लिए नहीं होता। वह उन्हीं का साथ देता है जो समाज में सरकार पर अपनी पूँजी की सहायता से वर्चस्व स्थापित कर पाते हैं। 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास में सरकार का पूँजीपतियों और श्रमिकों के बीच के पक्षपाती-स्वभाव का आभास मिलता है। जब श्रमिकों में एकता स्थापित हो जाती है और वे संयुक्त शक्ति के रूप में सामने आते हैं तब उस एकता

---

[37] इदन्नमम-पृ.214
[38] इदन्नमम-पृ.215
[39] बेदखल-पृ.94

को तोड़ने के लिए मालिकों के पक्ष में कानून लागू किए जाते हैं। हरि कहता है- "1922 में जो श्रम-कानून बना था, वह मजदूरों से कहीं अधिक मालिकों के हितों में था, उस कानून को आज पंद्रह साल बाद फिर से अमल में लाया जा रहा है। इस कानून के अंतर्गत हमें कोई भी नया संघ या नई सभा बनाने का हक नहीं है। सरकारी मदद से इस देश के धनी जमींदारों और मिल-मालिकों के हाथ में दिया गया यह कानून मजदूरों को डराकर बेबस कर देनेवाला हथियार है।"[40]

प्रशासन और कानून के अन्यायपूर्ण व्यवहार के साथ पुलिस का अत्याचार श्रमिक वर्ग के लिए अभिशाप बन जाता है। कार्यक्षेत्र में किसी प्रकार की चोरी, लूटपाट या झगड़ा होता है तो पुलिस का सीधा निशाना श्रमिक वर्ग ही होता है। बाँध निर्माण कार्य में सिमेंट और लोहे की चोरी के मामलों को सुलझाने आए पुलिसवाले ठेकेदारों से कुछ नहीं कहते वरन सीधे मजदूर बस्तियों में जा उन पर अकथनीय अत्याचार शुरू कर देते हैं। पुलिस द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों का एक दृश्य इस प्रकार है-"बस्ती के लोगों को पकड़-पकड़ कर वहीं के एक तंबू में साहब के सामने ले जाया जा रहा है। पुलिस ने पता नहीं कितनों को ठोक-पीट डाला है। मजदूर स्त्रियों को भी सुना जा रहा है कि पकड़पर परती पर ले जाने के लिए आते हैं। उनके साथ भी वही सलूक किया जानेवाला है, जो आदमियों के साथ हो रहा है। औरतों में एक अजीब-सी दहशत समा गई है।"[41]

'बेदखल', 'इदन्नमम', 'और पसीना बहता रहा' उपन्यासों में पुलिस द्वारा श्रमिकों पर किए गए अमानवीय अत्याचार के वर्णन प्रस्तुत किए गए हैं।

शासन और कानून के तहत रक्षा करनेवाली व्यवस्था ही जब शोषक बन जाए तब उस परिप्रेक्ष्य में किसी वर्ग या जाति की उन्नति सदैव प्रश्नचिह्न के कटघरे में खड़ी पाई जाएगी। कार्य क्षेत्र में न्यूनतम सुविधाओं, उचित समय पर वेतन, अवकाश व आवास संबंधी अनेक कानून और अधिनियम हमारे देश में बने हैं, परंतु

---

[40] और पसीना बहता रहा-पृ.139

[41] नदी फिर लौट आई-पृ.79

विडंबना यह है कि सरकार कभी भी इस बात पर ध्यान नहीं देती कि वह कार्यकारी हो रहे हैं या नहीं। इस परिप्रेक्ष्य में संगठनों की प्रमुख भूमिका रहती है। लेकिन श्रमिकों का अगुआ संगठन आज प्रशासन का अंग बनता जा रहा है तथा वह प्रशासन के समान ही कार्य कर रहा है। सत्ता लोलुपता, राजनैतिक लाभ और स्वार्थ ने संगठनों की नैतिकता को ग्रास लिया है। आज श्रमिकों को उनके अधिकारों के प्रति अवगत कराने का कार्य कुछ स्वयंसेवी संस्थाएँ आगे आकर कर रही हैं। प्रशासनिक तथा सरकारी उपेक्षाओं तथा सामाजिक पिछड़ेपन के पीछे श्रमिकों की अशिक्षा और आधुनिकता से दूरी ही मूल कारण है।

2. आर्थिक परिस्थितियाँ

अर्थ ही वह मूल घटक तत्व है जो श्रमिक जीवन को पूर्ण रूप से संचालित करता है। उसका व्यक्तितत्व, उसके विचार, उसकी शिक्षा, उसका रहन-सहन, उसके अनुभव-मूल रूप से जीवन का हर पक्ष आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। अर्थ के अभाव के कारण उसकी आर्थिक परिस्थिति हमेशा ही शोचनीय रहती है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश की अर्थ व्यवस्था पर सरकार और पूजीपतियों का वर्चस्व और एकाधिकार बढ़ता गया कि देश के किसानों और श्रमिकों की अभावग्रस्त स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। आर्थिक विषमताएँ दिन-ब-दिन बढ़ती गईं। इसके फलस्वरूप बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी का शिकार होता चला गया। कमरतोड़ महँगाई, करों का दुर्वह भार आदि श्रमिक-वर्ग की आर्थिक स्थिति को और बिगाड़ता गया। श्रमिक वर्ग की आर्थिक विपन्नता ने जहाँ उसे असह्य गरीबी का शिकार बनाया वहीं दूसरी ओर इसकी चारित्रिक विसंगतियों को पनपने का भी मौका दिया। अपने श्रम को सर्वस्व माननेवाला श्रमिक, चोरी, लूटपाट जैसे असामाजिक कार्यों में भी लिप्त होने लगा। समाज में वर्ग-विभाजन का स्वरूप भी अर्थ आधार पर ही हुआ है और वर्ग-संघर्ष के मूल में भी आर्थिक विषमता ही मूल कारण रही है। अर्थ को वर्ग संघर्ष का मुख्य कारण मानते हुए ओमवती सक्सेना ने कहा है कि-"मार्क्सवादी विश्लेषण पद्धति के अनुसार वर्ग-

संघर्ष की उद्भावना के मौलिक कारण अर्थ प्रधान हैं और संपूर्ण संघर्ष समाज के पूँजीवादी और सर्वहारा वर्गों तक ही सीमित है।"[42]

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में आर्थिक विषमता ही 'वर्ग-संघर्ष' का कारण बनी हुई है। 'औद्योगीकरण' ने आर्थिक विषमताओं और नगरीकरण ने जटिल सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया है।

2.1 गरीबी

आर्थिक दरिद्रता श्रमिकों की स्थिति है। चाहे वह पूरे साल और दिन के चौबीसों घंटों काम करे फिर भी आर्थिक विपन्नता ही उसके जीवन को परिभाषित करती है। भारतीय श्रमिकों की आर्थिक विपन्नता, उनके शुरूआती दिनों से ही उसके साथ है। किसानों और घरेलू शिल्पकारों का उद्योगों में श्रम करने के प्रति आकर्षित होने के पीछे उनकी निबटतम गरीबी ही मुख्य कारण थी। ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना, सरकार द्वारा लगाए जानेवाले विभिन्न लगानों की आपूर्ति और प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत विश्व भर में उपजे आर्थिक संकट-इन सभी कारणों के चलते भारत का श्रमिक वर्ग कंगाली में डूबता गया। अपने पैतृक धंधों को छोड़कर मजदूर बनने और शहरों तथा दूसरे देशों को विस्थापित होने के पीछे सबसे बड़ा कारण था भारतीय भूमिहीन किसानों और शिल्पकारों की गरीबी।

पूँजीवाद के आगमन और विदेशी वस्तुओं के आयात के बाद बढ़ रही महँगाई और करों के भुगतान का सीधा प्रभाव श्रमिक वर्ग पर पड़ता है। महँगाई का श्रमिक जीवन पर प्रभाव और उसकी दयनीय स्थिति को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-"महँगाई के बढ़ने का एक ग्राफ होता है, लेकिन इनसान की तकलीफों का नहीं। जब वह दो आने की जगह तीन आना न होने से एक कप चाय नहीं पी सकता, बच्चों को दूध नहीं दे सकता या दूध में चीनी नहीं मिला सकता, या जब चार की जगह छः या आठ आना न होने से घर में मिट्टी के तेल का दिया नहीं जला सकता, या घर

[42] प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष, ओमवती सक्सेना-पृ.65

में खाना पकाने को चूल्हा नहीं जला सकता तो जीवन पतन की ढलान पर लुढ़कना शुरू करता है, जिसे कोई ग्राफ नहीं दिखा पाता।"[43]

भारतीय श्रमिक वर्ग की निबटतम गरीबी का एक और कारण कर्ज की मार और लगान न चुका पाने के असामर्थ्यता है। इसका एक बड़ा कारण श्रमिकों का परिस्थिति के सामने आत्मसमर्पण भी है। अपने नैतिक मूल्यों से अलग न हो पाने की विवशता और ईमानदारी के कारण भी श्रमिक वर्ग आर्थिक विपन्नता को झेलता है। इस पर हरि इस प्रकार सोच प्रस्तुत करता है-"पर वह जो दिन-भर खून-पसीना एक करके ईमानदारी से जीता आ रहा था, वह तो आज भी अभाव और तंगहाली की ही जिंदगी बसर करने को मजबूर है।"[44]

मजदूरों की गरीबी उनकी ईमानदारी पर हावी नहीं हो पाता। इसे श्रमिक अपना हथियार बनाता है, गरीबी से लड़ने के लिए। इस संदर्भ में गोविंद बड़े ही दार्शनिक ढंग से टिप्पणी कर कहता है-"मजदूर रोटी के लिए पसीना गिरा सकता है, पर उसे बेच नहीं सकता। मजदूर को गरीबी जरूर मिली है, पर ईमानदारी को वह बे□ नहीं सकता। मजदूर भूखा रह सकता है, पर ईमान को खत्म नहीं कर सकता।"[45]

साहुकार को सही समय पर लगान न देने के कारण सुचित को उधार पर बीज नहीं मिलते। भूमिहीन किसान से खेतीहर श्रमिक बने सुचित के ऊपर समस्याओं का पहाड़ टूट पड़ता है। वह अपनी आर्थिक विपन्नता को प्रस्तुत करता हुआ कहता है-"अभी पिछले साल का बकाया है महाराज। बहुत हाथ-पैर जोड़े पर वो टस-से-मस नहीं हुए। समझ में नहीं आता अब कहाँ जाएँ। ... घर में मुट्ठी-भर धान नहीं है। लरिकन को भात खाए महीनों गुजर गए। मजूरी में जो मोट-महीन मिलता है उसी

---

[43] जुलूसवाला आदमी-पृ.382
[44] और पसीना बहता रहा-पृ.102
[45] नदी फिर लौट आई-पृ.113

से किसी तरह गुजारा चल रहा है। अगर धनहा खेत में बीज न पड़ा तो आगे भी सब अँधियारा है।"[46]

आर्थिक विपन्नता का सबसे बड़ा गहरा प्रहार श्रमिकों के पारिवारिक जीवन पर पड़ता है। किसानों को भूमिहीन बना श्रमिक बनाने के अनेक हथकंडों से बेदखली भी एक है जो साहुकारों, जमींदारों और सरकार द्वारा समर्थन पर किसानों को अपनी ही जमीन से बेदखल करने की प्रथा थी। इस प्रथा ने भारत के हजारों किसानों को आर्थिक स्तर पर कंगाल बनाया था। सुचित भी इसी बेदखली का शिकार था और आर्थिक विपन्नता में डूबा हुआ था। "बेदखली के कारण उस साल सुचित का खलिहान नहीं लगा। घर में दाने-दाने का अकाल था। उसकी बहू भिनौखा होते ही चौथाई पर महुआ बीनने बभनौटी की ओर निकल जाती। वहाँ से लौटते समय जंगल से टोकरी भर जंगली बेल बीन लाती। दोपहर में बेल फोड़कर गूदा निकालती और देर तक बैठकर उसमें भरे बीज अलग करती। महुए की लपसी के साथ बेल का गूदा खाकर दोपहरी काट दी जाती।"[47]

गरीबी का प्रकोप और दरिद्रता की मार सहते हुए, हरि और उसके भाई-बहनों का बचपन गुजरा था। अपने पुराने अनुभवों को याद करता हुआ हरि कहता है-"फिर एक दिन जब रसोई घर के चूहे तक अभाव से तंग आकर भाग गए और घर की जूठन पर पलनेवाले कुत्ते भी आँगन में आना बंद कर चुके थे, तो इसी तरह की एक बरसाती शाम में हरि को घर से निकलना पड़ा था। उसका सबसे छोटा भाई भूख से चिल्ला-चिल्लाकर अधमरा-सा हो गया था।"[48]

पारिवारिक दुर्दशा, महँगाई का बढ़ता स्तर तथा अभावग्रस्तता ने ही गाँव के लोगों को श्रमिक बनने और विस्थापित होने के लिए विवश किया था।

आर्थिक विपन्नता और अभाव श्रमिकों को ऋणग्रस्त बनाता है। अपनी दिनचर्या से इतर कोई भी कार्य करने के लिए उन्हें उधार के बोझ तले दबना पड़ता

[46] बेदखल-पृ.11
[47] बेदखल-पृ.90
[48] और पसीना बहता रहा-पृ.59

है। किसी भी सामाजिक कार्य के लिए उन्हें साहूकारों अथवा जमींदारों से पैसे उधार लेने पड़ते हैं। लेकिन श्रमिकों का जीवन उधार के बोझ तले इतना दबा हुआ रहता है कि वे उधार लेने से भी डरते हैं। चंदन अपनी पत्नी का इलाज कराने के लिए सौ रुपये भी नहीं जुटा पाता। उसकी स्थिति कुछ इस प्रकार होती है-"उसे अपना दम-घुटता सा लगा। सौ रुपए-सौ रुपये कहाँ से जुटा पायेगा वह-सौ रुपये मामूली रकम तो नहीं। रुपये होते तो वह अपनी कमर दर्द की दवा-दारू करवाता। महेंद्रसिंह दुकानदार का उधार चुकाता। लीला के लिए झगोला सिलवाता। दोनों बच्चे कितने नंगे हैं।"[49]

शादी-ब्याह करना या किसी उत्सव का आयोजन करना इनके लिए अत्यंत कष्टसाध्य कार्य होता है। दीवानसिंह अपने समधी की गरीबी और वास्तविकता पर दृष्टिपात करते हुए कहते हैं-"हमारे जैसा है गरीब है। गरीब के लिए सबसे बड़ी मार पैसे की होती है। कन्यादान वह कर नहीं सकता। मैंने पूछा तो कहने लगा, हजार रुपये खर्च कर लूँगा बस।"[50]

आर्थिक विपनन्नताओं के और अभावग्रस्तता के कारण श्रमिक-वर्ग में उधार लेने की कु-प्रवृत्ति विकसित हो रही है। ब्याज का दर चाहे जो भी हो, उधार के बदले चाहे कितनी भी अधिक मजदूरी क्यों न करनी पड़े श्रमिक ऋण लेने से कतराता नहीं। इस प्रकार की विसंगति, वास्तव में बाज़ारवाद और आधुनिकता के चका-चौंध के आकर्षण के फलस्वरूप है। सामाजिक-स्तर पर अपने वर्ग के अंतर्गत अपने को प्रतिष्ठित करने और दिखावा करने के लिए श्रमिक अपने सामर्थ्य से अधिक कर्जा लेता है और आगे चलकर उस कर्जे को चुकाने में उसकी आधी जिंदगी गुज़र जाती है। पूँजीपतियों का श्रमिक वर्ग पर वर्चस्व अधिकार करने और उसे कायम रखने तथा उनका शोषण करने के पीछे इस प्रकार की आर्थिक विसंगति भी प्रमुख कारण रही है। विडंबना इस बात की भी होती थी कि श्रमिक, ठेकेदार के कर्ज

[49] आसमान झुक रहा है-पृ.94
[50] आसमान झुक रहा है-पृ.125

देने की प्रवृत्ति को अहसान मानता था। ठेकेदारों के इसी अहसान के कारण बस्ती के लोग उसके द्वारा किए गए अमानवीय क्रियाओं पर भी चुप्पी-साधे रहते थे और अपनी गरीबी का रोना रोते थे। "जब भी ठेकेदार को देखते तो उसका आवभगत करते, उसके आगे सहमें-से खड़े उसके हुक्म की राह देखा सकते। और ठेकेदार था कि आदमियों की तरफ उतना नहीं देखता, औरतों की तरफ ज्यादा देखता... मजूर आखिर मजूर ठहरे क्या बोल सकते थे? गरीबी बोलने के लिए कंदा होती है, वह तो सहने-मिटने के लिए होती है।"[51]

वास्तव में जीवन की हर परिस्थितियों से लड़ते और बार-बार विफलता का स्वर चखता श्रमिक वर्ग विद्रोह करना ही बंद कर देता है। समाज और जीवन की विषम परिस्थितियों के सामने वह आत्मसमर्पण करता है। वह किसी भी हाल में बस जिंदा रहना चाहता है। भूमिहीन किसानों से क्रैसर पर मजदूर बने लोगों की गरीबी और विवशता पर महाराज कहते हैं-"गरीब व्यक्ति दीन भी हो जाता है और निर्बल भी। जुझारू क्षमता के क्षय होने के कारण संतोषी भी। ये लोग लड़ने-मरने का साहस गँवा बैठे हैं, बस जीना चाहते हैं, किसी भी तरह।"[52]

आर्थिक विषमता और विपन्नता श्रमिक वर्ग के पिछड़ेपन का सबसे महत्वपूर्ण कारण रहा है। अपने श्रम की तुलना में कम वेतन की प्राप्ति इस वर्ग को अधिक गरीब बनाती है। असंगठित और अकुशल होने के कारण तथा मजदूरी की कोई बँधी-बंधाई कमाई न होने के कारण अनिश्चित आमदनी इस वर्ग को और निबटतम गरीबी की ओर धकेलती है।

2.2 मौलिक आवश्यकताओं का अभाव

आर्थिक स्तर पर पिछड़ा हुआ होने के कारण श्रमिक वर्ग अपनी मौलिक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाता। वह जितना अर्थ उपार्जन करता है वह उसकी मौलिक आवश्यकताओं-खाद्य, वस्त्र और आवास-में से किसी एक का ही

---

[51] नदी फिर लौट आई-पृ.46

[52] इदन्नमम-पृ.

भरपाया कर पाते हैं, लेकिन वह भी पूर्ण रूप से नहीं। श्रमिक-जीवन की वास्तविकता को परखा जाए तो यह तथ्य सामने आता है कि उसका जीवन इन्हीं आवश्यकताओं को पूरा करने की प्रक्रिया और प्रयास के चारों ओर ही गतिमान रहता है तथा इसकी आपूर्ति की चेष्टाओं के साथ समाप्त भी हो जाता है।

आर्थिक विपन्नताओं के कारण श्रमिक वर्ग को जहाँ भी थोड़ी-सी जगह मिलती है वह वहाँ रहने के लिए प्रस्तुत रहता है। अपने आवास या ठिकाने को निर्धाथ्रित करते समय वह केवल यही देखता है कि वह जगह उसकी कमाई और खर्च करने के सामर्थ्य के अंदर ही है। इसी कारण चमड़े-कारखाने का एक साधारण मजदूर होने के कारण किशना सड़ांध भरी तंग गली में जीर्ण-शीर्ण मकान में ही अपना संसार बसाता है। "किशना एक कच्चे-पक्के मकान के सामने आ खड़ा हुआ। मकान के नाम पर सिर्फ एक कमरा था। प्लाट की हदबंदी की लिए चारों ओर छोटी-सी दीवार खड़ी कर दी थी। कमरे के दरवाजे के सामने कच्ची दीवार में लकड़ी की बोसीदा तख्तियों का एक छोटा-सा खटका बना हुआ था।"[53]

बंधुआ मजदूर बन गाँव में रह रहे राउतों की टपरियाँ देख मंदाकिनी चौंक पड़ी थी। घर के नाम पर सर के ऊपर केवल एक आवरण मात्र था वह। "ढाई फूट ऊँचाई की दीवारें, धन के पयाल से छबी और गोबर से लिपी ढलवाँ छतें। द्वार इतने संकरे कि आदमी लेट-बैठकर ही अंदर प्रवेश कर पाये। x x x □ार-छः फटे चिथड़े लटके रहते हैं सूखने के लिए। अलमोनियम के दो-चार फूटे-पिचके बर्तन रखे रहते हैं बाहर बने हर चूल्हे के पास।"[54] मजदूरों के आवास की हालत अत्यधिक खराब रहती है। लेकिन अपनी आर्थिक कमजोरियों के कारण उन्हें उन्हीं आवासों में ही गुजर-बसर करना पड़ता है। इस प्रकार के एक आवास का दृश्य देख हरि दंग रह जाता है-"वह और कुछ नहीं, दो कमरों का मात्र एक घर था, जिसकी दीवारें पत्थर की थीं और छाजन ईख के सूखे पत्तो ंसे बनी थी। ... दोनों दरवाजे

---

[53] नरककुंड में बास-पृ.173

[54] इदन्नमम-पृ.226

और खिड़कियाँ शायद मुद्दत से नहीं खुली थीं और छाजन ईख के सूखे पत्ते से बनी थी।"[55] देश के हज़ारों श्रमिकों की आवास-जनित समस्या और परिदृश्य ऐसा ही होता है।

पूँजीवादी व्यवस्था में दिन-रात मेहनत करने के बावजूद भी श्रमिकों को अपने स्वास्थ्य-सुधार या इलाज के लिए भी पैसे पर्याप्त नहीं होते। श्रमिकों के लिए उनका तंदरुस्त रहना और स्वास्थ होना आवश्यक है क्योंकि तभी वे श्रम-बाजार में अच्छे श्रम की प्राप्ति कर पाते हैं। ठेकेदारों की नज़र भी उन्हीं श्रमिकों पर रहती है जो कम समय में अधिक मेहनत कर पाएँ। लेकिन अपने अर्थाभाव के कारण न तो उन्हें आवश्यक खाना मिलता है और न ही उचित समय पर आवश्यक चिकित्सा। चमड़े कारखाने के दूषित वातावरण के कारण नंजू के पूरे शरीर में खुजली की बीमारी फैल जाती है। नंजू अपनी परिस्थिति को प्रस्तुत करता हुआ कहता है-"बाकी शरीर की खुजली तो किसी हद तक ठीक हो गई लेकिन हाथों की पौ नहीं गई। सर्दियों में तो फिर भी कुछ चैन रहता है लेकिन गर्मियाँ और बरसात बहुत मुश्किल से कटती है। ... डॉक्टर के पास तो तब जाऊँ जब उसकी फीस और दवाई के लिए पैसे मेरे पल्ले में हों।"[56]

मजदूर-मंडी में भी ठेकेदार जब दिहाड़ी पर श्रमिकों का चुनाव करने आते हैं तब वे उन्हीं मजदूरों को काम पर ले जाना चाहते हैं, जो शारीरिक रूप से स्वस्थ और तंदरुस्त रहते हैं। काली इस सच्चाई का अनुभव कर पाता है। वह यह देखता है कि "मजदूरों के मामले में पड़ताल और भी कड़ी थी। उनमें बाकी बातें बराबर होने पर तंदुरुस्ती को पहल दी जाती थी।"[57]

लेकिन कम आमदनी पर अपने और अपने परिवार के सभी खर्च को सहन कर अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर पाना श्रमिक के लिए कष्टसाध्य होता है। 'नरककुंड में बास' उपन्यास में अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है कि स्वास्थ्य-जनित

[55] और पसीना बहता रहा-पृ.171
[56] नरककुंड में बास-पृ.178
[57] नरककुंड में बास-पृ.63

समस्याओं और शारीरिक पीड़ा को सहन करने के लिए श्रमिक शराब का सहारा लेते हैं। क्योंकि यह दवाई से सस्ती है। 'और पसीना बहता रहा', 'मुखड़ा क्या देखें' उपन्यासों में श्रमिकों के अर्थाभाव और स्वास्थजनित समस्यओं को दिखाया गया है।

श्रमिकों की आर्थिक विपन्नता का प्रभाव उनकी पहचान पर भी पड़ता है। उनके पास केवल उतने ही कपड़े रहते हैं जितने से शरीर ढका जा सके। खेतिहर श्रमिकों के पहनाव संबंधी समस्या को प्रस्तुत करते हुए लेखक उनकी मनःस्थिति को इस प्रकार प्रस्तुत करता है-"ठंड और बदली के कारण पुर-दुबला बंद थे। दिन-भर अलाव के पास बैठे-बैठे लोगों का मन उकताता था। गाँव में दो-तीन घरों को छोड़कर किसी के पास ठीक से ओढ़ना-बिछौना नहीं था। सारी रात ठिठुरते बीतती थी। लोग सी-सी करते हुए कहते थे-गरीब-दुखिया के लिए जाड़ा जानी दुश्मन है, गर्मी कम-से-कम अमीर-गरीब का भेद तो नहीं करती।"[58]

जीविका की तलाश में शहर आए काली के पास वस्त्र के नाम पर सिर्फ एक जोड़ा कपड़ा ही था। "उसने अंधेरे और सन्नाटे का फायदा उठाते हुए नहाने के बारे में सोचा। लेकिन अपने पास लंगोट या कछहरा न होने के कारण वह दुविधा में पड़ गया। एक बार फिर उसे अपनी स्थिति पर दया आने लगी। उसने साहस बटोरा सब कपड़े उतार दिए और नहाने लाग और फिर गीले शरीर पर ही कपड़े पहन लिए।"[59]

श्रमिकों की दीन वेशभूषा के कारण समाज के अन्य लोग उन्हें हीन-दृष्टि से देखते हैं। अपने दीन-पहनावे के कारण काली और उसका साथी मनसुख जब हलवाई की दुकान पर जा दूध-जलेबी का आर्डर देते हैं, तो दुकानदार और बैरा बार बार उन्हें पैसे की बात बताते हैं और इस पर मनसुख खिन्न हो कहता है-"साले आदमी की हैसियत का अंदाजा पहनावे से लगाते हैं।"[60]

---

[58] बेदखल-पृ.82
[59] नरककुंड में बास-पृ.56
[60] नरककुंड में बास-पृ.52

अपनी आर्थिक विषमताओं के कारण श्रमिक वर्ग अपनी मौलिक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर सकता। अपनी छोटी-से-छोटी आवश्यकताओं के लिए भी उसे पैसे जमाने पड़ते हैं। किसी-किसी क्षेत्र में तो श्रमिकों को दिन-भर का खाद्य भी सही तरह से नहीं मिल पाता। महानगरों के फुटपाथों, रेलवे स्टेशनों आदि जगहों में, आवास की कमी के कारण, अनेक विस्थापित और दिहाड़ी करनेवाले श्रमिक अपना गुजारा करते हैं। आर्थिक अभाव और आवास की समस्या के कारण झोपड़पट्टी (स्लम) जैसी अवधारणा सामने उभर कर आ रही है। किसी बड़े निर्माण कार्य के आस-पास के क्षेत्रों में श्रमिकों का स्लम, आज महानगरों में एक आम दृश्य बनता जा रहा है। स्लम का परिवेश और उसका जीवन अपने आप में ही एक समस्या है।

2.3 इच्छाओं का दमन

एक सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य में अनेक इच्छाएँ और आकांक्षाएँ होती हैं जिन्हें वह पूरा करने का भरपूर प्रयास करता है। यह इच्छाएँ जहाँ एक तरफ आवश्यकताओं से अलग होती हैं, वहीं कभी-कभी आवश्यकताएँ ही इच्छाओं का रूप धारण करती हैं। आर्थिक दृढ़ता ही सभी इच्छाओं को पूरा करने का प्रमुख तत्व होती है। श्रमिक वर्ग का जन्म निम्नवर्गीय परिवेश में होता है तथा उसका पूरा जीवन इसी वर्ग और उसकी वर्गीय समस्याओं से जूझता हुआ समाप्त हो जाता है। निम्न वर्ग का होने के बावजूद उसके चारों ओर फैला समाज उच्च वर्ग का होता है जो बाजारवाद, भूमंडलीकरण और आधुनिकता की आड़ में आकर अनेक दिखावा करता है। उच्च वर्ग का यही दिखावा श्रमिक वर्ग को उसकी तरफ आकर्षित करता है और उसमें अनेक इच्छाएँ जन्म लेती हैं। लेकिन यह इच्छाएँ हमेशा ही आधुनिकता या वैभव से जुड़ी हुई नहीं होती। इन इच्छाओं में भी कुछ ऐसी होती हैं जो श्रमिक होने के नाते वे पूरा करने या प्राप्त करना चाहते हैं। शिक्षा की प्राप्ति, अच्छा खाना, अच्छा पहनना आदि इच्छाएँ इनमें भी पनपती हैं और वे उसे प्राप्त करने का भरपूर प्रयास भी करते हैं। परंतु अंत में, विफलता ही (अधिकतर क्षेत्र में) हाथ लगती है।

अपनी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर श्रमिक वर्ग अपनी अनेक इच्छाओं का दमन करता है। इस कारण उसे शिक्षा का अधिकार भी नहीं मिल पाता। श्रमिक वर्गों का शिक्षा प्राप्त न कर पाने के दो प्रमुख कारण होते हैं, अपने परिवार की स्थिति को सुधारने के लिए इन परिवारों के बड़े सदस्य बच्चों को स्कूल न भेजकर श्रम करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। लेकिन इसका दूसरा और महत्वपूर्ण कारण होता है श्रमिकों का अर्थाभाव। स्कूल की फीस और शिक्षा-संबंधी अन्यान्य खर्च वहन करने का सामर्थ्य उनके पास नहीं होता। यहाँ तक कि सरकारी स्कूलों में भी अपने बच्चों की पढ़ाई का खर्च वे वहन नहीं कर पाते। आर्थिक दुरावस्था के कारण समय और परिस्थितिवश श्रमिक वर्ग की मानसिकता ही एक प्रकार से शिक्षा विरोधी बन जाती है। हरि अपने बचपन अपने और अन्य श्रमिक परिवार की मानसिकता याद कर कहता है-"उसे याद है कि उसके पिता बार-बार गाँववालों से कहते थे कि वे अपने बच्चों को स्कूल भेजें। पर उसकी बात कुछ ही लोग सुन पाते थे, बाकी तो यही चाहते थे कि उनके बच्चे समय बर्बाद करने के बजाय उनके साथ रहकर दो-चार पैसे कमाएँ।"[61]

अधिक-से-अधिक श्रमिक परिवारों में शिक्षा प्राप्त न कर पाने और शैक्षिक पिछड़ेपन का कारण श्रमिकों की यही मानसिकता काम करती है।

अपनी शिक्षा प्राप्त न कर पाने की विवशता और शैक्षिक पिछड़ेपन के अपमान को सहता हुआ कालि अपनी मनःस्थिति को इस प्रकार प्रस्तुत करता है-"गाँव के स्कूल में चार जमातें पढ़ी थीं। बड़े स्कूल में जाने की तौफीक नहीं थी। चाचा न मरता तो शायद आगे भी पढ़ता।"[62]

गाँव में स्कूल-कालेज की सुविधा के बावजूद भी श्रमिकों के बच्चे उसमें पढ़ने नहीं जाते। अपने इलाके की परिस्थिति पर दिवान सिंह का मत इस प्रकार है-"अब तो 'पाली' भी नहीं जाना पड़ता पढ़ने। पं.हरिदत्त मठपाल सरकार तिथाण चले

[61] और पसीना बहता रहा-पृ.87
[62] नरककुंड में बास-पृ.248

गए। मानीला में इंटर कालेज खोल गए। वहाँ से बारह पास करके दाखिला मिल जाता है कहीं भी। इतनी सुविधा हो गई है। मगर पढ़नेवाला लड़का हो तो पढ़े तब न?"[63]

अभिभावकों का शिक्षार्जन के प्रति इस प्रकार के मनोभावों के कारण और अर्थोपार्जन को अधिक महत्व देने के कारण बाल-श्रमिक जैसी परिघटना को अपने विस्तार के लिए सही जमीन प्राप्त होती रहती है। मनुष्य जीवन में शिक्षा के अनेक लाभ होते हैं। अतः शिक्षा प्राप्त करने पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी श्रमिकों का विकास नहीं हो पाता और वे जहाँ-के-तहाँ रह □ाते हैं।

श्रमिक वर्ग आर्थिक दुरावस्था के कारण रहन-सहन, खान-पान, पहनाव आदि सभी प्रकार की इच्छाओं को अपने-आप ही मार डालता है। शहर में काम की तलाश में गाँव से विस्थापित हो जाए श्रमिक काली केवल उतना ही खाना खाता है ि□तने के सहारे वह जिंदा रह सके। हर बार वह अपनी जेब में हाथ डालकर पैसों के वजन को महसूस करता है और तड़के वाली दाल खाने की इच्छा में मन में ही रखता है। वह अपने आप को दिलासा देता हुआ कहता है-"नहीं, सादा दाल रोटी ही दो। वक्त आया तो डबल तड़के की दाल भी खाऊँगा।"[64]

अपनी आर्थिक विपन्नता के कारण श्रमिक हर प्रकार की परिस्थितियों से समायोजन करना सीख जाताहै। पैसों की कमी के कारण आवास-जनित समस्या उसके लिए बहुत बड़ा रूप धारण करती है। अपना व्यक्तिगत घर बना पाना उनके लिए एक स्वप्न ही होता है। अतः किराये के घर का भाड़ा भी वे अकेले वहन नहीं कर पाते। इस कारण एक ही जगह पर अनेक परिवार मिलकर रहते हैं। श्रमिकों की इस समस्या पर किसना कहा है-"यहाँ एक-एक घर में पाँच-पाँच, दस-दास परिवार रहते हैं। शाम के समय सबकी अंगीठियाँ और चूल्हे जलते हैं। अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक हर परिवार ईंधन इस्तेमाल करता है।"[65]

---

[63] आसमान झुक रहा है-पृ.48
[64] नरककुंड में बास-पृ.66
[65] नरककुंड में बास-पृ.171

आर्थिक विपन्नता के कारण अपनी इच्छाओं का दमन इन्हें मानसिक और भावात्मक स्तर पर भी प्रभावित करता है। ऊँची अभिलाषाओं और सुखद भविष्य के स्वप्नों से उन्हें डर लगता है। वास्तविकता की क्रूर परछाई उन पर सदैव मंडराती रहती है। चमड़े कारखाने के एक साधारण से मजदूर का भाई होने के बाद भी कल्लू विदेश जाने और शहर में पक्का घर बनवाने का स्वप्न देखता है और काली को, जो श्रमिक-जीवन की वास्तविकताओं से परिचित है, कल्लू पर दया आती है-"कल्लू की बातों पर काली बहुत स्तब्ध था। उसे पक्का मकान बनाने की अपनी आकांक्षा याद हो आई और वह एकदम सहम गया। उसने सोचा कि गाँव में पक्का मकान बनाने की इच्छा को पूरा करते-करते वह इस हालत में पहुँच गया है। शहर में आलीशान कोठी बनाने का स्वप्न देखनेवाले कल्लु का अंत क्या होगा। उसका दम घुटने लगा... कि उनके लिए सुंदर स्वप्न सिर्फ मृग तृष्णा है जो अक्सर घातक सिद्ध होती है, बराबरी का कारण बन जाती है।"[66]

अपनी अवस्था में सुधार लाने के लिए श्रमिक भरपूर प्रयास तो करता ही है, लेकिन अपनी स्थिति का ज्ञान होते ही वह अपने आपको संयमित कर लेता है। मनुष्य होने के कारण मृगतृष्णा और दिवा-स्वप्न की ओर आकर्षित होना, उसका मानवीय लक्षण है। परंतु उसका तुटना उसे पीड़ा के अलावा और कुछ नहीं देता। अपनी पत्नी का इलाज न कर पाने की स्थिति में चंदन की इसी प्रकार सुखद स्वप्नों में खो जाता है जिसका अंत उसे दुखी कर देता है-"एकाएक सारी वेदना भूलकर अठन्नी, रुपये के सिक्कों से अपनी जेब पूरी तरह भरी महसूस होने लगी। वह मन ही मन काँरू का बादशाह बन बैठा कि अब उसकी बसंती बच जाएगी। कि उसकी रोटियाँ तवे पर रोज सिकेंगी। कि रोज घर के चूल्हे में आग जलेगी। अनायास चेहरे पर रौनक फैल गयी और क्षण के लिए। एकाएक उसका हाथ अपने कुर्ते की खलेतों पर गया तो चेहरा फक पड़ गया। एक निराशा लील गयी।"[67]

[66] नरककुंड में बास-पृ.207
[67] आसमान झुक रहा है-पृ.95

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि श्रमिक अपनी आर्थिक परिस्थितियों से पूर्ण रूप से अवगत रहता है। वह अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को अपने आप में ही सीमित रख जीवन भर मौलिक आवश्यकताओं को प्राप्त करने में ही प्रयासमान रहता है।

2.4 वेतन जनित समस्याएँ

श्रमिक-जीवन के वित्तीय स्तरीकरण और स्थिरता के मानदंड को उन्हें मिल रहे पारिश्रमिक के आधार पर ही निर्धारित की जा सकती है। दिन में अधिक-से-अधिक आठ घंटे का कार्य समय निर्धारित करने के साथ-साथ सरकार ने विभिन्न प्रकार के श्रमिकों की मजदूरी भी निर्धारित कर रखी है। श्रमिकों को अपने कार्य के प्रकार और समय के अनुसार मजदूरी देना सरकार द्वारा पारित नियम है। लेकिन जैसा कि यह विदित है कि श्रमिकों के पक्ष में सरकार द्वारा किसी भी नियम का पालन अनिवार्य नहीं समझा जाता, इस कारण श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में न किसी प्रकार का सुधार है और न ही प्रगति परिलक्षित होती है। सर्वहारा वर्ग को अपने अधीन रखने और उन पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए, पूँजीवादी विचारधारा उसे हमेशा आर्थिक रूप से निष्क्रिय बनाने का प्रयास करती रहती है। उनकी शारीरिक क्षमता और योग्यता से अधिक काम करवाता है। लेकिन बदले में उसे मजदूरी कम ही देता है, ताकि वह पुनः उसके पास लौटकर आए और उसके अधीन रहे।

बस अड्डे पर काम करनेवाले श्रमिकों की आर्थिक दुरावस्था का कारण उनकी अनिश्चित आमदनी ही है। अपनी अनिश्चित आमदनी की समस्या को बताते हुए मनसुख काली से कहता है कि-"कोई बँधी आमदनी नहीं है। सवारी पड़ने पर है। भारी सामान-वाली सवारी ज्यादा आ जाए तो आमदनी बढ़ जाती है। कम हो तो आमदनी गिर जाती है।"[68]

इस कम आमदनी के बावजूद दिहाड़ी करनेवाले इन श्रमिकों से अड्डा फीस के नाम पर, इनकी आमदनी से अधिक पैसा लिया जाता है। और प्रतिवाद करने पर

---

[68] नरककुंड में बास-पृ.52

अड्डा छोड़ देने की धमकी भी दी जाती है। अड्डा-इंचार्ज कहता है-"मुण्डयो, तुम्हें पता है कि चीज़ें महँगी हो गई हैं। ठेकेदारों ने इकट्ठी आठ आने की कीमत बढ़ा दी है। तुम भी अब भी मजदूर अड्डा फीस छः आने की बजाय आठ आने रोजाना दिया करो।"[69]

श्रमिकों की आमदनी और मजदूरी बढ़ार्यी जाए या न जाए लेकिन उन्हें बढ़ी हुई महँगाई के अनुसार ही पूँजीपतियों की शर्तों और नियमों का पालन करना पड़ता है। पूँजीपतियों के इस प्रकार के व्यवहार पर श्रमिक हतभागा-सा खड़ा रहता है। क्योंकि उसकी रक्षा करनेवाला या समर्थन करनेवाली सरकार भी पूँजीपतियों की भलाई ही सोचती है। स्वतंत्रता के बाद भी श्रमिकों की मजदूरी संबंधी समस्याएँ जहाँ की तहाँ रह गईं।

"चुंगी, महसूल, तहबजारी, भाड़ा सबैत बढ़ाया दिहेन। न दो तो बसूली करने वालों की पूजा करो। ... इतनी महँगी तो लड़ाइयों के जमाने में नहीं रही। जिनकी नौकरी-चाकरी है, हल्ला-गुल्ला मचाय के तनख्वाह बढ़वाय लेत हैं। हम सब कहाँ □ाय।"[70]

अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए श्रमिक अपनी क्षमता से भी अधिक कार्य करने के लिए प्रस्तुत रहता है। लेकिन अधिक काम के बाद भी जब उसे ठेकेदारों या बिचौलियों से कम मजदूरी मिलती है तो वह उसके लिए निराशा का कारण बनती है। मजदूरों पर अपना आतंक जमाने और अपने मनमाने ढंग से काम करवाने के मनसा से फोरमैन उन्हें वास्तविकता बतलाते हुए कहता है-"अच्छे-से-अच्छे सधे हुए कारीगरों को इतनी दिहाड़ी नहीं मिलती। बढ़िया राजगीर चार-पाँच रुपए दिहाड़ी पाता है। आम मजदूर बारह आने से सवा रुपए कमाता है... वह भी सारा दिन खुच्चे तुड़वाने के बाद।"[71]

---

[69] नरककुंड में बास-पृ.28
[70] जुलूसवाला आदमी-पृ.219
[71] नरककुंड में बास-पृ.138

जीवन-निर्वाह के लिए श्रम न मिलने की अनिश्चितता के कारण भी मजदूर सब कुछ जानने के बाद भी कम मजदूरी पर अधिक काम करने के लिए तैयार रहते हैं। गाँव से शहर में आए श्रमिकों के साथ मुख्यतः यही होता है। कम मजदूरी मिलने की बात जान कर भी पृथी घरों में कम मासिक पर कार्य करने का मन बनाती है। वह कहती है-"उनके यहाँ यदि रहने का भी कमरा है तो पृथी तीन सौ रुपये मासिक में घर का कामकाज कर लेगी।"[72]

मजदूर मंडी की अवस्था भी ऐसी ही रहती है। ठेकेदार और बिचौलिया भी छाँट कर उन्हीं श्रमिकों को अपने साथ ले जाना पसंद करते हैं जो शारीरिक रूप से अधिक सक्षम हों, जिससे वे समय पर अधिक काम करें लेकिन पारिश्रमिक उतना ही लें। इस स्थिति से काली को अवगत कराते हुए मनसुख कहता है-"मजदूर मंडी में खड़े का खालसा ही होता है, जिसे भी मजदूरी की जरूरत होती है, वह आता है आदमी छाँटकर अपने साथ ही ले जाता है। इस तरह टैम बचाकर उतने पैसों में काम ज्यादा करवा लेता है।"[73] इस प्रकार की परिस्थितियों के सामने श्रमिक चाहकर भी विद्रोह नहीं कर पाता। क्योंकि उसे हर हाल में काम की आवश्यकता रहती है।

अधिक समय और मेहनत के साथ काम करने के बाद भी इन श्रमिकों को उपयुक्त वेतन तो नहीं मिलती है, पर साथ ही में कुछ मालिक लोग उन्हें उनकी मजदूरी देने में बेईमानी भी करते हैं। दिन भर गन्ने काटने के बाद भी मालिक मजदूरों को उनकी उजरत नहीं देता और उनसे बेईमानी करता है। "जब उत्तर प्रान्त के पच्चीस मजदूर कोठी के दफतर से सप्ताह-भर की पगार लेने पहुँचे, तब सात सरदारों और रखवादों के बीच एक सरदार द्वारा उन्हें कहा गया कि तनख्वाह लेने का समय बारह से एक बजे का था। वे पूरे एक घंटे देर से पहुँच हैं, इसलिए दफ्तर बंद हो गया है।"[74] इस प्रकार मजदूरों को उनकी मजदूरी नहीं दी जाती और साथ ही उन्हें काम से भी निकाल दिया जाता है।

---

[72] पृथी की पीड़ा-पृ.20

[73] नरककुंड में बास-पृ.59

[74] और पसीना बहता रहा-पृ.187

पूँजीवाद हमेशा यही प्रयास करता रहता है कि श्रमिकों में किसी भी तरह एकता प्रतिष्ठित न हो पाए। तथा इसके साथ वह कभी-भी आर्थिक रूप से विकसित या संपन्न न हो पाए। कंपनियों में श्रमिकों की बोनस संबंधी समस्या और हड़तालें महानगरों में आम समाचार बनता जा रहा है। कार्यालयों का प्रबंधन कभी भी बोनस का समर्थन नहीं करता और अगर देता भी है तो परिस्थिति-वश। "अंधेर मचा रखी है मुनाफाखोरों ने। बगल में गोदरेज कामगारों को दीपावली पर बाइस टका बोनस देने की घोषणा कर रहा। ऊपर कंपनी कोई सबक नहीं ले रही। सोलह टके से ऊपर बढ़ने को राजी नहीं।"[75]

'धारा के बीच से' उपन्यास में भी बोनस-जनित समस्याओं और प्रबंधन की राजनीति को प्रस्तुत किया गया है। बोनस के संदर्भ में श्रमिक संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। लेकिन प्रबंधन के साथ गांठजोड़ और गठबंधन के कारण श्रमिकों के हित में कुछ हासिल नहीं होता। इन सभी समस्याओं के बाद भी मालिक और ठेकेदार श्रमिकों की गलती पर मजदूरी काटने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। इस समस्या पर किशने कहता है-"पाँच खालें सीने और बाँधने पर ही ढाई रुपए मिलते हैं। एक तो काम बारीक है। दूसरे जोखम-भरा। नुकसान होने की सूरत में आप पूरी खाल के पैसे काट लेते हैं।"[76]

निर्धारित कम मजदूरी के बाद भी छोटी-छोटी गलतियों पर दण्डस्वरूप उसकी मजदूरी से ही पैसे काट लिए जाते हैं। सही समय पर वेतन न देने तथा अधिक माँग के संदर्भ में पृथी इस प्रकार टिप्पणी करती है-"मालिक लोग यही समझते हैं कि श्रमिक उससे कभी भी कोई वेतन वृद्धि की मांग न करे चाहे वह कितना भी न्याय संगत हो। वे प्रथम तो श्रमिकों को उनके मालिक के साथ अंतरंग एवं उदार संबंधों की दुहाई देते हैं एवं फिर भी यदि नौकर या श्रमिक संतुष्ट न हुआ तो उसके काम की बुराई करते हैं।"[77]

---

[75] आवां-पृ.366
[76] नरककुंड में बास-पृ.138
[77] पृथी की पीड़ा-पृ.145

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पूँजीपति कभी भी नहीं चाहता कि उसके अधीन काम करनेवाला श्रमिक आर्थिक स्तर पर दृढ़ या समृद्ध हो। अधिक कार्य करने के बाद भी जब मजदूरों को कम वेतन मिलती है और उनकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पातीं, तब वह चोरी, बेईमानी, अपराध जैसी सामाजिक विकृतियों से जुड़ता है।

2.5 अर्थाभाव व मूल्य-विघटन

श्रमिकों की आर्थिक विपन्नता, इच्छाओं का दमन, आवश्यकताओं का अभाव आदि ऐसे कारक हैं जो उनमें चारित्रिक विसंगतियों को उत्पन्न करता है। समाज में सभी प्रकार के लोगों के साथ रहने और उनकी सुख-सुविधा तथा भोग-विलास देख, इस वर्ग के मन में भी उसे पाने की लोलुपता जागती है। अतः इन सभी की आपूर्ति करने के लिए लिए जब उनकी मजदूरी पर्याप्त नहीं होती, तब वे अपराध या असंगत मार्ग का अनुसरण करते हैं। "आर्थिक विषमता ने निम्न तथा उच्च वर्ग के मध्य एक बहुत बड़ी खाई खोदी है। दोनों वर्गों में शोषक वृत्ति व शोषण की प्रक्रिया की निरंतरता बनी रहती है। इसी अर्थ विषमता के कारण अनेक कुरीतियाँ व संघर्ष उत्पन्न होते हैं।"[78] आज हर व्यक्ति धनवान बन अपनी इच्छाओं को पूरा करना □हता है। अतः उसकी भरपाई न हो पाने के कारण उसमें मूल्य विघटन होता है।

देश का लगभग सभी श्रमिक शराब के नशे का शिकार बनता है। कम आमदनी के बाद भी श्रमिक अपनी मजदूरी का एक बड़ा हिस्सा शराब के लिए खर्च कर देता है। दुसाध नामक श्रमिक को प्रतीक बनाकर पवार उसके एक पक्ष को प्रस्तुत करते हुए कहता है-"एक नहीं कई-कई व्यसनों का मारा हुआ है दुसाध-दारुबानी, रंडीबाजी, मटका खेलना, गांजा-चरस पीना उसके शगल हैं। □ब, जैसा, जहाँ जुट जाए।

दुसाध अपवाद नहीं है। अधिकांश श्रमिकों की यही दारुण नियति है। महीने के आखिर में कंपनी से जेब खर्च उठाते ही घर में अनाज-पानी भरने की चिंता छोड़,

---

[78] प्रेमचंदोत्तर उपन्यास में वर्ग-संघर्ष-पृ.215

हलक में मुसंबी-नारंगी उड़ेलने और रकम को दो चार बनाने की उम्मीद में मटका खेलने मटका-घर पहुँच जाते हैं।"[79]

अपनी लाचारी और गरीबी के कारण वे अपने आत्मसम्मान और घर की इज्जत को भी दाव पर लगाने के लिए तैयार हो जाते हैं। मालिक, ठेकेदार, सत्ताधिकारियों, बिचौलियों आदि को खुश करने के लिए और अपना काम सुधारने के लिए श्रमिक वर्ग अपनी नैतिकता और मूल्य को पीछे छोड़ केवल अपना लाभ ही देखते हैं। बाबा के सामने श्रमिकों की मानसिकता और चरित्र के इस पक्ष को प्रस्तुत करते हुए सोन्या की औरत कहती है-"हर छोटा कारकुन अपने साब को खुश करने के लिए किसी-किसी को या साब की चाही को पेश करना चाहता है। शुरू में तो मुझे भी इसका शिकार होना पड़ा, मुझको दो रातों तक साहब की खिदमत में पेश किया गया और ... यह खेल तो हर बड़े साहब के लिए छोटा साहब खेला करता है, खिलाया करता है... कोई एक रुपये में खेलना मंजूर कर लेता है, कोई हजार, दस हजार में, खेलने सब आयी हैं। पैसा हमारी लाचारी को तोड़ता है।"[80]

गरीबी, अर्थाभाव की समस्या और अधिक पैसा कमाने की लालसा में, शहर की वह स्त्री-श्रमिकाएँ जो घरों में काम करने के लिए गाँव से आती हैं, वे भी मजदूरी करना छोड़ देह-व्यवसाय में लिप्त हो जाती हैं। पृथी इस पर टिप्पणी कर कहती है-"कुछ चाय की दुकानें करती हैं, अथवा इन छोटी-छोटी दुकानों पर नौकरियाँ कर लेती हैं। कुछ तो ऐसे नियमित धंधे न पाकर शरीर बेचने का खुला धंधा करने लगती हैं। फलस्वरूप उन्हें यह दो टके की नौकरी ठीक नहीं लगती क्योंकि यहाँ पूरे मास खटकर केवल दो सौ रुपये झींक-झींक कर मिलते हैं जबकि जरूरतमंद एक ग्राहक मिलने पर आधा घंटे के लिए उन्हें दो सौ रुपया मिल जाता है।"[81]

अर्थाभाव के कारण श्रमिकों के इस प्रकार की चारित्रिक विसंगतियों और बेईमानी पर कटाक्ष करते हुए भ्रष्ट नेता माधो कहता है-"पैसा अपना रंग तो

[79] आवां-पृ.363
[80] नदी फिर लौट आई-पृ.167
[81] पृथी की पीड़ा-पृ.158

दिखायेगा... अच्छे अच्छों का ईमान पलट देता है... फिर ये देहाती भुक्खड़... दो मिनट आने के लिए खड़े होने के लिए पांच रुपये भला कौन छोड़ेगा? इतने पैसे तो दिन-भर की मजूरी के बाद भी इन लोगों को नसीब नहीं होता...।"[82]

आधुनिक युग में अर्थ-वैषम्य और मशीनीकरण के कुपरिणामस्वरूप श्रम की प्रतिष्ठा घट गयी है। इसके कारण श्रमजीवी वर्ग का भी पराभव हुआ है। वर्ग-चेतना से प्रेरित सर्वहारा वर्ग अर्थाभाव के कारण सामाजिक अपराधों में अवलिप्त दिखाई देते हैं तो कभी यौनाचार की स्वच्छंदता की ओर उत्प्रेरित होता। श्रमिकों के चरित्र के इस पक्ष से अवगत समाज का अन्य वर्ग इससे घृणा करता है। उसे हीन भावना से देखता है तथा उसके ऊपर हमेशा चोरी, अपराध, बेईमानी का संदेह करता रहता है। आर्थिक अभाव श्रमिकों के नैतिक मूल्यों में भी विघटन लाता है।

श्रमिक-जीवन की आर्थिक परिस्थितियों को यशपाल के इन शब्दों के आधार पर व्यक्त कर सकते हैं-"मार्क्सवाद के अनुसार आर्थिक उद्देश्य से किए जानेवाले कार्य व प्रयत्न समाज के संगठन, विचारों और शासन का रूप निश्चित करते हैं। मार्क्सवाद आर्थिक परिस्थितियों को भाग्य की बात नहीं समझता। आर्थिक परिस्थितियों के कारण पैदा हो जाने वाली अड़चनों को दूर करने के लिए मनुष्य जो विचार और कार्य करता है, मार्क्सवादी उन्हें भी आर्थिक परिस्थितियों का अंग समझते हैं।"[83] सरकार के अनेक नियम-कानूनों के बाद भी श्रमिकों को सही मजदूरी नहीं मिलती। आज भी देश के 70-80 प्रतिशत श्रमिकों का प्रति दिन आय इतना कम है कि वे दो जून की रोटियों का जुगाड़ भी नहीं कर पाते। प्रगतिशील भारत के श्रमिक-वर्ग की आर्थिक परिस्थिति का परिदृश्य और वास्तविकता ऐसी ही है।

3. राजनैतिक परिस्थितियाँ

देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा होने के कारण यह आवश्यक है कि श्रमिक और राजनीति के संबंध को परखा जाए। समाज में अनेक प्रकार के परिवर्तन

---

[82] नदी फिर लौट आई-पृ.140

[83] मार्क्सवाद-यशपाल-पृ.31

और विकासोन्मुख योजनाओं और व्यवस्थाओं की स्थापना के बावजूद भी देश का श्रमिक अपने राजनीतिक महत्व और अधिकारों से अनभिज्ञ है।

3.1 राजनीति और श्रमिक

समाज में अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए श्रमिकों की राजनीति में हिस्सेदारी और हस्तक्षेप की आवश्यकता रही। भारतीय श्रमिक आंदोलन इतिहास की अनेक घटनाएँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि राजनीति की उपस्थिति ने श्रमिकों और उसके साहस को बढ़ाया। श्रमिकों का राजनीति से संबंध का माध्यम है- श्रमिक संगठन। इन संगठनों के माध्यम से ही श्रमिक राजनैतिक पार्टी या उनकी विचारधाराओं से साक्षात् कर पाता है। पूँजीपति वर्ग से लड़ने और उनके सम्मुख अपने आपको उपस्थित कर पाने का साहस राजनीति ही प्रदान करता है।

श्रमिक जीवन में राजनीति का अपना महत्वपूर्ण स्थान और भूमिका है जिसे नकारा नहीं जा सकता। राजनीति श्रमिकों को शक्ति प्रदान करती है, उन्हें समाज में और समाज के अन्य वर्ग के लोगों के सामने खड़े रहने का साहस देती है। श्रमिक जीवन में राजनीति के महत्व का मार्क्सवादी दृष्टिकोण से पहल करते हुए भुवनेश विनय से कहते हैं-"मैं मार्क्स का उद्धरण देता हूँ, क्रांति कोई व्यक्ति या पार्टी नहीं करती, जनता करती है, पूरा देश करता है... और उसको अंजाम तक पहुँचाने के लिए सर्वहारा की पार्टी बहुत जरूरी होती है। पार्टी कई मोर्चे पर एक साथ काम करती है। मजदूरों को ट्रेड यूनियनों में संगठित किया जताा है। उनके फेडरेशन और कंफेडरेशन बनाए जाते हैं। संघ और सहाबंध। और अपने आर्थिक हितों के प्रति सचेत किया जाता है और राजनीतिक प्रशिक्षण दिया जाता है-पॉलिटिकल ट्रेनिंग, राजनीतिकरण।"[84]

श्रमिकों में राजनीतिक जागरण का सबसे अधिक लाभ देश और उसकी प्रगति को ही होता है। क्योंकि प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से राजनीतिक परिवर्तनों का सीधा असर देश की जनता के इस सबसे बड़े हिस्से को ही प्रभावित करता है।

---

[84] बीच में विनय-पृ.68

श्रमिकों का राजनीति में हिस्सेदारी के महत्व को प्रस्तुत करते हुए हरि कहता है- "इस देश को बनाने में सबसे बड़ा योगदान मजदूरों का रहा है। जिन मजदूरों ने अपनी मेहनत से इस देश को समृद्ध किया है, आज भी उनकी दशा उतनी ही दयनीय है, जितनी शोषण की चरम सीमा के दिनों में थी... कल तक हमारी जो लड़ाई खेतों और दफ्तरों तक सीमित थी, अब उसे विधानसभा तक ले जाने का समय आ गया है।"[85] श्रमिक की समस्याओं और उसकी शक्ति की पहचान राजनीति से होनी ही चाहिए। ऐसा होने पर ही उनकी अवस्था में सुधार और विकास की गुंजाइश हो सकती है।

श्रमिकों के साथ-साथ संगठनों का राजनीति और सत्ता में प्रवेश की आवश्यकता है। श्रमिक संगठन ही सरकार और सत्ता के सम्मुख श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता है। संगठन और इसके नेता ही श्रमिकों की वास्तविक स्थिति को सरकार के सामने तर्कसंगत शेली में प्रस्तुत कर पाता है। इसलिए हरि के साथी उसे चुनाव लड़ने के लिए उत्साहित करते हैं। वे उससे कहते हैं-"हम तो कहेंगे हरि, तुम प्रस्ताव को मान ही लो... यूनियन के कामों को आगे बढ़ाने में सियासती ताकत की मदद लेना जरूरी है। ... विधान सभा में जब तक ट्रेड यूनियन की ओर से आवाज़ नहीं उठाई जाएगी, तब तक हमारी ताकत जितनी बढ़नी चाहिए नहीं बढ़ पाएगी।"[86] यूनियन के कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए और अपने प्रस्तुतीकरण को दृढ़ करने के लिए श्रमिक अब इस सत्य को जान पा रहा है कि उसे राजनीति की सहकारिता की आवश्यकता है। 'धारा के बीच से' उपन्यास में गोविंद को भी उसके साथी इसी कारण चुनाव में खड़े होने के लिए कहते हैं। गोविंद पहले राजनीति से अपने आपको अलग रखना चाहता था पर मोहन की बातों से प्रभावित हो उठता है-"मोहन की यह बात उसे अपील कर गई कि सत्ता के हर क्षेत्र में शोषितों और दलितों का

---

[85] और पसीना बहता रहा-पृ.162
[86] और पसीना बहता रहा-पृ.297

आदमी होना चाहिए। इससे क्रांति चाहे न हो, क्रांति की जमीन जरूर तैयार होगी। हमें संसदीय मोर्चे की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।"[87]

श्रमिक आंदोलन के इतिहास में भी यही देखने को मिलता है कि जब तक राजनीति की पैठ उन हड़तालों में नहीं हुई तब तक उन गरीब और अनपढ़ श्रमिकों को और उनकी माँगों को कोई मूल्य नहीं मिला। 'बेदखल' उपन्यास में श्रमिकों और किसानों की आंदोलन की विफलता का एक कारण राजनीति का उनमें मुख मोड़ना भी था। आंदोलन के अगुआ बाबा रामचंद्र इस सत्य को परख और समझ सकते हैं। वे कहते हैं-"लोगों में एकता है, संगठन है, वे एक आवाज़ पर खड़े हो सकते हैं। लेकिन तालुकेदारों की मनमानी के खिलाफ कैसे लड़ें। हुकूमत उनके साथ है। वकील-बैरिस्टर उनके, थाना-पुलिस उनकी। ... कांग्रेस की मदद के बिना कुछ होनेवाला नहीं है।"[88] आंदोलन में राजनीति की अनुपस्थिति के कारण ही किसानों और श्रमिकों की माँगों पर न सरकार और न ही व्यवस्था ध्यान देती है। यहाँ तक कि मीलों दूर से आए श्रमिकों की हुजूम को रहने-खाने की सहूलियत के बारे में भी वह नहीं सोचती।

मार्क्सवाद के प्रभाव और रूस क्रांति की सफलता के बाद अनेक देशों में श्रमिकों और संगठनों के नेता राजनीति के उच्च पद पर अधिकार जमाते हैं और शासन तंत्र को अपने हाथों में लेते हैं। यही कारण है कि विदेशों में ऐसे अनेक देश हैं, जहाँ आज श्रमिकों की पार्टी का शासन है और उनकी उन्नति और विकास के लिए न केवल कई अधिनियम बने हैं, बल्कि उनका अनुपालन भी हो रहा है। श्रमिकों का राजनीतिक जागरण और समझ देश की प्रगति के लिए अनिवार्य है।

3.2 राजनैतिक शोषण और श्रमिक

देश के राजनेता और राजनीतिक व्यवस्था अपने लाभ के लिए सदैव देश के लोकतंत्र और जनता की आशाओं का उल्लंघन करती ही आई है। श्रमिकों और

---

[87] धारा के बीच से-पृ.205

[88] बेदखल-पृ.113

किसानों के लिए पारित हुए कितनी ही योजनाएँ केवल प्रचार अभियानों और भाषण के मुद्दे बन कर रह जाती है। राजनीतिक शोषण तंत्र और भ्रष्टाचार तथा स्वार्थ की प्राथमिकता के कारण श्रमिक वर्ग किसी भी प्रकार की सुविधाओं का भुक्तभोगी नहीं बन पाता। राजनेताओं को इस वर्ग की याद और उत्थान की चिंता तभी सताती है जब वह चुनाव लड़ने के लिए इन क्षेत्रों में जाता है। राजनीति में भ्रष्टाचार की बढ़ रही मनोवृत्ति के कारण आज समाज का सभी वर्ग राजनीतिक शोषण का शिकार है। लेकिन साधनहीन और गरीब श्रमिक वर्ग को इनकी मार सबसे अधिक झेलनी पड़ती है।

चुनाव के समय पर हर राजनीतिक पार्टी और राजनेता श्रमिकों की उन मैले-कुचले और अविकसित क्षेत्रों में जाने के लिए प्रस्तुत रहते हैं जहाँ अन्य समय जाने के लिए उन्हें अनेक प्रकार की कठिनाई होती है। यहाँ तक कि रातों-रात उन जगहों पर विकास के नाम पर अनेक दिखावा भी किया जाता है, जिससे वहाँ के श्रमिक उनके प्रति आकर्षित हों और उनका समर्थन करें। 'इदन्नमम' उपन्यास में इसे देखा जा सकता है। गोंति में जब चुनाव का ऐलान होता है तब गाँव में बिजली देने के लिए राजनेताओं के द्वारा तेज़ी से काम शुरू हो जाता है। लोग प्रसन्न हो कर वोट दे उन्हें जिता देते हैं, लेकिन चुनाव के बाद सब काफुर हो जाता है-"चुनाव गया रौशनी गयी। फिर किसी के ध्यान में नहीं चमका वह गाँव। जनता ही कौन था कि आँखें फेर लीं आहलकारों ने? क्यों विमुख हो गए नेता लोग? क्यों भूल गए कि हम प्रकाश के छलावे देने को गाड़ आए थे, जिसके एवज़ में मड़इयाँ ढहाई थीं, पेड़ काटे थे, हरियाली सुखा आये थे। उन ग्रामवासियों की आँखें जल-जलकर बुझ रही होंगी।"[89] राजनीति और नेताओं का यह छल और भ्रष्टाचार बहुत ही पुराना है। लेकिन विडंबना यही है कि हर बार लोग उन छल के व्यूह में फँस जाते हैं।

श्रमिकों के आगे अपने आपको स्वच्छ और ईमानदार तथा उनका प्रतिनिधि प्रमाणित करने के लिए राजनेता अनेक प्रकार का ढोंग करता है। माधो, जो अपने

[89] इदन्नमम-पृ.353

स्वार्थ के लिए बाँध पर काम कर रहे अनेक श्रमिकों को ठग चुका है तथा उनकी जीविका को दाँव पर लगा अपना लाभ करता आया है। चुनाव जीतने के लिए अपने आपको श्रमिकों का हितैषी के रूप में प्रस्तुत करता है। वह कहता है-"क्योंकि इस यात्रा से, बस्ती से मेरा बहुत पुराना नाता है, मँ यहाँ पैदा हुआ, बड़ा हुआ, मुझको यहाँ की जनता से प्यार है, प्रेम है, मैं यहाँ की जनता को प्यार करूँगा तो जनता मुझे प्यार करेगी और मुझे चुनकर अपने प्यार का सबूत देगी।"[90] अपने हक में वोटों की गिनती और अपने स्वार्थ के लिए वे किसी भी प्रकार का हथकंडा अपना सकते हैं। अपनी प्रतिछवि को श्रमिकों के आगे स्वच्छ रखने के लिए। राजनीति के उपासक अन्ना-साहब श्रमिकों के आगे इस प्रकार अपनी बात को प्रस्तुत करते हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि वे राजनीति से घृणा करते हैं तथा श्रमिकों के प्रतिनिधि हैं। उनका कहना है-"लेकिन मैंने महसूस किया, राजनीति के गलियारे काजल की कोठरी है। x x x उन्हें पार्टी चंदे की मोटी रकमें ही न ला कर दूँ, बल्कि श्रमिक-संगठन की शक्ति को उनके हित में वोट-बैंक-सा इस्तेमाल करने में भी मदद करूँ।"[91] अपने इस वक्तव्य से वे श्रमिकों को यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि वे राजनीति के विरोधी और श्रमिकों के हितैषी हैं।

राजनीतिक शोषण का सबसे प्रमुख रूप भ्रष्टाचार ही है। राजनीति में भ्रष्टाचार के प्रवेश के कारण अनैतिकता, अपराध और मूल्यहीनता की मात्रा बढ़ती है। चुनाव जीतने व सत्ताधिकार के लिए सुविधासंपन्न लोग ऐसे शर्मनाक हथकंडे अपनाते हैं कि लोकतंत्र की मर्यादा नष्ट होने की उन्हें कोई परवाह नहीं रहती। चुनाव में अधिक वोट पाने के लिए राजनेता जातिवाद के नाम पर, पूँजी के आधार पर तथा शक्ति के प्रयोग पर मतदान प्रक्रिया को अपने वश में कर लेते हैं। जंगबहादुर भी चुनाव जीतने के लिए ऐसा ही करते हैं-"एक-एक आदमी बीसियों बार वोट देता रहा। दूसरे गाँव के लोग हजारों की संख्या में विभिन्न मतदान केंद्रों पर असली

---

[90] नदी फिर लौट आई-पृ.208
[91] आवां-पृ.179

मतदाताओं के नाम पर वोट डालते रहे। मृत मतदाता यमपुरी से आकर मत पेटिका में अपना वोट डाल गए।"[92] यह परिदृश्य वास्तव में वर्तमान राजनीति और मतदान केंद्रों का है, जहाँ बंदूक और लाठी के जोर पर अपने हक में मतदान कराया जाता है। पोलिंग अधिकारी, प्रिजाइडिंग अफसर, पोलिंग एजेंट सभी स्थितप्रज्ञ रूप से इस अन्याय को देखते रह जाते हैं। लोगों से उनके संवैधानिक अधिकार 'वोट' को भी राजनेता जबरन अपने हक में करता है जिसके फलस्वरूप वह अपनी इच्छा और लाभ के अनुसार शोषण और भ्रष्टाचार कर पाए।

राजनेताओं के चरित्र पर टिप्पणी करते हुए 'इदन्नमम' उपन्यास में महाराज कहते हैं-"राजनीति का आदमी डाकू, चोर, ठग से भी ज्यादा खतरनाक हो जाता है, क्योंकि इनमें से भी वह किसी एक का पेशा नहीं अपनाता। समय-समय पर तीनों हथकंड़े इस्तेमाल करता है और अपने-आपको बसके सामने ऐसा साध-तोलकर परोसता है कि भूल से भी भ्रम न हो उसकी असलियत का।"[93] राजनेताओं के इस छद्म को पहचानना मुश्किल है। राजनीति और राजनेताओं के स्वभाव को जानने के उपरांत भी कभी उनके वर्चस्व के सामने हतप्रभ हो तथा कभी अपने क्षणिक लाभ के लिए श्रमिक उनके इस छद्म रूप को भुलाकर उसका समर्थन करता है। लेकिन राजनीति का एक सकारात्मक पक्ष भी है, जो शक्तिशाली और न्याय को सर्वोपरि मानता है। राजनीतिक शोषण और श्रमिकों की अवस्था के परिप्रेक्ष्य में हरि को संपूर्णता के साथ समझाते हुए डॉ.क्यूरे कहते हैं-"आज की दुनिया में राजनीति एक बहुत बड़ी शक्ति है। यह भी कहूँगा कि राजनीति से जुड़े हुए कई लोग दुष्चरित्र और दिमागी तौर पर सड़े हुए होते हैं। पर इसका मतलब यह नहीं है कि राजनीति में आदमी अगर चाहे तो पूरी तरह ईमानदार, निःस्वार्थ, निश्छल और नेक नहीं हो सकता। x x x अपने इर्दगिर्द के लोगों की चालाकी और स्वार्थ से हमें सावधान रहना तथा अपने और मजदूरों के बीच किसी तीसरे को मत आने देना।"[94]

---

[92] नदी फिर लौट आई-पृ.216

[93] इदन्नमम-पृ.355

[94] और पसीना बहता रहा-पृ.299

श्रमिकों के अगुआ बननेवाले श्रमिक नेता भी राजनीति तंत्र के अंश बनने के बाद अपनी प्रतिबद्धता और संकल्प को भूल जाते हैं। उनके सभी शपथों और मनोबल पर राजनीतिक लाभ का परदा अपना दृढ़ स्थान बना लेता है। श्रमिक नेता अन्ना साहब के चरित्र के इस पक्ष को उजागर करते हुए पवार कहता है-"सो□ो, श्रमिक संगठन का दहाड़ता बाघ लोकसभा में पहुँच भीगी बिल्ली क्यों हो गया? जिसकी एक दहाड़ मालिकों की पेशाब ढीली कर देती थी... साआला... अपनी ढीली करवा रहा।"[95]

सत्ताधिकार और राजनीतिक लाभ के आगे बड़ा-से-बड़ा कर्मठ और प्रतिबद्ध मजदूर नेता भ्रष्ट बन जाता है। उसकी सभी शक्तियाँ और संकल्प राजनीति के चक्रव्यूह के सम्मुख निष्क्रिय पड़ जाते हैं।

3.3 वोट

देश के प्रत्येक नागरिक का संवैधानिक अधिकार है-वोट। यह एक ऐसा एकमात्र अधिकार है जिसके आधार पर कोई भी आम जन सरकार और राजनीति के सम्मुख अमूल्य प्रतीत होता है। इस कारण वोट की आशा और लालसा के फलस्वरूप गरीब और पिछड़ा हुआ श्रमिक-वर्ग भी राजनीति, सत्ता और सरकार के लिए महत्वपूर्ण बन जाता है। वोट का सीधा संबंध चुनाव से ही है। यह एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से हम अपनी समस्या और सोच को प्रस्तुत करने वाले प्रतिनिधि को चुन सकते हैं। वोट देने का अधिकार ही किसी वर्ग विशेष को राजनीतिक महत्व प्रदान करने में सहायक होता है। लेकिन राजनीतिक भ्रष्टाचारों के कारण आज वोट बिकाऊ बनते जा रहे हैं। देश की गरीब जनता और खासकर श्रमिक वर्ग कुछ प्रलोभनों की आड़ में अपना वोट उन्हें दे रहे हैं जो उन्हें अधिक प्राप्य दे रहा है। राजनीतिक अज्ञानता ही इसका मुख्य कारण है।

श्रमिकों की संख्या देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा होता है। इस कारण चुनाव में इनकी वोट को अपने समर्थन में लाने के लिए हर राजनेता सफल से सफल

---

[95] आवां-पृ.351

और संभव प्रयास करता है और बहुत हद तक इसमें सफल भी हो जाता है। लेकिन चयनित उपन्यासों में ऐसे अनेक संदर्भ सामने आए हैं, जहाँ श्रमिक वर्ग अपने नेता या यूनियन की सहायता से अपने इस शक्ति-वोट की महत्ता को समझ पाते हैं। आज का श्रमिक पैसों के आगे अपनी वोट बेचने के लिए प्रस्तुत नहीं है। श्रमिकों के नेता श्रमिकों में वोट की महत्व और उपादेयता की जागृति फैलाते हैं। 'इदन्नमम' उपन्यास में मंदाकिनी के भरपूर प्रयासों के फलस्वरूप राजनेताओं को अपनी अहमियत का एहसास दिलाने के लिए गाँव के मजदूर वोट का वर्जन करते हैं। सरकारी तंत्र से बार-बार अपमानित और किसी भी प्रकार की सहायता न पाने के कारण गाँव के श्रमिकों के बीच इस प्रकार चर्चा होती है-"सरकारी लोगों से। नेताओं से और मंतरी-संतरियों पर से अब हमारा विश्वास हट गया है, सो सौ बातों की एक बात कहे देते हैं, चाहे आज कहवा लो, चाहे कल कि अब की बार हम बोट डालने जायेंगे ही नहीं। ऐन हमारी द्वारे पर मोंटर क्या, जहाज लगाये खड़े रहना ससुर ◻ू!"[96] श्रमिकों की इस प्रकार के मनोभाव के पीछे अनेक कारण अपना कार्य करते हैं। विकास के नाम पर शुष्कता, समाधान के नाम पर दिलासा और सरकारी व्यवस्था की उपेक्षा व अत्याचार इन निरिहों में चेतना संचारित करता है। अब लोग पैसों के बदले भी वोट देने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। क्रैसर के मजदूरों का चुनाव का बहिष्कार करने के निर्णय पर मंदाकिनी कहती है-"हर वोटर को उसके वोट की कीमत धरते हैं आपके कार्यकर्ता। दो सौ, तीन सौ, चार सौ और पाँच सौ तक में निपटा लेते हैं सौदा। परंतु चुनाव की अवधि तो बहुत लंबी होती है। पाँच साल तक की दवा-दारू, इलाज-उपचार के लिए काफी नहीं रहते चार सौ, पाँच सौ, सो क्या करें? अब की बार ठान लिया है कि हम 'कहे' की नहीं 'करे' की परतीत करेंगे। और अगर नहीं तो ऐन खाली उठा ले जावें पेटी आपके आदमी। वोट नहीं पड़ेगा एक भी।"[97] हालाँकि वोट न देना या चुनाव का बहिष्कार करना सामाजिक और

---

[96] इदन्नमम-पृ.304
[97] इदन्नमम-पृ.308

राजनीतिक दोनों ही दृष्टिकोणों से युक्तिसंगत नहीं है, यहाँ तक कि कानूनी तौर पर भी अपराध है, परंतु देश की तात्कालिक राजनीतिक परिदृश्य और श्रमिकों के साथ सरकार के व्यवहार के आगे इस प्रकार का निर्णय तर्कसंगत प्रतीत होता है।

अशिक्षा, सामाजिक पिछड़ापन और राजनीतिक अज्ञानता के कारण श्रमिक यह निर्णय लेने में असमर्थ होता है कि वह अपना वोट किसे दे। श्रमिकों को वोट की शक्ति की वास्तविकता समझाते हुए हरि श्रमिकों को पैसों के आगे न झुककर अपने विवेक के प्रयोग से मतदान करने का परामर्श देता है। वह कहता है-"एक ओर पैसे सरकारी तंत्र की ताकत है, दूसरी ओर जनता की ताकत। इसलिए जीत हमारी ही होकर रहेगी। हमारे पास जो शक्ति है, वह पैसे और सरकारी तंत्र की न होकर आपकी अपनी शक्ति है और वोट न तो सरकारी तंत्र देता है न बैंकों में भरी दौलत देती है, बल्कि आप देते हैं।"[98] श्रमिकों को यह जानकारी दी जाती है कि उनके हितों और समस्याओं के समाधान का पहल वही कर सकता है जो उन्हीं लोगों के बीच पला-ब़□ हो। स्वानुभूति ही वह धरातल है जिसके आधार पर वे अपना वोट अपने उम्मीदवार को दें ताकि वह उनका सही दिशा में विकास कर पाए। चुनाव के पहले कारखानों के श्रमिकों को उपदेशात्मक शैली में अध्यक्ष कहते हैं-"वोट देने के पहले आप आश्वस्त हो लें, इत्मीनान कर लें, जाँच लें कि वह प्रत्याशी यानी उम्मीदवार, जिसे आप अपना वोट देने जा रहे हैं, भेड़ का खाल ओढ़े भेड़िया तो नहीं है। आप उसे वोट दें जो गरीबों, शोषितों और मजदूरों का पक्षधर हो, जो व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर हो। x x x मेरा साग्रह अनुरोध है कि उन्हें ही आप अपना वोट देकर विजयी बनावें। उनकी विजय गरीबों और शोषितों की विजय होगी-आपकी विजय होगी।"[99]

'और पसीना बहता रहा' उपन्यास में श्रमिकों को मतदान के महत्व के बारे में जागृत कर तथा अधिक से अधिक मतदाताओं को आगे लाने के लिए श्रमिक नेता हरि और उसका संगठन न केवल गाँव-गाँव प्रचार का कार्य करता है वरन लोगों को

[98] इदन्नमम-पृ.316
[99] धारा के बीच से-पृ.205

शिक्षित कर हस्ताक्षर कराने □ाता है, जिस के फलस्वरूप वे अपना वोट सही उम्मीदवार को दे पाएँ। "गाँव में अधिक से अधिक मतदाता तैयार करने के लिए गाँव-गॉवं में एक सघन साक्षरता अभियान चलाया गया। लोगों को हिंदी में अपना नाम लिखना सिखाने के लिए बच्चों की जगह बालिगों को पढ़ना-लिखना सिखाया □ाता रहा।"[100] इन सभी प्रकार के प्रयासों का मुख्य उद्देश्य श्रमिकों को उनके मतदान अधिकार की विशिष्टता और प्रधानता के बारे में अवगत कराना है।

श्रमिक नेताओं, संगठन और समाज सेवियों का श्रमिकों को वोट की महत्ता के प्रति जागरूक बनाने के प्रयास सिक्के का एक पहलू है। सत्ता और व्यवस्था का दूसरा पहलू वह है जहाँ मतदान की महत्ता को जानकर भी देश का श्रमिक विकल्पहीनता का शिकार हो उन्हीं के साथ जाने को विवश होता है जिनके व्यक्तित्व और चरित्र के बारे में उसे पूर्वज्ञान है। कारखानों व उद्योगों के लाखों श्रमिकों की विवशता और परिस्थिति के साथ समायोजन के बारे में टिप्पणी करता हुआ पवार कहता है-"देश का अधिकांश मताधिकारी जानता है कि वह चांडालों को चुनने के लिए विवश है। विकल्पहीनता उसे किसी पर भी विश्वास नहीं करने देगी। विकल्प बनकर ही उसे विश्वास दिलाना होगा और खुलकर कहूँ तो चांडालों के वक्त चांडाल हुए बिना जंग नहीं जीती जा सकती। चाहे जितने समय के लिए परकाय-प्रवेश करना पड़े-करना होगा, वरना समाजवाद देश में सदैव के लिए मात्र विचार-भर बनकर रह जाएगा।"[101] पवार की यह टिप्पणी आज के मतदाताओं की विवशता को प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकत है कि राजनीति और श्रमिक का संबंध आज के समय और समाज में दिन-ब-दिन गहरा होता जा रहा है। श्रमिकों में वोट की महत्ता का ज्ञान फैलाया जा रहा है। शहर या महानगरों में किसी भी पार्टी के चुनाव प्रचार में गाड़ी भर-भर गाँव के लोगों के साथ कुछ पैसे पाने की आशा में हज़ारों की संख्या

---

[100] और पसीना बहता रहा-पृ.315

[101] आवां-पृ.350

में श्रमिकों को उन जलसों में देखा जा सकता है। एक तरफ जहाँ श्रमिक राजनीतिक अज्ञानता के कारण शोषण और भ्रष्टाचार के परिणामों का शिकार हैं वहीं दूसरी ओर विकल्पहीनता से परिचित भी। श्रमिकों का राजनीतिक भ्रष्टाचार का शिकार बनने का एक और प्रमुख कारण है-धर्म। राजनेता श्रमिकों के धर्म संबंधी पिछड़ेपन से सर्वथा परिचित हैं। वे श्रमिकों को दलित, आदिवासी, उच्च जाति, निम्न जाति के नाम पर विखंडित करते हैं और धर्म के नाम पर वोट अर्जित करते हैं। इसके साथ ही श्रमिकों को शराब तथा कुछ पैसों का लोभ देकर उनका वोट खरीद लेते हैं। एक तरफ राजनीति तो भ्रष्ट है ही दूसरी तरफ श्रमिक भी उसी का पथ अनुसरण करते हैं। व्यावहारिक धरातल पर श्रमिकों की राजनीतिक चेतना को जागृत करने के गहन और संकल्पित प्रयासों की आवश्यकता है।

4. धार्मिक परिस्थितियाँ

विश्व का प्रत्येक समाज और उसमें रह रहे लोग किसी-न-किसी धर्म का अनुपालन करते हैं। शायद ही ऐसा कोई समाज होगा जो धर्म की अवधारणा को न मानता हो। मनुष्य जीवन को अनुशासित और श्रृंखलाबद्ध रूप से चलाने के लिए धर्म का स्वरूप सामने आया। ऐसा माना जाता है कि धर्म के पालन के बिना मनुष्य महज पशु है। धर्म जीवन जीने की पद्धति है। यह जीवन जीने की, नैतिक कर्तव्यों और नियमों की वह पद्धति है, जिसके पालन से व्यक्ति लोक और परलोक दोनों में यश और पुण्य लाभ करता है। धर्म वस्तुतः मानव समाज को उन सभी उच्छृंखलता और अतियों से बचाने की संहिता है जो जीवन के विकास क्रम में व्यक्ति के अस्तित्व बोध के साथ ही इतनी महत्वपूर्ण हो जाती है कि उनके कारण कभी-कभी समूचा अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। मानवीय विचारों की कोई भी संहिता जब किसी भू-भाग पर अपने गुरुतर उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए अग्रसर होती है तो उसे सहज में धर्म की संज्ञा प्राप्त हो जाती है।

धर्म और उसकी नीतियों, उसके संस्कार व अंधविश्वास इन सभी का सबसे अधिक प्रभाव उस वर्ग या उन लोगों पर सबसे अधिक पड़ता है जो आर्थिक और

शैक्षिक रूप से पिछड़े रहते हैं। इन वर्गों में धर्मांधता और अंधविश्वासों की मान्यता अधिक रहती है। धर्म एक सांस्कृतिक सर्वव्यापकता है जो विवाह, परिवार, जात-पात, गोत्र निषेध, सामाजिक संगठन सभी के संचालन में उपस्थित रहता है। सर जेम्स फ्रेजर ने धर्म के बारे में कहा है कि-"धर्म से मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि अथवा आराधना समझता हूँ, जिनके संबंध में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति एवं मानव जीवन का मार्ग दर्शन करती है तथा नियंत्रित करती है।"[102] धार्मिक वृत्तियाँ ही कर्म और व्यवहार में अपना रूढ़ और जड़ स्थान बना लेती हैं तथा समाज को धार्मिक भेदभाव, अज्ञानता और जड़ता प्रदान करती हैं। भारतीय श्रमिक वर्ग जो मूलतः गाँव से शहर की ओर विस्थापित हुआ, वह अपने साथ ग्रामीण धार्मिक चिंतन और जातपात तथा भेदभाव की पृष्ठभूमि को साथ लेकर ही आया। इस कारण वह अन्य परिस्थितियों के बावजूद धार्मिक स्तर पर भी पिछड़ा रहा और उसमें एकता के संचारण और संगठन के ज्ञान का उदय विलंब से ही हुआ।

4.1 धार्मिक भेदभाव

धर्म और धार्मिक विचारधाराओं के आधार पर मनुष्य अपने विवेक को खोकर, उनका दास बन जाता है। धार्मिक भेदभाव मूलतः जाति के ऊँच-नीच होने की भावना से ही पनपता है। धार्मिक संस्थाएँ और धर्म के पाखंड़ियों ने लोगों की मनःस्थिति में ऐसी धारणाएँ बिठा दी हैं, जिनके आगे उनकी स्वयं की आत्मा और वि□रशक्ति निष्क्रिय हो चुकी हैं। वे व्यक्ति को उसके आचरण और व्यवहार के आधार पर नहीं वरन उसकी जाति या धर्म के आधार पर करते हैं। हमारे चारों ओर फैला हुआ समाज हमें बचपन से ही इन भेदभाव या धार्मिक अंतर को समझाने और बतलाने का कार्य आरंभ कर देता है जिसके फलस्वरूप आगे चलकर हम उन वैषम्यों का पालन कर पाएँ। हरि अपने बचपन की घटना को याद करता हुआ समाज की धार्मिक भेदभाव की भावना पर चिंतित होता है। वह याद करता है कि किस तरह स्कूल में एक पादरी से जब उसे ईसा की तस्वीर भेंट मिलती है तो घर में उसका

---

[102] सर जेम्स फ्रेजर, दि गोल्ड बो (न्यूयार्क 1950)-पृ.459

धर्मांध बाप उस पर बिगड़ता है और उसे उससे अपने भगवान की पहचान करवाता है। "उसे लिए हुए जब वह घर पहुँचा था तो उसके पिता उस पर बिगड़ उठे थे। हरि उस नाराजगी को समझ पाने में असमर्थ था। हाँ, इतना जरूर समझ गया था कि वह दूसरे लोगों के देवता की तस्वीर थी। उसी शाम उसने हरि को अपने घर की देवकुटी के सामने ले जाकर हनुमान जी की तस्वीर दिखाकर कहा था-"ये हमारे देवता हैं और हम सबकी रक्षा करते हैं।"[103]

धार्मिक भेदभाव और जातपात की भावना समाज के उच्च वर्ग अपने फायदों के लिए बनाते हैं और सर्वहारा वर्ग उसका शिकार बनता है। लेकिन जब परिस्थिति अनुकूल हो तब ये उच्च वर्ग ही इस भेदभाव को भुलाकर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं। इस बात पर टिप्पणी करता हुआ भोला अपनी माँ से उस घटना के बारे में कहता है जब पंडित शिवदास जंगल में खाना परोसने के लिए एक डोम के चम्मच का इस्तेमाल करते हैं, लेकिन जब उसके पत्तल के पास जाते हैं तो संभल जाते हैं ताकि उनका धर्म न नष्ट हो पाए। भोलु कहता है-"और धनुवा, जनिया और भी थे दो-तीन वे जरा दूर बैठ गये थे। डूम जो ठैरे। शिवदत्त पंडित ने एक तरफ से खाना परोसना शुरू किया, पहले भात और फिर दाल। धनुवा को भी भात दिया और दाल के लिए ड्याडू जैसे उसकी थाली की तरफ बढ़ाया तो स्वयं दूर चाप की तरह तन गए। इसलिए कि धनुवा की थाली डालते हुए दाल के छींटें उन पर या उनके हाथ पर न गिर जाएँ। वह अछूत हो जाएँगे।"[104] एक तरफ जहाँ श्रमिक वर्ग अपनी अज्ञानता और धर्मांधता के कारण बँटा हुआ रहता है वहीं समाज के अन्य लोग भी उससे भेदभाव करते हैं और उपेक्षित नज़र से देखते हैं।

श्रमिकों के आपसी धार्मिक भेदभाव का वर्णन 'बेदखल' उपन्यास में मिलता है। साहुकारों, जमींदारों, लगान और उधारी के बोझ तले दबे हुए यह भारतीय किसान, मजदूर और खेतिहर श्रमिक, सभी समस्याओं के बाद भी धार्मिक भेदभाव

---

[103] और पसीना बहता रहा-पृ.98
[104] आसमान झुक रहा है-पृ.121

की भावना से लिप्त हैं। लेखक वर्णन करते हैं-"पहले कुछ लोग चारपाइयों पर और कुछ जमीन पर ईंट रखकर बैठते थे। बाद में चंदे की रकम से एक जाजिम खरीदकर आया और अधिकांश लोग उस पर बैठने लगे। फिर भी कुछ छोटी जाति के लोग जाजिम से बाहर ही बैठते थे।"[105]

श्रमिकों के धार्मिक भेदभाव का लाभ संगठन, प्रबंधन, राजनेता सभी उठाते हैं। वे इन भेदभाव की भावनाओं को सांप्रदायिकता का रूप प्रदान करते हैं। मजदूर बस्ती में हुए सांप्रदायिक तनाव की वास्तविक छवि नमिता के आगे प्रस्तुत करते हुए यादवजी बताते हैं-"ऐंठा-ऐंठी सुहैल और सुनंदिया के बीच, उनका निजी मामला ठहरा। बच्ची जनम गई। आगे-पीछे मामला सुलट ही जाता, नगर मुहल्ले के किसी कनकुसिए ने नेता बनने के शौकीन दद्दू तिवारी को हिंदुत्व की रक्षा के लिए अचानक नींद से जगा दिया। दद्दु तिवारी भगवा पताका वाले ठहरे। उन्होंने मामला अखबार में छपवा दिया। अखबार वाले ने मसाला बनाके मामले को सांप्रदायिक रंग दे दिया।"[106] श्रमिकों के निजी मामलों में भी नेता और राजनीति का पहल धर्म के आधार पर होता है। उन्हें धर्म की मार्मिकता और सूक्ष्मता का वास्ता देकर उनमें सांप्रदायिक तनाव पैदा किया जाता है। कट्टरपंथियों को हमेशा अवसर का ही संधान रहता है, धर्म और जाति के नाम पर बने उत्तर को और गहरा करने का। धार्मिक नेताओं और राजनेताओं का श्रमिकों के बीच धार्मिक भेदभाव को बढ़ाने के उद्देश्य के बारे में चेताते हुए अन्ना साहब कहते हैं-"विषमता मिट जाएगी तो वे धार्मिक उन्माद और जातीय सांप्रदायिकता के नाम पर किसकी झोपड़ियाँ फुकवाएँगे? अराजकता फैलाएंगे और बड़ी आसानी से दोष निरीहों के मत्थे मढ़ देंगे कि असली अपराधी, लुटेरे, बलात्कारी, ठग और कौन, गंदी नाली के कीड़े यही तो हैं। झोपड़ियों में रहने वाले? स्वस्थ प्रगतिशील समाज का कोढ़।"[107]

---

[105] बेदखल-पृ.38

[106] आवां-पृ.106

[107] आवां-पृ.179

वास्तविकता यही है कि जब तक श्रमिक अपनी धार्मिक संकीर्णता से बाहर नहीं आएँगे तब तक उसे हर तनाव और उन्माद का कारण माना जाता रहेगा। क्योंकि आर्थिक रूप से अविकसित और अशिक्षित होने के कारण धार्मिक भेदभाव के मूल में उसकी छोटी सोच को ही दोषी ठहराया जाता है।

श्रमिकों की उन्नति के लिए भेदभाव से अपने आपको अलग करें। इस प्रकार का भेदभाव उन्हें संगठित होने से रोकता है और यह रुकावट उन्हें अपनी समस्याओं को एकता के साथ प्रस्तुत करने की शक्ति नहीं दे पाती। इस समस्या का सटीक अनुमान लगाकर बाबा रामचंद्र अपने किसान और मजदूर भाइयों से कहते हैं कि- "सुख-दुःख, हानि-लाभ सबका एक है। जमीन, आमसान, हवा, पानी और आग में सबका बराबर का हिस्सा है। हिंदु-मुसलमान से भी क्या फर्क है? सबको एक ही परमात्मा ने बनाया है। ... खेती करनेवालों और मजूरी करनेवालों की सब जगह एक ही जाती है। यह सारा ढकोसला पैसेवालों का और जुल्म करनेवालों का है। □ब तक लोप इस बात को नहीं समझेंगे, मल जुलकर कोई बड़ा काम नहीं कर पाएँगे।"[108]

सामाजिक स्तर पर वास्तविकता यही है कि धार्मिक रूढ़ियों और भेदभाव की मानसिकता के आगे विवश होने के बावजूद भी श्रमिक वर्ग सांप्रदायिकता के मनोभाव और तनावों से दूर ही रहता है रहना चाहता है। लेकिन समाज का अन्य वर्ग उसे आर्थिक स्तर पर कुछ पैसे और धार्मिक स्तर पर उद्विग्न कर धर्म के नकारात्मक पक्ष का प्रयोग करते हैं। सांप्रदायिक दंगों को और उनमें लिप्त श्रमिकों को रोकने का उपाय बताते हुए बड़े ही तने हुए अंदाज में सुनंदा नमिता के सम्मुख अपने विचारों को इस प्रकार प्रस्तुत करती है-"कुंआरी माँ की जचकी का हक लड़ने से पहले वे सांप्रदायिक उन्माद को खत्म करने की लड़ाई लड़ें, वरना सब बरबाद हो जाएगा। खोली-खोली के भीतर घुसकर हिंदु-मुसलमान औरतों को इतना जागरूक कर दें कि वे अपने घरों में उत्मादी मर्दों के हाथों से उनकी कटारें छीन लें। उनकी

[108] बेदखल-पृ.41

संदिग्ध गतिविधियों को चेतावनी दे दें कि अगर उन्होंने भड़का-भड़काई के माहौल में हिस्सा लिया तो ध्यान रखें-अपने घर-परिवार से हाथ धो बैठेंगे-बच्चों समेत वे आत्मदाह करेंगी।"[109]

सुनंदा अपने क्रूर अनुभवों और समाज में हो रही सांप्रदायिक विसंगतियों में श्रमिकों की हिस्सेदारी को रोकने का पहल करती है। क्योंकि इस प्रकार की हिस्सेदारी उनके जीवन और जीविका दोनों के लिए ही हानिकारक हैं। श्रमिकों के बीच फैले धार्मिक भेदभाव की भीषणता और कुरूपता को बड़े ही संवेदनात्मक रूप से प्रस्तुत करते हुए भोला जो स्वयं एक श्रमिक है गोपुली लुहारिन को समझाते हुए पूजा के लिए दहलीज में फैले फूलों को प्रतीक बना कर कहता है-"ये फूल एक ही प्रकृति ने बनाए हैं। इनमें प्रकृति ने एक जैसा ही रस, रंग भरा है। सवर्णों और हरिजनों की टोकरियों में सजने से पूर्व इनमें एक ही जैसे प्राण थे। जब प्रकृति ने इन फूलों में कोई फर्क नहीं किया तो हम और तुमने क्यों? हमारे मन मस्तिष्क में क्यों? हमारी उत्पत्ति भी तो उसी प्रकृति के द्वारा की गयी है।"[110]

वास्तविकता यही है कि जब बनाने वाले ने हमसे कोई भेद न रखा हो तो हम जान बूझकर कुछ तुच्छ शक्तियों और अंध मान्यताओं के आगे हार कर किसी भी प्रकार के भेदभाव को क्यों बढ़ावा दें। श्रमिक चाहे सवर्ण या ब्राह्मण अथवा हरिजन या अछूत उसकी जीविका ही उसके धर्म को निर्धारित करती है। विश्व के हर श्रमिक का एक ही धर्म है और वह है-श्रम। श्रमिकों के बीच इस सच्चाई को प्रस्तुत करते हुए कॉमरेड लक्ष्मण माधव कहता है-"मैं मजदूर हूँ और मजदूर का धर्म होता है मेहनत। उसका भगवान होता है उसके ये दो हाथ। और उसका मंदिर-मस्जिद होता है वो जगह जहाँ वह काम करता है। उसका ईमान होता है उसकी रोजी और उसकी किताब होती है इनसानियत। बस।"[111]

---

[109] आवां-पृ.112

[110] आसमान झुक रहा है-पृ.21

[111] बीच में विनय-पृ.238

विश्व के हर श्रमिक को इस सच्चाई का ज्ञान होना आवश्यक है। इस भेदभाव से ऊपर उठकर ही वह अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख पाएगा और अपना विकास करने के साथ-साथ वैश्विक स्तर पर जुड़ पाएगा।

4.2 भगवान और भाग्य

धार्मिक अज्ञानता के कारण श्रमिक धर्म की मान्यताओं, रूढ़ियों और अंधविश्वासों का दास बन जाता है। वह 'भगवान' नामक स्वरूप के सम्मुख पूर्ण रूप से समर्पित और निष्क्रिय बन जाता है। यही कारण है कि मालिक के बार-बार आदेश देने के बाद भी मजदूर कालीमाई के चबूतरे को नहीं तोड़ते। क्योंकि उनके मन में यह धारणा जम चुकी है कि ऐसा करने पर कालीमाई उन पर अन्याय और मुसीबतें बरसाएगी। चबूतरा तोड़ने, दिहाड़ी में आया एक श्रमिक की प्रतिक्रिया इस प्रकार है-"इसलिए जब उन्हें इसका पता चला तो उन्होंने भी इन्कार कर दिया। उनमें से एक क्लोद ने मारतें से कहा था-तों मूसे मारतें नों। x x x मुझे न तो अपने परिवार को पागल करवाना है और न स्वयं को अपाहिज।"[112]

अपने आप को गरीब, अज्ञानी और अधर्मी समझने वाला श्रमिक धर्म के पाखंडियों की हर बात को मान लेता है। गाँव का पुजारी संतराम काली और अन्य श्रमिकों के मन में इस डर को स्थापित करता है कि उन अधर्मियों के जाने से मंदिर अपवित्र होगा, अतः इसकी पवित्रता को बचाने के लिए उनका मंदिर में प्रवेश निषेध है। लेकिन गाँव के वातावरण से बाहर आने के पश्चात् भी काली के मन से यह भावनाएँ नहीं जाती। शहर के मंदिर के सामने खड़ा हो वह अपनी इसी अज्ञानता को ही दुहराता है-"काली के मन में मंदिर जाने की उत्सुकता जाग उठी क्योंकि गाँव में पंडित संतराम उन्हें मंदिर के अंदर जाने तो क्या, आसपास भी फटकने नहीं देता था। काली को चिंता होने लगी कि शहर के मंदिर में भी कहीं पंडित संतराम न बैठा हो?"[113]

---

[112] और पसीना बहता रहा-पृ.119

[113] नरककुंड में बास-पृ.110

मार्क्सवादी विचारधारा श्रमिकों की धर्म-संबंधी इस अज्ञानता का कारण और दोष पूँजीवादी वर्चस्व और व्यवस्था को देता है। उसके अनुसार धर्म और उसमें फैले अंधविश्वास लोगों की उन्नति में बाधा उत्पन्न करते हैं। कॉमरेड वर्मा अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-"हमारे सामने मुल्क में सिर्फ जमींदारी-पूँजीवादी शोषण ही नहीं है, सिर्फ धर्म की कट्टरता, आत्मा-परमात्मा का व्यापार ही नहीं है, सिद्धि, योग, तंत्र-मंत्र, बैराग, भक्ति, मोक्ष, जप-तप का एक पूरा जीवन-दर्शन ही नहीं, जादू-टोना, कुरीतियों, रूढ़ियों और अंधविश्वास की हमारी सभ्यता के अंग हैं। x x x हमें धर्म पर आस्था से कोई दुश्मनी नहीं है, लेकिन अंधविश्वास से धर्म के आडंबर पैदा होते हैं, जो एक खतरनाक और पीछे ले जाने वाली चीज़ है...।"[114]

श्रमिकों की धार्मिक अज्ञानता, भाग और भगवान पर अंधविश्वास और धर्म गुरुओं का अंधानुसरण उन्हें एक तरफ जहाँ धार्मिक भेदभाव का शिकार बनाता है वहीं दूसरी तरफ अविकसित रूप के कारण समाज में हीन भावना का शिकार भी होता है।

4.3 धार्मिक समता का प्रयास

संसार का हर धर्म लोगों को समता, एकता और भाईचारे का ज्ञान देता है। धर्म जीवन निर्वाह के आचरणों का ही संगम है। अतः उसमें समता, सद्भावना और मैत्री का प्रमुख स्थान है। धार्मिक अज्ञानता और इस कारण धार्मिक भेदभाव के बावजूद श्रमिकों में कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो विभिन्नताओं के बाद भी समता स्थापित करने का प्रयास करते हैं। अपने चाचा और माँ को जात-पात के भेदभाव से ऊपर उठने का संदेश देते हुए कालू उनसे कहता है-"आपके शास्त्रों में यह भी तो लिखा होगा कि जिस तांबे के घड़े का पानी आप लोग पीते आ रहे हैं वह भी बंसी टेमरा ने बनाया है। जिस घर में रह रहे हैं वह भी किसी 'ओढ़' का बनाया है और जिन कपड़ों को आप पहने हुए हैं वह भी तो गुसे दर्जी ने सीये हैं। जिन्हें पहनकर

---

[114] जुलूस वाला आदमी-पृ.210

आप अपने देवता के थान पर, भूमिया की जातर में जाते हैं।"[115] भोला इन वास्तविकताओं से परिचित करवाकर उन्हें जातपात और ऊँच-नीच से बचाने का प्रयास करना चाहता है।

भारत में श्रमिक आंदोलन के दौरान इस बात को स्पष्ट देखा जा सकता है कि श्रमिक अपनी जात-पात भुलाकर इस आंदोलन में भाग लेता है। 'बेदखल' उपन्यास में भूमिहीन किसानों और खेतिहर मजदूर अपने धर्म को भुलाकर 'सीताराम' का जयघोष कर आगे बढ़ते हैं। "पूरे देवजानी की मुसलमनौटी कीओर से आकर कुछ लोगों का जत्था बसौली के झुंड में शामिल हो गया। चारखाने की लुंगी, मैली-फटी बनियाइने और मिट्टी में जलाते नंगे पैर। झुंड ने जब सीताराम का घोष किया, मुसलमानों ने एक बार ठिठककर एक-दूसरे को देखा। फिर वे भी सीताराम बोलने लगे। x x x इस शब्द का अर्थ ही बदल दिया है। अब यह महज भक्तों का सीताराम नहीं है।"[116]

जात-पात के चक्रव्यूह में फंसे शिवदास को सही मार्ग दिखाता हुआ रामधन उससे कहता है-"अब जात-पाँत का युग नहीं रहा भाई साहब। अगर हम पाँच-सात परिवार एक साथ रहेंगे, एक दूसरे के दुःख-सुख में हिस्सा लेंगे, तो हमें औरों की क्या ज़रूरत?"[117] मनुष्य के लिए उसका जीवन धार्मिक मान्यताओं से कहीं बढ़कर है। क्योंकि श्रम करने की विवशता और आवश्यकता दोनों का उद्देश्य ही जीवन-निर्वाह को सुखद और सुगम्य बनाने के लिए है। क्योंकि जीवन की बुनियाद धर्म पर नहीं इनसानी जरूरतों पर कायम है। अपने गाँव के श्रमिकों को इस संकीर्णता से ऊपर उठाकर विकासात्मक कार्य की ओर ले जाने का प्रयास जवनदत्त करता है। वह कहता है-"कब तक हम लोग साब जैसे खुदगर्ज को मनमानी करने देंगे? कब तक उसके बहकावे और प्रलोभनों में आकर हम लोग अपने को इस तरह जाति-पाँति में बाँटते रहेंगे? अगर भविष्य में हमारी ये बैठकाएँ, जिनके बल पर हमारी

---

[115] आसमान झुक रहा है-पृ.119
[116] बेदखल-पृ.91
[117] धारा के बीच से-पृ.254

पहचान बनी रही, हमारी धर्म और संस्कृति बनी रही, हमारी भाषा बनी रही, हमारी इज्जत बनी रही, इसी तरह अलग जातियों और खेपों में बँटती रहीं तो आगे क्या होगा? इससे बेहतर यही है कि हम कॉपरेटिव सभा बनाएँ, जहाँ छोटे-बड़े का कोई प्रश्न नहीं होगा।"[118]

भारत में श्रमिक संगठनों की स्थापना में विलंब होने तथा श्रमिकों को संगठित न कर पाने के पीछे धर्म वह मुख्य कारण था जो श्रमिकों को एक-दूसरे से अलग किए हुए था। धार्मिक स्तर का यह भेदभाव आज भी श्रमिकों में उपस्थित है। लेकिन औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण भिन्न-भिन्न गाँव और समुदाय से लोग नगरों की ओर आकर्षित हो रहे हैं और परिस्थितिवश उन्हें एक दूसरे के साथ मिलकर रहना ही पड़ रहा है। इन सबके फलस्वरूप वह अपने धार्मिक भेदभाव को पीछे छोड़ समता और सद्भावना के साथ मिलकर रह रहा है जिसके परिणामस्वरूप उसे धर्म के नाम पर बरगलाना कठिन है।

* * *

[118] लहरों की बेटी-पृ.189

पंचम अध्याय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : विविध परिप्रेक्ष्य

1. स्त्री-श्रमिक
   - 1.1 कार्यक्षेत्र में शोषण
   - 1.2 व्यक्तिगत संघर्ष
   - 1.3 श्रमिक संगठन और स्त्री-श्रमिकाएँ
   - 1.4 स्त्री श्रमिकाओं का साहस
2. बाल श्रमिक
3. दलित और आदिवासी श्रमिक
4. भूमंडलीकरण और श्रमिक
5. विस्थापन और श्रमिक जीवन

पंचम अध्याय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : विविध परिप्रेक्ष्य

श्रमिक वर्ग समाज की एक ऐसी इकाई है जो स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी को समेटे हुए है। श्रम-शक्ति में इन सभी की अपनी-अपनी भागीदारी है। आर्थिक अभाव, पारिवारिक आवश्यकताओं और जीवन-निर्वाह के लिए श्रमिक परिवार का हर सदस्य कार्य करता है। परिवार के भरण-पोषण में हर सदस्य की भागीदारी रहती है। लेकिन यह भागीदारी पारिवारिक कर्तव्य के पालन के लिए ही नहीं होती वरन आर्थिक विपन्नता को सुधारने के लिए प्रमुख रूप से होती है। आर्थिक सुधार के लिए एक तरफ जहाँ स्त्री और बाल-श्रमिक असंगठित और अकुशल श्रम की ओर आकर्षित हो रहा है, वहीं दूसरी ओर रोजगार की सुविधा और संभावनाएँ श्रमिक वर्ग को अंतर क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विस्थापित होने के लिए विवश कर रही हैं। समाज के दलित वर्ग का दास रूप भारतीय सामाजिक संरचना में एक प्रथा की तरह चला अया है। दलितों का दास रूप ही आगे चलकर श्रमिक भी बिना। परंतु आदिवासियों का, जिनका मूल निवास जंगल होता था तथा जीवन और जीविका-निर्वाह का मूल माध्यम व साधन जंगल की प्राकृतिक संपदा थी वह शहरों की ओर विस्थापित हो अकुशल श्रमिक बनने की प्रक्रिया में अग्रसारित है। औद्योगीकरण और शहरीकरण के नाम पर आज भारत के सामने यह सबसे बड़ी समस्या है। विभिन्न वन-नियमों के माध्यम से सरकार और पूँजीपति इन आदिवासियों को अपने

मूल निवास से खदेड़ रहा है। इस अध्याय का उद्देश्य श्रमिक जीवन के विविध परिप्रेक्ष्य के लोगों की समस्याओं और उपन्यासों की पहल को प्रस्तुत करना है।

1. स्त्री-श्रमिक

विश्व के सभी प्रगतिशील देशों के श्रम-शक्ति का एक बड़ा प्रतिशत स्त्री-श्रमिकों का है। देश की अर्थनीति और वित्तीय स्थिरता में इन्होंने अपनी उपस्थिति, न केवल दर्ज की है बल्कि उसका दावा भी कर रही है। 19वीं शताब्दी का उत्तरार्ध इस परिवर्तन को अनुभव तो कर रहा है लेकिन अपनाने में कतराता है। श्रम-शक्ति में महिलाओं की भागीदारी और एकीकरण में तेज़ बढ़ोत्तरी को एक लक्षण और वैशिष्ट्य मान सकते हैं किसी भी प्रगतिशील अर्थनीति का। परिवार के सामाजिक आर्थिक सहयोग अथवा जीवन-यापन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्त्रियों की काम करने की अवधारणा कोई नई बात नहीं है। प्राचीन काल में स्त्रियाँ, राजाओं या धनी-व्यक्तियों के घरों में काम किया करती थीं। यहाँ तक कि मंदिर आदि में देव-दासियाँ बनकर भी अपनी जरूरतों को पूरा करती थीं। धीरे-धीरे समय और संकल्पनाएँ बदलने के साथ ही स्त्री खेतों और घरेलू उद्योग-धंधों में काम करने लगीं। उपनिवेशवाद और पूँजीवाद के आगमन तथा उद्योगों की स्थापनाओं के साथ वे श्रमिक भी बनीं। आज भारत के असंगठित श्रम-शक्ति की 60% की भागीदार है आज की स्त्री-श्रमिक। इन्हें श्रमिकाएँ, मजदूरनी, कामगार आदि पर्यायों से भी जाना जाता है।

चाहे कार्य-क्षेत्र में पुरुष-श्रमिकों की कमी हो अथवा अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ या फिर सामाजिक माँगों की पूर्ति, कई सीमाओं तक आर्थिक रूप से स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बन रही हैं। गृहस्वामी की कमाई में किसी प्रकार की बढ़ोत्तरी न होना, बीमारी, दुर्घटना, उत्सव जैसे अतिरिक्त खर्चों के कारण घर में पैसों की कमी, गृहस्वामी की मृत्यु या लापरवाहियों, स्त्रियों का अपने ब[illegible] या परिवार को एक अच्छे और स्वस्थ जीवन देने की कामना-ये सब सामान्य कारण होते हैं किसी भी महिला का कामकाजी बनने के पीछे। परंतु निम्न वर्ग की ये स्त्रियाँ

जिनकी गणना श्रमिक-वर्ग के अंतर्गत होती है, उनका कामकाजी बनने के पीछे मुख्य कारण गृहस्थी में पैसों की अत्यधिक कमी ही होती है। निम्नवर्गीय परिप्रेक्ष्य में परिवार की बड़ी संख्या, गृहस्वामी का शराबी होना, महँगाई की मार-इन सबके पीछे पैसों की तंगी ही वह प्रमुख कारण होती है जिसके फलस्वरूप इन घरों की स्त्रियाँ मेहनत-मजदूरी करने के लिए विवश हो जाती हैं और किसी भी प्रकार का काम करने के लिए प्रस्तुत हो जाती हैं। आज कारखानों से लेकर निर्माण कार्य तक तथा दिहाड़ी और विस्थापित हो कर भी मजदूरी कर रही हैं और स्त्री-श्रमिक वर्ग की संख्या को बढ़ा रही हैं।

भारतीय स्त्रियों का श्रमिक रूप कोई नई घटना या अवधारणा नहीं है। गृह-दासियों से लेकर सहायिका और सहायिका से लेकर घर के आर्थिक तंत्र की मुख्य धारिका का एक लंबा सफर तय कर चुकी हैं।

1.1 कार्यक्षेत्र में शोषण

कार्यक्षेत्र में स्त्रियों का शोषण दो प्रकार से होता है। एक है दैहिक शोषण और दूसरा एक प्रकार का मानसिक शोषण होता है। दैहिक शोषण के अंतर्गत मुख्य रूप से यौन शोषण की ही गणना होती है। ठेकेदारों, बिचौलियों तथा अपने सहकर्मियों द्वारा यौन शोषण का शिकार होती रहती हैं। यौन शोषण का अर्थ केवल बलात्कार ही नहीं होता वरन अश्लील इंगित, अवैध बातें करना या शरीर पर अनचाहे स्पर्श करना आदि भी इसके अंतर्गत आते हैं। अधिक मजदूरी दिलाने के लोभ से भी कार्य क्षेत्र में ठेकेदारों द्वारा तथा नौकरी दिलाने का दिलासा देकर बिचौलिये इन गरीब, अनपढ़ और जरूरतमंद स्त्री-श्रमिकों का भरपूर यौन शोषण करते हैं। कभी-कभी स्थिति ऐसी भी हो जाती है कि किसी प्रकार की अवकाश प्राप्ति या सहूलतों के लोभ के कारण भी स्त्री-श्रमिकाएँ अपना अवैध संपर्क स्थापित करती हैं, पर ऐसी स्थितियाँ अनेक कम ही दिखने को मिलती हैं। दूसरा शोषण होता है मानसिक स्तर का शोषण, जो स्त्री-श्रमिक यौन शोषण या अश्लील व्यवहार का प्रतिवाद करती है तथा ठेकेदारों, साहूकारों आदि को उनकी मनमानी करने का मौका नहीं देतीं। वे

स्त्रियाँ मानसिक शोषण का शिकार बनती हैं। उन्हें अधिक समय तक काम करने के लिए मजबूर किया जाता है। सही समय पर मजदूरी नहीं दी जाती और मर्दों वाले भीषण और अति-परिश्रम वाले काम मुहैया करा दिए जाते हैं। उन्हें किसी भी प्रकार का अवकाश आसानी से नहीं मिलता और मिल भी जाए तो उन दिनों की कमाई काट दी जाती है। हर काम में उनकी उपेक्षा और उपहास होता रहता है। इस प्रकार की मानसिक पीड़ाओं से तंग आकर तथा इन परिस्थितियों से बचने के लिए कभी-कभी स्त्रियाँ अनचाहे ही ठेकेदारों की अश्लीलता को सहन करने के लिए विवश हो जाती हैं।

पुरुषों का स्त्री-श्रमिकाओं के प्रति यौन-शोषण की दृष्टि और परंपरागत सोच, कार्यक्षेत्र में इनके लिए अनेक प्रकार की समस्याएँ खड़ी करती हैं। वेश्या वृत्ति के नरक को छोड़कर एक आम जीवन जीने की चाह में जब कुछ वेश्याएँ कामगार महिलाओं का रूप धारण करती हैं तो उनके सहकर्मी पुरुष उनके प्रति वासनापूर्ण दृष्टिकोण और कामुकता की चाह रखते हैं। 'अनिसा' नामक स्त्री-श्रमिक के साथ यही होता है। उसकी स्थिति वर्णित करते हुए नमिता कहती है-"हाँ, नौकरी रास नहीं आ रही थी उसे। विमला बेन से शिकायत भी की थी उसने कि मजदूर उसे देखते ही इशारेबाजी करते हैं... अकेला पाकर कोने में खींच लेते हैं।"[1] इन्हीं परिस्थितियों के कारण अनिसा पुनः उसी नर्क में चली जाती है जहाँ से वह आई थी। कार्यक्षेत्र में न केवल अपने सहकर्मियों व ठेकेदारों की यहाँ तक कि सफेदपोश कर्मचारियों की बुरी नज़र भी श्रमिकाओं पर गड़ी रहती है। सोन्या की औरत इस स्थिति के बारे में बताते हुए बाबा से कहती है-"ये जितने बाबू लोग हैं, इनको बांध पर काम करने वाली मजदूरिनें चाहिए, बस। ये काम के बहाने इन पर निगाह रखते हैं और चुनकर तरीके से अपने अड्डे पर बुला लेते हैं।"[2] इस स्थिति की भीषणता और प्रतिफलन की विवशता को व्याख्यायित करते हुए वह कहती है कि-"इस बांध

---

[1] आवां-पृ.353

[2] नदी फिर लौट आई-पृ.167

पर हर सफेदपोश इसी खेल का शिकारी है, कोई इससे नहीं बचा। जिस किसी की खिदमत में मजदूरनियाँ पेश नहीं की गईं तो निश्चय ही उनका बुरा समझो। पेट की आग बुझाने के लिए क्या नहीं करना पड़ता, यहाँ के इंजीनियर, ओवरसीयर सभी को इसकी लत है।"[3] कभी-कभी शोषण का शिकार होना मजदूरिनों की विवशता का अन्य नाम भी बन जाता है। साहूकारों और सफेदपोश वर्ग के लोग अपनी कामुकता को शांत करने के लिए श्रमिकाओं को अनेक प्रकार के प्रलोभन भी दिया करते हैं। जैसे-"कल उस मालिक के एक कारिंदे ने हमारे गाँव की एक लड़की को रास्ते में रोककर उससे कहा कि अगर वह उसके मालिक की कोठी में पहुँचने को तैयार हो जाए तो उसे नई ओढ़नी, नया लहँगा और बीस रुपये भी मिल सकते हैं।"[4]

यह सभी परिस्थितियाँ पूँजीवादी समाज और मानसिकता की तानाशाही का ही प्रमाण है। किसी भी हालात में अगर श्रमिकाएँ उनकी इच्छापूर्ण करने से इनकार कर देतीं हैं तो प्रतिक्रिया स्वरूप या कहें तो दंड स्वरूप उन्हें अधिक कार्यभार दे दिया जाता। मर्दों द्वारा किया जानेवाला अति परिश्रम का काम उनके हिस्से में डाल दिया जाता है तथा उसके अनुसार उन्हें वेतन नहीं मिलता-"औरतों से मर्दों का काम करवा कर भी उन्हें मर्दों वाली तनख्वाह नहीं दी जा रही थी।"[5]

सरकार की ओर से इस प्रकार के नियमों और प्रावधानों के रहते हुए भी स्त्री-श्रमिकाओं को जचकी संबंधी अवकाश नहीं मिलते और देते भी हैं तो उनके साथ कई शर्तें जुड़ी रहती हैं। जैसे या तो नौकरी छोड़ दो या फिर बिना तनख्वाह के नौकरी में वापस आओ। किसी किसी परिस्थिति में छह हफ्तों की जगह गर्भवती श्रमिकाओं को केवल दो या तीन सप्ताहों की ही छुट्टी मिलती है। ‘आवां’ उपन्यास में सुनंदा के साथ भी यही होता है। सबसे पहले तो उसे जचकी संबंधी छुट्टी नहीं मिलती और बाद में कुआंरी अवस्था में माँ बनने के बहाने के माध्यम से कंपनी उसे किसी भी प्रकार की सहूलत देने से साफ इनकार कर देता है। सुनंदा अपनी समस्या का बयान

[3] नदी फिर लौट आई-पृ.167

[4] लहरों की बेटी-पृ.50

[5] और पसीना बहता रहा-पृ.103

करते हुए नमिता को बताती है-"देखिए दीदी, सुविधा का प्रावधान गर्भवती स्त्री और उसके बच्चे को लेकर है, न कि कुँआरी माँ या ब्याहता माँ के विशेषणों के लिए। कुँआरी माँ क्या ब्याहता माँ के ही समान जचकी के घोर कष्टों से होकर नहीं गुजरती? उसे आराम की जरूरत नहीं होती? माँ बनना किसी के निजी मामले के बजाय कंपनी का मामला कैसे हो गया?"[6]

अनेक प्रकार के प्रार्थना पत्र लिखने के बावजूद भी सुनंदा को किसी प्रकार की सुविधा नहीं मिलती और तत्काल काम पर आने की नोटिस जारी की जाती है। सुनंदा एक प्रकार से मजबूर हो जाती है कंपनी की शर्तों को मानने के लिए। पंडरी बाई के साथ भी यही होता है। अपने अधिकारों से अज्ञात इन श्रमिकाओं के साथ यही होता है। पंडरी बाई की स्थिति को बताते हुए पवार कहता है-"जचकी का केस होने के बावजूद कंपनी ने पंडरी बाई को धमकी दी थी कि वह तत्काल काम पर लौटे वरना नौकरी खतम समझो। इतनी लंबी छुट्टी कंपनी बरदाश्त नहीं कर सकता। अंडर सेक्शन चार का केस था। कायदे से बच्चा पैदा होने के छह हफ्ते बाद ही उसे काम पर वापस लौटना था।"[7] कंपनी के द्वारा दिए गए धमकियों से डरकर पंडरी बाई तुरंत काम पर वापस चली जाती है और उसके पेट पर पड़े कच्चे टांके टूट जाते हैं और अनेक प्रकार की शारीरिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कंपनी या ठेकेदारों की इन क्रूरताओं को श्रमिकाएँ अपना भाग्य या समय का खेल समझकर सहन कर लेती हैं। जचकी जैसी एक प्राकृतिक प्रक्रिया के चलते इन्हें नौकरी की अस्थिरता की मार सहनी पड़ती है। स्त्री श्रमिकाओं की नौकरी संबंधी अस्थिरता के बारे में बताते हुए चित्रा मुद्‌गल कहती हैं-"हालांकि दिन में अधिकांश श्रमिक स्त्रियाँ नौकरियों में होंगी। घर पर मात्र उन्हीं श्रमिकाओं से मुलाकात संभव है जो जचकी की छुट्‌टियों के चलते घर पर रह रहीं या छंटनी के चलते रहने से मजबूर हैं या

---

[6] आवां-पृ.110
[7] आवां-पृ.97

अस्थायी नौकरी के कारण जब चाहे तब घर बैठा दिए जाने की अनिश्चित बाध्यता से त्रस्त।"[8]

एक तरफ जहाँ औरतों को मर्दों वाले भारी काम करने को दिए जाते हैं, वहीं दूसरी तरफ उन्हें उस अनुपात में और मर्दों के बराबर बहुत ही कम वेतन मिलता था। 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास में स्त्री-श्रमिकाओं को जबरन खेतों में काम कराने से कोठी मालिकों का लाभ ही लाभ होता है। क्योंकि वे इन श्रमिकाओं को कम-से-कम वेतन देकर अधिक कार्य करवाते हैं। इस स्थिति पर टिप्पणी करते हुए प्रकाश कहता है-"मुझे तो लगता है कि औरतों को दोबारा गन्ने के खेतों में खींच लेने के लिए लोग कुछ भी शेष नहीं छोड़ेंगे। औरतों के इस तरह खेत से हट जाने पर जमींदार हतप्रभ हैं, जो काम वे औरतों से एक रुपये में करवाने के आदी थे, उसी काम के लिए उन्हें मर्दों को ढाई रुपये देने पड़ते हैं।"[9]

वेतन संबंधी यह भेदभाव हमेशा से चला आया है। इसकी उपस्थिति आज भी है। कार्यक्षेत्र में अनेक प्रकार की विवशताओं के कारण स्त्री-श्रमिकाएँ हर परिस्थिति में काम करती हैं और हर भेदभाव को सहन करने का मौन धारण कर लेती हैं। कार्यक्षेत्र में पुरुषों की मानसिकता को बताते हुए हंसुली देवी कहती हैं-"हंस लो, खूब हंस लो, तुम क्या जानो औरत का दर्द क्या होता है-जिस पर बीतता है वही जानती है। तुम लोगों ने हल की मूठ पर हाथ रख लिया, तो समझते हो गढ़ साध लिया है। साल भर में दो माह काम होता है जुताई का। तुम लोगों का बस चलता तो उसे भी औरतों के सिर पर थोप देते।"[10]

कार्यक्षेत्र में प्रबंधकों और प्रशासन की लापरवाही का फल भी इन्हें ही सहन करना पड़ता है और उसकी हानि को भी। स्त्री-श्रमिकों की इस अवस्था को देखकर हरि सो□ता है-"उसने एक खुली लारी को सामने से जाते हुए देखा, जिसमें कोई पच्चीस-तीस मजदूर औरतें माल की तरह लादी गई थीं। x x x कई बार उसे यह

[8] आवां-पृ.96
[9] और पसीना बहता रहा-पृ.285
[10] आसमान झुक रहा है-पृ.76

खबर भी मिली है कि फलाँ ठौर पर कोई औरत लारी से गिर गई है। किसी की टाँग टूटने की खबर मिलती थी तो किसी के हाथ टूटने की। कई बार तो ऊँची लारियों पर चढ़ते-उतरते ही औरतें घायल हो चुकी थीं।"[11]

प्रबंधन और मालिकों के इस लापरवाही का समर्थन कानून भी करता है। क्योंकि पूँजीवाद और पूँजीपति अपनी शक्ति के माध्यम से सभी को अपने वश में कर लेते हैं तथा अपने लाभ के अनुसार ही उनका प्रयोग करते हैं। किसी घटना को दुहराते हुए हरि का यह कहना था कि-"... एक मुकदमे में पूर्वी इलाके के किसी गोरे मालिक को इस आरोप के लिए निर्दोष करार दिया गया था कि लारी से गिरकर अपना हाथ-पाँव तोड़ बैठी औरत के मामले में न तो कोठी मालिक का दोष है और न ही चालक का। दो लोगों ने इस बात की गवाही दी थी कि मालिक के आदेश और गाली-गलौज पर ही चालक ने जल्दबाजी और असावधानी से लारी को चला दिया था, जबकि वह औरत अभी चढ़ ही रही थी। इसके बावजूद अदालत ने उस औरत को ही कसूरवार ठहराया था।"[12]

कार्यक्षेत्र में इस प्रकार के वैमनस्य को सहन करना स्त्री-श्रमकों का भाग्य बनता जा रहा है। एक तरफ जहाँ कार्यक्षेत्र में न्यूनतम एवं मौलिक सुविधाओं की कमी इन्हें विभिन्न स्थानों पर काम करने से रोकती है, वहीं मालिकों एवं प्रबंधन के इस प्रकार के अन्याय और भेदभाव से तथा संवेदनहीन व्यवहार और नीतियों से वे त्रस्त रहती हैं। यही कारण है कि महिला-कामगार हर कार्यक्षेत्र में असुरक्षित मनःस्थिति के साथ काम करती है।

कार्य क्षेत्र में हो रहे शोषण और इस प्रकार की समस्याओं के पीछे जो मुख्य कारण एक घटक तत्व के रूप में कार्य करता है, वह है स्त्री-श्रमिकों की अज्ञानता। अपने अधिकारों, सरकारी सहूलतों, नियमों, प्रावधानों आदि संबंधित अज्ञानता के कारण वे मुख्य रूप से अधिक शोषित होती हैं और अपनी अवस्था की उत्तरदायी

[11] और पसीना बहता रहा-पृ.106
[12] और पसीना बहता रहा-पृ.106

भी। श्रमिकाओं में एकता की कमी, व्यक्तिगत स्वार्थ, अपनी नौकरी की बचत तथा भविष्य को सुरक्षित करने के लिए वे किसी भी प्रकार के शोषण का, चाहे मानसिक हो या शारीरिक, उसका खुलकर विरोध नहीं करतीं। हालांकि आज स्थिति बदल रही है। श्रमिकाएँ स्वयं सेवी दलों या संगठन के द्वारा अपनी समस्यओं में परिवर्तन लाने का प्रयास कर रही हैं। लेकिन जब हम उन 60 प्रतिशत असंगठित श्रमिकाओं के बारे में बात करते हैं,तो उनके परिप्रेक्ष्य में यह बदलाव कोई माइने नहीं रखता। स्थिति और समस्याएँ आज भी वैसी ही हैं जैसे पहले थीं। तकनीकीकरण और मशीनीकरण के प्रभाव तथा भूमंडलीकरण का प्रकोप, इन असंगठित स्त्री-श्रमिकों की अवस्था में कोई विशेष सुधार नहीं ला पाया है।

1.2 व्यक्तिगत संघर्ष

व्यक्तिगत संघर्ष से तात्पर्य उस प्रकार के समायोजन और समानता से है जो घर के कामकाज, परिवार की देखभाल और कार्यक्षेत्र के दायित्वों के बीच कोई भी व्यक्ति करता है। स्त्रियों के क्षेत्र में इस संतुलन का प्रभार अधिक क्यों रहता है, वह एक ज्ञात विषय है। हर वर्ग की, हर प्रकार की कामकाजी महिलाओं को इस समायोजन का निर्वाह करना पड़ता है। लेकिन स्त्री-श्रमिकाओं के क्षेत्र में यह समायोजन अधिक श्रम-साधक हो जाता है। व्यक्तिगत जीवन और कार्य के बीच सही तालमेल बिठाना उनके लिए एक चुनौती ही होती है। काम की तलाश में कभी-कभी श्रमिकाओं को अपने घरों से बहुत दूर जाना पड़ता है और वह भी सारे घरेलू कार्यों के निबटाने के बाद ही। दिहाड़ी का काम करनेवाली तथा निर्माण कार्यों में कार्यरत वे महिलाएँ जो रेत या ईंट ढोने का काम करती हैं, फैक्टरियों में मर्दों के समान मशीनें □लाती हैं। उन श्रमिकाओं के हिस्से में शारीरिक श्रम का अनुपात अधिक होता है। इसके बाद भी उन्हें अपने परिवार के वह सभी कार्य करने पड़ते हैं जो एक आम गृहणी करती है। अगर पति विस्थापित या विदेशी हो अथवा शराब के नशे के कारण गैर जिम्मेदार हो तो उनका कार्य और भी बढ़ जाता है। साधारणतः निम्न वर्ग में इस प्रकार के परिवारों का आकार काफी बड़ा ही रहता है। परिवार के

भार, बच्चों के दायित्व और पति की दी हुई शारीरिक यातनाओं के बीच इन श्रमिकाओं को अपने जीवन में अनेक व्यक्तिगत संघर्ष और संतुलन करने पड़ते हैं।

'पृथ्वी की पीड़ा'[13] उपन्यास में पृथ्वी जो घरों में काम करनेवाली नौकरानी है उसे भी अपने कार्य और घर तथा बच्चों की देखभाल में तारतम्य जमाना पड़ता है। गुप्ताजी के घर का सारा काम करने के बाद वह अपने पति को उसे छोटे से नमकीन बनाने के व्यवसाय में भी खूब सहायता करती और साथ ही अपने बच्चों को संभालती। लेकिन अपने पति की लापरवाही के कारण जब वह अनचाहे तीसरी बार गर्भवती बन जाती है तो न केवल उसे अन्य घरों से नौकरी छोड़ने की धमकियाँ मिलती है वरन उसका स्वास्थ्य ही घटता जाता है। न तो वह घरों में ठीक तरह से काम कर पाती है और न ही अपना परिवार संभाल पाती है। स्त्री-श्रमिकाओं के व्यक्तिगत संघर्ष को 'आवां' उपन्यास में लेखिका ने बड़े ही मार्मिक रूप से व्याख्यायित किया है। 'जागो री' नामक स्वयं-सेवी संस्था से प्रोत्साहित होकर अनेक वेश्याएँ अपनी वृत्ति छोड़कर फैक्टरियों और मिलों में काम करने लगी थीं। पर वहाँ पर उनके साथ लोगों का व्यवहार साधारण न होकर उनकी पहली वृत्ति के अनुसार ही हो रहा था। 'अनीसा' नामक श्रमिका के साथ भी किरपू दुसाध यही करता है। उसकी अवस्था बताते हुए पवार कहता है-"पेट में उसके सात महीने का बच्चा था। दारू पिए ग्राहक ने अनीसा के राजी न होने पर उसके पेट में इतनी लातें लगाईं कि उसका गर्भ गिर गया और बच्चा पेट से बाहर निकल आया। अनीसा मूर्छित हो गई। ... घंटे-भर बाद डॉक्टरों ने अनीसा को मृत घोषित किया।" [14] इस प्रकार की परिस्थितियों से हार कर कई श्रमिकाएँ आत्महत्या करने को भी सोचती हैं, पर जीवन जीने की चाह और मृत्यु का डर उन्हें वह भी करने नहीं देता, अपनी इस प्रकार की परिस्थितियों और मनोभाव को नमिता के सामने प्रस्तुत करते हुए अनीसा ही बोलती है-"अब हमारे मुख-मुखौटे की आदत हो गए, हाव-भाव छोड़े नहीं छूटते।

[13] पृथ्वी की पीड़ा, डॉ.प्रमोद कु.अग्रवाल

[14] आवां-पृ.353

पट्ट चुगली खा देते हैं ससुर-कऊन हैं हम, कऊन हमारी बिरादरी। ये नरक से हम दीदी, बड़ा निकलने की कोशिश किए, मुला कोशिश अकारथ हुई। तीन बार तो मुंह-अंधेरे लोकल की पटरी पर जाकर घिंचई धर दिए, मुल्ला लोकल की धड़धड़ ने पटरी-सी उठा दिया। मरने से हम बहुत डरते हैं, दीदी...।"[15]

जीवन के हर क्षेत्र और परिस्थिति में इन स्त्रियों को अपने 'स्व' की आहुति देनी पड़ती है। चाहे वह कार्यक्षेत्र हो या परिवार उन्हें हर जगह अपने आपको प्रामाणित करना पड़ता है। श्रमिक वर्ग की स्त्रियों पर भी परकीया होने के लांछन लगाए जाते हैं। समय पड़ने पर उन्हें भी अपनी पवित्रता का प्रमाण देना पड़ता है। पति चाहे कैसा भी हो वे उसके लिए कभी खराब कामना नहीं करतीं। महिला कामगारों की इन अवस्था पर टिप्पणी करते हुए पृथ्वी कहती है-"मेम साहिब, आप लोगों ने अभी खराब पुरुष देखे ही कहाँ हैं? हमारी तरह औरतें मेहनत करती हैं, पतियों को खिलाती हैं, उनके बच्चों को खिलाती हैं एवं उस पर भी पतियों की सभी प्रकार की मारपीट भी सहन करती हैं। फिर भी हमारे मुँह से एक अपशब्द भी पतियों के लिए नहीं निकलता।"[16]

विभिन्न प्रकार की सामाजिक और आर्थिक विषमताओं, विसंगतियों और उपेक्षाओं का सामना करने के बावजूद भी श्रमिक वर्ग की स्त्रियाँ विद्रोहात्मक नहीं होती। किन्हीं परिस्थितियों का सामना करने के लिए या कहें तो असामाजिक हालातों से बचने के लिए वे कभी-कभी आक्रामक जरूर बन जाती हैं। परंतु परिवार का सुख और अपनी अस्मिता की सुरक्षा उनके लिए सदैव सर्वोपरि होती है। श्रमिकाओं की इस मानसिकता के बारे में गोपुली लुहारिन कहती है-"क्यों झगड़ते हैं इस गाँव के औरत और मरद। क्या चाहती है, औरत अपने मरद से और क्या चाहता है मरद अपनी औरत से मरद को अच्छा खाना-पीना व सोना और औरत क्या चाहती है मालूम है तुम्हें, कि उसकी इज्जत बनी रहे। उस पर उसके घर-परिवार पर कोई

[15] आवां-पृ.354
[16] पृथ्वी की पीड़ा-पृ.78

उंगली न उठाए। क्या ऐसा मरद भी सोचता है अपनी औरत के विषय में, अपनी इज्जत के लिए।"[17]

इन तमाम प्रकार के व्यक्तिगत संघर्ष के बीच भी स्त्री-श्रमिकाएँ जीवन जीने का रस ले लेती हैं। परिवार के कार्यों और बच्चों की देखभाल में ही उनकी दुनिया समायी रहती है। फैक्टरियों में कार्यरत श्रमिकाओं के छुट्टी के दिन का ब्योरा देते हुए पवार कहता है-"अलबत्ता छुट्टी के दिन सभी से मुलाकात संभव है। उस दिन वे अपनी खोलियों की साफ-सफाई में ही नहीं जुटतीं, घर परिवार के लटके-लटकाए अन्य कामों को निपटाते हुए, मैले-कुचैले अपने बच्चों के चीकट बालों में से जूँ बीनने का कार्यक्रम भी चलाती हैं। नाखूनों पर जूँ वे ऐसे पटापट चटकाती हैं मानो नाखूनों पर जूँ नहीं, प्रबंधकों के गले टीप रही हों।"[18]

निम्न वर्ग की इन स्त्री-श्रमिकाओं के पास जीवन के भोग-विलास के लिए उतना धन या सामर्थ्य नहीं रहता। इस कारण वे जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं में ही सुख प्राप्त करना चाहती हैं और इसी में से ही जीवन को संपूर्ण बनाने की चेष्टा करती रहती हैं। अपनी द्रवित मनोभावनाओं, चाहे वह प्रतिरोधात्मक हों, इच्छापरक हों या नकारात्मक हों, सभी को वे अपनी दिनचर्या के काम में, अपने व्यवहार के माध्यम से और कार्यक्षेत्र में अपनी सहकर्मियों के साथ संबंधों के बीच प्रस्तुत करती हैं। अपने मन की भावना को व्यक्त करते हुए सुनंदा उन लाखों श्रमिकाओं की मनःस्थिति को प्रस्तुत करती है। वह कहती है-"तन से तो ठीक हूँ, दीदी! बस मन उचाट... पानी में डूबा पत्थर हो रहा! कहाँ, किस ओर को जा पड़ा, ढूँढ़े हाथ नहीं लग रहा। दीर्घ निःश्वास भरती सुनंदा का स्वर ही सजल नहीं हो आया, शायद बिस्तर की चादर के बैंजनी फूल कुरेदती आंखें भी चूने को हो रहीं।"[19]

जीवन में न केवल भारी परिश्रम और कठिन कार्य के माध्यम से अपना गुजारा करती हैं बल्कि एक सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए प्रयासरत भी रहती हैं, लेकिन

[17] आसमान झूक रहा है-पृ.171
[18] आवां-पृ.96
[19] आवां-पृ.110

एक व्यक्ति एक व्यक्ति ही होता है। उसके मन में भी वे सभी इच्छाएँ, चाहे किसी भी वर्ग का क्यों न हो, अकुलाती हैं जो जीवन को भव्य बनाएँ, वे भी उन मनोग्रंथियों को पालते हैं जो व्यक्ति के मन में निराशा, एकेलापन और अन्य नकारात्मक भावनाओं को जगाती हैं। इस कारण हर विषम परिस्थिति को सहन करने का साहस रखती यह स्त्री-श्रमिकाएँ इन्हीं मनोभावनाओं के सम्मुख हार सी जाती हैं। कार्यक्षेत्र में अपने आत्मसम्मान की रक्षा करती वे व्यक्तिगत जीवन में उसके संघर्ष के सामने थोड़ी शिथिल हो जाती हैं। फिर भी वे हारती नहीं।

1.3 श्रमिक संगठन और स्त्री-श्रमिकाएँ

जैसा की पहले भी चर्चा की जा चुकी है कि भारतीय श्रमिकों के बीच संगठन संबंधित ज्ञान और जागरण बहुत देर से आया। स्त्री-श्रमिकाओं के बीच इसका ज्ञान उससे भी देर में आया। संगठन से जुड़ना इन स्त्रियों को असंग प्रतीत होता था। संगठन से जुड़ने या उसका अंग बनाना उनके लिए जोखिम कार्य था क्योंकि उनकी अवधारणा यह थी कि इससे या तो उनका जीवन अनेक समस्याओं से घिर जाएगा या फिर मालिकों का शोषण उन्हें सहन करना पड़ेगा। इस कारण सबसे पहले तो स्त्रियाँ संगठन में शामिल ही नहीं हो रही थीं और अगर होतीं भी तो उनका अनुपात बहुत कम रहता था। 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास में वर्णित स्त्री-श्रमिकों की हालत भी ऐसी ही होती है। जब हरि अपने गाँव के लोगों को संगठित कर रहा था तब यही होता है। "पैंतालीस मजदूरों में से केवल चार औरतें थीं, जबकि दूसरे इलाके में उनकी संख्या मर्दों की संख्या के प्रायः बराबर थी।"[20] परंतु हरि और प्रभा, जो संगठन के सक्रिय कार्यकर्ता थे उनके प्रयास से स्त्री-श्रमिकाएँ एकत्रित होती हैं। "□हाँ-जहाँ भी मर्दों की मजदूरी औरतों को घास काटने की इजाजत के रूप में दी जा रही थी, उन सभी जगहों पर लोगों ने संगठित होकर इस जमींदारी कानून का विरोध किया। कई जगहों पर जब सरकार की ओर से जनता के जुटाव और किसी

---

[20] और पसीना बहता रहा-पृ.104

भी तरह की बैठक पर रोक लगाई जाने लगी, तो हरि पुरुष मजदूरों को और प्रभा महिला मजदूरों को मंदिर में बुलाकर संगठित करते रहे।"[21]

श्रमिक संगठनों का उद्देश्य और दायित्व केवल स्त्री-श्रमिकाओं को एकत्रित करना मात्र ही नहीं है, वरन उनमें संगठन और एकता के महत्व को जगाना भी होता है। उनके मन से पूँजीपतियों के शोषण या दमन का डर निकाल कर उनमें साहस और आत्मविश्वास को जगाना होता है ताकि वे बिना संगठन की सहायता से भी अत्याचार का विरोध कर पाएँ। कोठी मालिकों के विरुद्ध भी श्रमिकाएँ इसी साहस के साथ विद्रोह प्रदर्शन करती हैं। "जिस गर्भवती औरत को गोरे मालिक ने लातें मारी थीं और पेट में ही जिसके बच्चे की मृत्यु हो गयी थी, उसे लेकर प्रभा ने पुलिस-थाने के सामने कोई पचहत्तर औरतों के साथ धरना दिया था और यह माँग की थी कि उस बच्चे की मृत्यु के लिए कोठी मालिक पर मुकदमा चलाया जाए।"[22]

संगठन का कार्य केवल स्त्री-श्रमिकाओं में साहस का सँचारण करना ही नहीं है वरन उनके बारे में सोचना, उनके लिए कार्यक्षेत्र में हर तरह की सुविधाओं को मुहैया कराने के लिए आवाज़ उठाना भी इसी संगठन का ही कार्य है। 'और पसीना बहता रहा' उपन्यसा में हरि और उसका संगठन घास काटने वाली श्रमिकाओं पर हो रहे अत्याचार पर चिंतित होते हैं और उसके समाधान के लिए चर्चा करते हैं। श्रामिकाओं को उनके कानूनी अधिकारों के प्रति अवगत कराने और उनकी समस्याओं को जानने के लिए संगठन भी अपनी ओर से अनेक प्रयास करता है। 'आवां' उपन्यास में श्रमिक बस्तियों की मजदूरिनों से मिलने से पहले नमिता श्रमिक संबंधी सभी कानूनों, फैक्टरियों की नीतियों व अधिनियमों को जान लेना चाहती है- "तभी बात करते हुए, उनकी समस्याओं को सुनते, जानते हुए वह वास्तविकता की कुरूपता को उसकी तहों तक महसूस कर सकेगी। कानून से अवगत हुए बिना दाव-

[21] और पसीना बहता रहा-पृ.131
[22] और पसीना बहता रहा-पृ.289

पेंचों से मुठभेड़ संभव नहीं। दुःख-दर्द के लिए मात्र उसके द्रवित हृदय में सहानुभूति उपज सकती है, संघर्ष की चिनगारी नहीं।"[23]

एक ओर जहाँ श्रमिकाएँ संगठन से प्रभावित होती हैं, वहीं संगठन भी हर संभव दृष्टिकोण से उनकी सहायता करने तथा समस्या को दूर करने में प्रयासरत रहता है।

1.4 स्त्री श्रमिकाओं का साहस

जीवन की विभिन्न विषम परिस्थितियों से लड़ने के लिए या उनका सामना करने के लिए मनुष्य को आंतरिक साहस और मानसिक दृढ़ता की आवश्यकता है। अपनी निम्न वर्गीय आर्थिक विषमता, कार्यक्षेत्र में शोषण तथा व्यक्तिगत जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव को सहकर हर रोज मेहनत और श्रम करनेवाली स्त्री-श्रमिकाओं का साहस प्रशंसनीय है। अपने पारंपरिक और पारिवारिक तथा बहुत हद तक अपने वर्गगत पिछड़ेपन, अज्ञानता और अशिक्षा के बोझ तले पलता है-श्रमिकों का यह तबका। इन सबको धारण कर ही उसे एक ऐसे समाज में कार्यरत रहना पड़ता है, □ो आधुनिकीकरण और बाजारवाद की विसंगतियों को अपने आप में पालता रहता है। इस कारण अपने और अपने श्रम की रक्षा के लिए श्रमिक वर्ग को अपना साहस प्रामाणिक करना पड़ता है। श्रमिकाओं के क्षेत्र में इस साहस को जताना तथा उसे पाले रखने की आवश्यकता बहुत □रूरी होती है। यह श्रमिकाओं का साहस और आत्मबल ही होता है जो उन्हें इस पुरुष-प्रधान समाज में पुरुषों के समकक्ष श्रम करने का परिवेश प्रदान कर पाता है।

स्त्री-श्रमिकों के प्रति समाज और इसमें बसे विभिन्न वर्ग के पुरुषों का दृष्टिकोण वासना और शोषण भर ही रहत है। अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए इन्हें साहस दिखाना ही पड़ता है। कार्यक्षेत्र के भेदभाव का सामना करने और उसके विरोध को जान लेने के कारण प्रशासन की प्रतिक्रियाओं को भी सहन करना पड़ता है। यह सदियों से ही होता आया है कि स्त्री की आवाज़ समाज के रूढ़िग्रस्त पुरुषों के कानों

[23] आवां-पृ.96

को चुभती रही है। इस कारण अपने अधिकारों और प्राप्य के लिए उन्हें साहस का प्रदर्शन करना ही पड़ता है। यह साहस शारीरिक न हो कर मानसिक होता है। अपने मनोभाव, अंतःमन और विवेक को इतना दृढ़ करना पड़ता है कि पुरुष प्रधान और बुर्जुआवादी समाज के विपक्ष अपने आपको खड़ा किया जा सके। लेकिन स्त्री-श्रमिकों के परिप्रेक्ष्य में यह साहस न केवल मनोभाव के स्तर का या मानसिक ही होता है वरन शारीरिक साहस का भी होता है। अपने शराबी पति, आतुर ठेकेदार या बेईमान सहकर्मियों से अपने आपको बचाने के लिए उन्हें शारीरिक साहस को दिखाना पड़ता है। स्त्री-श्रमिकों को कार्यक्षेत्र के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन में भी साहस से काम लेना पड़ता है।

ठेकेदारों के अत्याचार और मनमाने व्यवहार के विरुद्ध लाठी उठानेवाली वह औरत अपने साहस और मनोबल के कारण पूरी भीड़ में सबसे अलग और विशेष नज़र आती है। "यह वही औरत है, जिसके पति और ये खुद बाहर से मजदूर लाये जाने का हमेशा विरोध करती रही हैं। हमारे पहले मजदूर लाने वाले आदमी के साथ लड़ते-लड़ते इस औरत ने कम बहादुरी नहीं दिखाई, पति को गिरा देखा, तो इसने खुद लाठी उठा ली थी। सुनते हैं, फिर वे लोग भागते ही दिखे। लेकिन उस लड़ाई के बाद बाहर से मजदूर लाने का चलन ही बंद हो गया।"[24]

कंपनी प्रशासन की बेईमानी और अपने प्रेमी से धोखा-खाने के बाद सुनंदा का स्त्री साहस जागता है और वह एक तरफ जहाँ प्रशासन से लड़ने के लिए तैयार हो जाती हे वहीं अपने बच्चे के साथ अकेले ही जीवन व्यतीत करने का मनोबल बनाती है। वह कहती है-"फिर मैं आत्मनिर्भर हूँ, दीदी। अपनी बच्ची की परवरिश स्वयं कर सकने में समर्थ। मेरा मातृत्व ब्याह के टुच्चे प्रमाणपत्र का मोहताज नहीं। असुविधा है तो मात्र इतनी-भर कि माँ स्वयं काम पर जाएगी या मेरी बच्ची की देखभाल

---

[24] नदी फिर लौट आई-पृ.240

करेंगी? कंपनी से सुविधा मिलते ही बच्ची को मैं, निश्चिंत हो, अपने संग ले जा सकूँगी।"[25]

अपने बेईमान और भीरू प्रेमी से शादी न करने के दृढ़ निर्णय के चलते सुनंदा प्रशंसा की पात्र बन जाती है। पर पूँजीपतियों को यह सहन नहीं होता कि उनकी ही अधीन एक आम स्त्री-श्रमिक इतनी महान बन जाए। इस कारण वे परिवेश में धर्म संबंधी उन्माद पैदा कर डालते हैं। इन धार्मिक उन्मादों और इसमें स्त्री-श्रमिकाओं की भूमिका के बारे में सुनंदा एक महत्वपूर्ण टिप्पणी देती है। वह कहती है-"सुनंदा का कहना था कि तनाव के इस माहौल में औरत के सहयोग और उसकी निर्णायक भूमिका के विषय में विचार किया जाना जरूरी है। स्त्री-चेतना कम से कम पुरुषों की बनिस्बत जाति-धर्म की बंधक नहीं, क्योंकि वह सर्वोपरिता की टकराहट से बाहर है।"[26] एक साधारण श्रमिका का समाज के दायित्वों के प्रति और एक व्यक्ति रूप में इतने उत्कृष्ट मनोभाव उसके साहसी विवेक का ही परिचायक है।

ग्रामीण स्त्रियों का जिनमें मुख्य रूप से वे महिलाएँ शामिल थीं जो या तो खेतिहर मजदूर थीं या क्रैसर पर काम करनेवाली मजदूरिनें, उनका साहस देख मंदाकिनी चकित रह जाती है। क्योंकि अपनी परिस्थितियों को भुलाकर तथा भविष्य के परिणामों की परवाह किए बिना ही ये श्रमिकाएँ जनांदोलन में भाग लेती हैं और अभियान का अंग बनती हैं। इन्हें देख मंदाकिनी सोचती है-"ग्रामीण औरतें इस हिम्मत से सामने आ जायेंगी और जबर-पैसे वाले लोगों से भिड़ने-जूझने को आगे चलेंगी।"[27]

स्त्री-साहस का पक्ष या रूप उनका आत्मनिर्भर होना भी है। उनकी चारित्रिक विशेषताएँ और दृढ़ता उनके साहस और व्यक्तित्व को समाज और अपने वर्ग में स्थापित करने में सहायक बनता है। श्रमिक वर्ग की स्त्रियों का आत्मनिर्भर होना अत्यंत आवश्यक होता है, ताकि वे जीवन की सभी विपन्न परिस्थितियों का सामना

[25] आवां-पृ.111
[26] आवां-पृ.122
[27] इदन्नमम-पृ.232

कर पाएँ। मछुआरा लखन भी अपनी बेटी विदूला के लिए ऐसे ही सपने देखता है। इस कारण वह दुलारी से कहता है-"दुनिया बदल रही है, दुलारी! औरतों को अब छुई-मुई वाली आदत छोड़नी पड़ेगी। औरतों को अब मर्दों के पीछे-पीछे नहीं बल्कि एकदम बगल में चलना होगा। मेरी बड़ी इच्छा है कि मेरी विदू अपनी दुबली-पतली काया के भीतर भी जिंदगी से जूझने के लिए चट्टानों का संकल्प ले आए।"[28]

एकता की संरचना और समाज-निर्माण में श्रमिकाओं की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जब गाँव में ट्रैक्टर खरीदने की बात चलती है तो पूरे श्रमिक वर्ग के लिए वह एक अभियान का रूप धारण कर लेता है। इस अभियान में गाँव की श्रमिकाएँ अपना महत्वपूर्ण योगदान देती हैं-"अपढ़ और चिथड़ों में लिपटी औरतें किस तरह लगी हैं इस यज्ञ की तैयारी में। पिरभूआ की बाई के यहाँ आकर कंधा साध लिया उसका। एकता और सहकारिता की प्रमुख हो गयीं नाइन बऊ। मंदा को गर्व है अपने गाँव की औरतों पर।"[29]

स्त्री-सशक्तीकरण के मूल में स्त्रियों की आर्थिक स्वच्छंदता और दृढ़ता ही सदैव वह मुख्य घटक तत्व रहा है जो उन्हें स्वतंत्रता प्रदान करता है। आर्थिक दृढ़ीकरण उनकी स्वाधीनता की नींव है। प्रारंभ से ही श्रमिकाओं ने मजदूरी-मेहनत कर पैसे तो अर्जित किए पर वे कभी भी आर्थिक स्तर पर स्वच्छंद या दृढ़ नहीं बन पाईं। लेकिन उनका दृढ़ मनोबल सदैव इन्हें एक सम्मानित जीवन जीने का साहस देता आया है।

श्रमिकाओं के विकास के क्षेत्र में सरकार और श्रमिक-संगठन दोनों को ही आगे आना चाहिए। नये औद्योगिक परिवेश श्रमिकाओं के लिए अधिक समस्यओं को खड़ा कर रहे हैं। श्रम-बाजार में वही स्त्रियाँ रोजगार प्राप्त कर पा रही हैं □ो कार्य के शर्तानुसार अपने आपको गतिमान बनाएँ। औद्योगीकरण और शहरीकरण तथा इस कारण बदल रहे जीवन मूल्यों के चलते श्रमिकाओं को समाज में किसी भी

---

[28] लहरों की बेटी-पृ.142
[29] इदन्नमम-पृ.209

प्रकार का या किसी भी वर्ग से कोई सम्मान प्राप्त नहीं होता। असमानता और वैमनस्य की मार अलग ही इन्हें झेलनी ही पड़ती है। एक तरफ जहाँ परिवार की गरीबी उन्हें कार्य करने के लिए विवश करती है वहीं दूसरी ओर कार्य क्षेत्र में मुख्यतः यौन-शोषण और उसका डर उन्हें सदैव भयभीत करता रहता है। श्रमिकाओं को कार्यक्षेत्र में एक सकारात्मक परिवेश प्रदान करने के लिए श्रमिक-संगठनों को प्रमुख रूप से पहल करना चाहिए। इस पहल की आवश्यकता सबसे अधिक अकुशल और अनौपचारिक कार्यक्षेत्र में काम कर रही महिलाओं के संदर्भ में आवश्यक है। सशक्त और कर्मठ स्त्री, एक खुशहाल और उन्नत राष्ट्र के निर्माण को सजीव रूप प्रदान सकती है।

2. बाल श्रमिक

बाल-श्रम एक सामाजिक अपराध है। यह न केवल देश के भविष्य को अंधकार में झोंक देता है वरन मानवीयता के नाम पर भी कलंक है। आज विश्व के प्रत्येक विकसित और विकासशील देशों में बाल-श्रम जैसी निकृष्ट घटना उभरकर सामने आ रही है और विभिन्न रूपों में मौजूद है। "एक अध्ययन के अनुसार, विश्व के संपूर्ण बाल श्रमिकों की संख्या का एक-चौथाई भाग भारत में है और हर तीन घरों में एक घर ऐसा है जिसमें बाल श्रमिक काम करते हैं।"[30]

भारत में लगभग हर असंगठित और अनौपचारिक कार्यक्षेत्र में बाल श्रमिकों की मौजूदगी इस बात की पुष्टि करती है कि ‘देश का भविष्य’ कहलाने वाला यह वर्ग विभिन्न परिस्थितियों और प्रयोजन के कारण बाल-श्रम जैसे निकृष्ट कार्य से जुड़ा हुआ है।

बाल-श्रम किसी भी समाज के लिए कोई नई परिघटना नहीं है। प्राचीन काल से ही बच्चे अपने पैतृक कार्यों में किसी-न-किसी प्रकार से जुड़े रहे हैं। अपने पैतृक या घरेलू कार्यों के साथ बचपन से ही बच्चों को जोड़े रखने के पीछे यह उद्देश्य रहता था कि आगे चलकर वे ही इन कार्यों को बढ़ावा देने में पूर्ण रूप से समर्थ बन

---

[30] Burra Neera, Born to work, child labour in India-p.xiv

पाएँ तथा इससे घर-परिवार का भविष्य सुरक्षित हो पाए। इसे एक प्रकार से प्रशिक्षण प्रक्रिया का पहला पड़ाव जाना जाता था। इस प्रकार बच्चा बचपन से ही किसी विशेष प्रकार की योग्यता में कुशल बन पाता था। लेकिन धीरे-धीरे बच्चों की इसी भागीदारी ने उनके लिए अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देने लगा। पूँजीवाद के आगमन के कारण भारत जैसे विकासशील देश में अनेक सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों और समस्यओं का कहर टूटा तथा बाल-श्रमिक जैसी नई अवधारणा सामने उभर कर आयी।

कृषि प्रधान समाज में बच्चे अपनी क्षमता के अनुसार काम करते थे और इसे समाजीकरण प्रक्रिया का एक अंग माना जाता था। कारीगरी और शिल्प के क्षेत्रों में भी बच्चे प्रशिक्षणार्थी के रूप में काम करते थे। बच्चों को उसी प्रकार के काम सौंपे जाते थे जिसे करना सरल होता था तथा श्रम-साध्य या कष्ट-साध्य नहीं होता था। इसके साथ ही इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता था कि इसका प्रभाव उनके सर्वांगीण विकास पर किसी भी प्रकार का प्रभाव न डाले। परंतु भारत की पारंपरिक सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था के टूटने के साथ ही परिवार के ढाँचे और पारिवारिक उद्योग-धंधों का क्रम उनके हाथ से निकल गया। इसके साथ ही अंग्रेज़ों के आगमन और शासन के दौरान लोग गरीबी की दलदल में फँसते गए। तकनीकी क्रांति ने औद्योगीकरण और तकनीकीकरण की गति को बढ़ा दिया और परिणामस्वरूप समाज में एक सार्थक परिवर्तन हुआ। जीवन निर्वाह के लिए परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को संघर्ष और शारीरिक कार्य करने पड़े। इसी प्रक्रिया में स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी श्रमिक बने। किसान और शिल्पकार अपने खेतों व उद्योगों से बहुत दूर हो चुके थे और श्रमिक बनने लगे थे। काम की तलाश में वे अंतर्राष्ट्रीय और अंतर-क्षेत्रीय स्तर में भारी संख्या में विस्थापित हुए। बेरोजगारी, आर्थिक समस्याएँ और अत्यधिक गरीबी ने लोगों के सामने ऐसी स्थिति खड़ी कर दी □हाँ न चाहते हुए भी बच्चों को श्रम-बाजार में भेजा जाने लगा और बच्चे श्रमिकों का रूप धारण करने लगे।

उपरोक्त कारणों के साथ-साथ बच्चों का श्रमिक बनना पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था के दमन-चक्र का ही एक अंग है, जिसके सहारे पूँजीवाद कम लागत में अधिक मुनाफा कमाना चाहता था। वयस्कों की तुलना में बच्चों को कम वेतन में और अधिक संख्या में श्रम प्रदान करता था। इससे लागत की मात्रा वहीं-की-वहीं रहती थी पर उत्पादन की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती थी। उद्योगों में कार्यरत बच्चों को भी वयस्कों के समान दिन में बारह से पंद्रह घंटे काम करवाया जाता था। इसके साथ ही बच्चों को कार्यक्षेत्र में आसानी से प्रवेश और नियुक्ति मिल जाती थी। यह एक प्रमुख कारण था जिसके चलते गरीब और विस्थापित परिवारों के माता-पिता अपने बच्चों को मिलों और उद्योगों में काम करने के लिए छोड़ आते थे। जैसा कि यह कहा गया है कि उद्योगीकरण और शहरीकरण ने अनेक केंद्रत्यागी (Centrifugal) और केंद्राभिमुख (Centripet) शक्तियों को जागृत किया जिस कारण गाँव की गरीब और बेरोजगार जनता शहरों की ओर विस्थापित हुई। शहर की और परिवार की माँगों को पूरा करने तथा पूँजीवाद के साजिश के तहत भारत में बाल-श्रमिक का स्वरूप पनपने लगा।

गरीबी, निर्विवाद रूप से प्रमुख कारण रहा है परिवार के बच्चों का बाल-श्रमिक बनने के पीछे। मार्क्स ने इस परिप्रेक्ष्य में टिप्पणी करते हुए कहा है कि- "बाल-श्रम के पूँजीवादी शोषण का कारण बच्चों पर पैतृक अधिकार के दुरुपयोग का फल नहीं है बल्कि इसके विपरीत यह पूँजीवादी शोषण प्रक्रिया का ही एक अंग है जिसने पैतृक अधिकारों के आर्थिक धरातल को खोखला बनाकर उस शक्ति को दुरुपयोग के मार्ग की ओर ले जाता है।"[31]

कार्य क्षेत्र, चाहे वह औपचारिक हो या अनौपचारिक, सभी जगह बाल श्रमिकों की बढ़ती संख्या देश और समाज दोनों के लिए ही पतनमुखी संकेत है। बाल श्रमिक हर वह बच्चा है जो 14 वर्ष की आयु से कम है और बिना किसी प्रशिक्षण

[31] Encyclopedia of child labour (priorities for 21st century), C.K.Shukla, S.Ali-p.18

तथा भावी-सुरक्षा संबंधी अनुबंध के बिना ही संकटपूर्ण और कष्टसाध्य कार्यों में लिप्त रहता है। बाल श्रमिक बहुत ही न्यूनतम वेतन के आधार पर काफी लंबे समय तक काम करते हैं। इस कार्यावधि में तो अंतराल होता है और न ही छुट्टी। अनेक जगहों पर इन बच्चों से जबरदस्ती, मारपीट कर भी इनकी सामर्थ्य से अधिक कार्य करवाया जाता है।

किसी भी सामाजिक समस्या या विकृति के पीछे अनेक कारण विद्यमान रहते हैं जो उसे संचालित करते हैं। बाल श्रमिक की अवधारणा के पीछे भी अनेक कारण कार्य करते हैं। गरीबी सदैव ही प्रमुख कारण रहा है बच्चों को श्रमिक बनने में मजबूर करने के लिए। इसके साथ ही शैक्षिक सुविधाओं की कमी भी एक कारण रहा है। यह कारण भी गरीबी से ही जुड़ा हुआ है। माता-पिता का बच्चों के भविष्य के प्रति शुष्कता तथा वर्तमान में जीने की प्रवृत्ति और इसके साथ ही अशिक्षित होना भी बाल-श्रमिक को बढ़ावा देने का एक प्रमुख कारण रहा है। विगत कुछ वर्षों में भारत में बाल-श्रमिक संबंधित अनेक कानून बने हैं। लेकिन सरकार की लापरवाही और समाज की अनैतिकता के कारण आज हर असंगठित क्षेत्र में बाल-श्रमिक उपस्थित हैं। इन सबके अतिरिक्त शहरीकरण और उद्योगीकरण की प्रक्रिया में अकुशल श्रमिकों की माँग ने बाल-श्रमिकों को और उनके परिवार को अपनी ओर आकर्षित किया है। ये सभी कारण अन्योन्याश्रित ढंग से तथा मिश्रित रूप से बाल श्रमिक को बढ़ावा देते रहे हैं। किसी भी समाज की सामाजिक और आर्थिक अस्थिरता है तथा बाल-श्रमिक की अवधारणा को बढ़ने और पनपने का उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है। सामाजिक, आर्थिक विवशता ही बच्चों को अपने जीविकोपार्जन के लिए काम करने पर मजबूर करती है। इसका सबसे बड़ा दुष्परिणाम बच्चों के विकास पर पड़ता है। वे शारीरिक, मानसिक, नैतिक, शैक्षिक और सामाजिक विकास की प्रक्रिया से बिछुड़ जाते हैं। वे शारीरिक रूप से अस्वस्थ और मानसिक रूप से विकृत बन जाते हैं। इसका सीधा प्रभाव देश की प्रगति पर ही पड़ता है।

भारत में अनेक उद्योगों में बाल-श्रमिक आज भी बहुत ही संकटजन्य परिस्थितियों में काम करते हैं। लगभग हर असंगठित और अनौपचारिक क्षेत्र में बाल-श्रमिक मौजूद है। भारत में बड़ी संख्या में, आज भी, बंधुआ बाल मजदूर उपस्थित हैं, जो मुख्यतः गाँव में काम कर रहे हैं। व्यावहारिक रूप में पूरे विश्व में बंधुआ बाल मजदूर बनने का प्रमुख कारण पैतृक या पारिवारिक ऋण ग्रस्तता भी है। इसके अतिरिक्त भारत में निम्नलिखित उद्योगों में आज भी भारी संख्यामें बाल श्रमिक कार्यरत हैं। वे उद्योग हैं-निर्माण कार्य और सड़क पर कार्य, काँच उद्योग, दियासलाई उद्योग, दरी उद्योग, पीतल और ताला उद्योग, स्लेट उद्योग, पटाखा उद्योग आदि। इन सभी कार्य क्षेत्रों में कार्यरत बाल श्रमिक अपनी जान जोखिम में डालकर कार्य करते हैं। इन सबमें पटाखा उद्योग में कार्यरत बाल-श्रमिकों की स्थिति अधिक खतरनाक और जोखिम भरी होती है। भारत के लगभग सभी महानगरों में बड़ी संख्या में होटलों व घरेलू नौकरों के रूप में बाल श्रमिक कार्यरत हैं। होटलों व □बों में मालिकों का मूल उद्देश्य इन श्रमिकों से कम पैसे में अधिक काम करवाना होता है। शारीरिक अत्याचार की प्रथा सबसे अधिक यहीं है। घरों में कार्य कर रहे बाल श्रमिकों की नियति जहाँ एक तरफ शारीरिक-शोषण की तरफ जाती है वहीं दूसरी तरफ यौन-शोषण जैसे अपराधों को भी बढ़ावा देता है। इन सभी परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप बाल श्रमिक अपराध जैसे-हत्या, □ोरी, लूट आदि को अपना पथ चुनने में विवश हो जाते हैं।

इस शोध कार्य में उपन्यासों के चयन के दौरान यह बात ध्यान आकर्षण करने लायक थी कि अंतिम दशक, जिस दशक में हज़ारों स्वयं सेवी संस्थाओं (उभय राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर) ने बाल-श्रमिक विरोधी मुहिम चलाए, उस कालावधि में बाल श्रमिकों की समस्याओं पर आधारित कार्य उपन्यासों में नहीं लिखा गया। कहानी के क्षेत्र में हमें कुछ कहानियाँ अवश्य मिलती हैं। लेकिन वह भी केवल बाल-कथाकारों द्वारा रचित। बाल-शोषण के प्रति बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक का हिंदी साहित्य और उपन्यासकार उदासीन ही रहे। हो सकता है कि मुख्य धारा से

न जुड़ पाने के कारण इस गंभीर सामाजिक समस्या को अनछुआ ही रख दिया गया। अतः इस बिंदु पर साहित्य अपने सामाजिक कर्तव्य से विमुख ही दिखाई पड़ता है। इस दशक के किसी भी बड़े या चर्चित उपन्यासकार की सृजन में बाल श्रमिक और उससे संबंधित समस्याओं को कोई स्थान नहीं मिल पाया है। शोधकार्य के लिए चयनित चौदह उपन्यासों में से केवल तीन उपन्यासों में छुटपुट ही बाल श्रमिकों का सामान्य वर्णन मिलता है।

गरीबी और पारिवारिक दबाव के कारण बच्चों के श्रमिक बनने का चित्रण 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास में मिलता है। हरि अपने बचपन के दिनों को याद करता हुआ अपनी विवशताओं को दुहराता है-"आठ साल पहले जब वह प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई के तुरंत बाद नौकरी करने को मजबूर हुआ था, तो खेतों के बीच कड़कती धूप में सरदारों की डाँट-डपट खाकर सप्ताह-भर अपनी माँ से छिप-छिपकर रोया था। लेकिन फिर जब आदी हो गया तो खेतों के हर काम, कारखानों में गन्ने का रस पकाने से लेकर गंधक जलाने तक-को बारी-बारी करता ही रहा। पंद्रह की उम्र तक आते-आते कोई भी ऐसा काम नहीं था जो उसने नहीं किया था यही नहीं दो पैसे अधिक कमाने के लिए गाड़ीवान भी बना।"[32]

'इदन्नमम' उपन्यास में बेगार में काम करनेवाले बाल-श्रमिकों का वर्णन है। मंदाकिनी इन बाल-श्रमिकों की अवस्था का वर्णन करते हुए कहती है-"मजूरी तो नहीं बेगार करते हैं काकी। दिन-भर छिटकी गिट्टी बीनते रहते हैं। बदले में सिकी ने दस पैसे हथेली पर रख दिये तो बड़ी बात। एकाध रोटी दे देते हैं ठेकेदार लोग। जो तनिक बड़े हैं वे शराब के ठेके से बोतल-वोतल लाने, नमकीन और बीड़ी-माचिस की व्यवस्था करने में लगे रहते हैं। दारू के लिए गिलास और मग धोते हैं। नहीं करते तो पीटते हैं।"[33]

[32] और पसीना बहता रहा-पृ.39
[33] इदन्नमम-पृ.218

यह वर्णन आज भारत के अधिकतर बाल श्रमिकों की अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। दरअसल बाल श्रमिकों की इस अवस्था का उत्तरदायी सरकार भी है। नियमों के नाम पर अनेक कुछ बना भी है और समय-समय पर संशोधित भी होता रहा है, पर वास्तविक धरातल पर इसका कार्यान्वयन नहीं होता। इस स्थिति पर विचार प्रकट करते हुए रघु का साथी उससे कहता है-"वास्तव में सरकार में यदि क्षमता है तो बच्चों पर होने वाले अन्याय को बंद करे जो प्रत्येक क्षण प्रत्येक परिवार में हो रहा है। कोई बच्चा दरी कालीन बनाने के कारखाने में काम कर रहा है तो अन्य माचिस बनाने के कारखानों में काम कर रहे हैं अथवा छोटी मोटी चाय की दुकानों में काम कर रहे हैं या घरों में नौकरी कर रहे हैं। क्या इन सभी को बंद करना आसान है? सरकार के पास दूरदर्शन है, रेडियो है, विशाल प्रचार-तंत्र है। सरकार इस अन्याय को बंद करे तो मैं जानूँ?"[34]

विगत कुछ वर्षों में बाल श्रम आयोग ने कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। महानगरों के कुछ क्षेत्रों में अनेक घरों से घरेलू-नौकरों के रूप में काम कर रहे बाल श्रमिकों का उद्धार किया। संचार माध्यमों द्वारा दूर दराज गाँव में भी बाल-श्रमिक विरोधी अभियान और जागरूकता को फैलाने का भरपूर प्रयास किया गया है। स्वयं सेवी संस्थाओं ने इस सामाजिक समस्या को हटाने के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यूनिसेफ (UNICEF) और भारतीय बाल श्रम आयोग ने विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से इस मार्ग पर विशेष कार्य किए हैं। लेकिन विडंबना यही है कि इन सभी कार्य या परिवर्तन का प्रभाव केवल अस्थायी ही प्रमाणित हुआ है। इसके कई कारण रहे हैं। एक तरफ जहाँ उद्योगों के मालिक और ठेकेदार इन बच्चों को अनेक प्रकार के प्रलोभन देते हैं, वहीं आर्थिक स्तर पर कमजोर होने के कारण माता-पिता जो अपने बच्चों को काम करने के लिए बाध्य करते हैं। इसके अलावा वे ब[illegible] [illegible]ो-अपने घरों से भाग आए हों, नौकरी मिलने की आशा में ठेकेदारों द्वारा छले गए हों, वैसे बच्चे जिनकी देखभाल, आर्थिक सुरक्षा या भरण-पोषण के लिए

---

[34] पृथ्वी की पीड़ा-पृ.60

कोई नहीं होता और वे बच्चे जो गाँव से शहरों की ओर जीविकोपार्जन के लिए विस्थापित होते हैं, बाल श्रमिक बनने के लिए अभिशप्त हैं।

अर्थशास्त्रियों के अनुसार बाल श्रम का सबसे अधिक दुष्परिणाम और प्रभाव वयस्कों के बेरोजगारी (unemployment) और अल्परोजगारी (Under-employment) पर पड़ता है। श्रम वितरण की समानता में भी यह कारक बहुत प्रभाव डालता है। बाल श्रम उद्योगों के लिए आर्थिक सहायता का काम करता है लेकिन श्रम बाजार में वेतन और पारिश्रमिक दर को कम करने के साथ ही वयस्कों के लिए रोजगार की संभावनाओं को कम करता है। बाल श्रम परिवार के आर्थिक स्तर को दृढ़ करने में मदद करता है, यह तथ्य पूर्ण रूप से गलत है। बल्कि इसके विपरीत यह बच्चों से उनके शैक्षिक अधिकारों को छीनता है, उनके शारीरिक विकास को रोकता है, उनके मानसिक विकास में प्रतिरोधक बनता है और अनचाहे ही उन्हें अकुशल और असंगठित श्रमिक-वर्ग में झोंक देता है जिसके फलस्वरूप वे आजीवन कम मजदूरी में काम करने के लिए विवश होते हैं।

बच्चों का कार्य क्षेत्र में प्रशिक्षणार्थी के रूप में या कार्य सीखने के उद्देश्य से उपस्थित रहना, भारतीय सामाजिक संरचना के लिए नयी घटना नहीं थी। लेकिन समय के साथ यह घटना सामाजिक-समस्या और अपराध में रूपांतरित होती गयी क्योंकि इसमें शोषण, अत्याचार और स्वार्थ लाभ जैसे कारक मिलते गए। बच्चों का श्रमिक बनने के कारण जहाँ उनका सर्वांगीण विकास रुक जाता है वहीं उनकी योग्यता भी न्यूनतम बन जाती है। शैक्षिक व नैतिक स्तर पर अविकसित और अयोग्य बच्चा देश और समाज के भविष्य में बाधक ही होगा। आज भारत बाल श्रम के परिप्रेक्ष्य में प्रथम स्थान पर आता है। एक स्वार्थी और अनैतिक सरकार, बेईमान राजनेता, अत्यधिक गरीबी, बढ़ती हुई बेरोजगारी तथा सामाजिक मूल्यों के विघटन भारत में बाल श्रमिकों की बढ़ती हुई संख्या के लिए उत्तरदायी हैं। सामाजिक जागरूकता, प्रभावी अभियान और लोगों की भ्रम-धारणा और मानसिकता में बदलाव-यह सब बाल-श्रमिक को रोकने के लिए समय की माँग है। यह समस्या दिन-ब-दिन बढ़ती

जा रही है और समाज में मजबूती के साथ जमती जा रही है। इसलिए इसके समाधान और संशोधन एक लंबी प्रक्रिया को प्रस्तुत करना है जिसमें गहरे और तीव्र प्रयासों की आवश्यकता है। इसके साथ ही इस अमानवीय और अनैतिक प्रवृत्ति को रोकने के लिए समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों को सामने आना चाहिए और अपना योगदान देना चाहिए।

3. दलित और आदिवासी श्रमिक

श्रमिक वर्ग के अंतर्गत दलित और आदिवासी श्रमिक एक ऐसा तबका है □ो अन्य सभी समस्याओं के साथ ही अधिक से अधिक उपेक्षित और पिछड़ा हुआ है। श्रमिकों में दलित और आदिवासियों की उपस्थिति पहले से ही रही है, लेकिन समाज के हाशिए में रह रहे इस वर्ग का पूर्णतः श्रमिक बन जाना आधुनिक युग में औद्योगीकरण के साथ-साथ सरकार के विभिन्न नवउदारवादी परियोजनाओं और प्रगति के नाम पर पारित किए गए अनेक नीतियों का प्रतिफलन है। दलित श्रमिकों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि सामाजिक वर्ग-विभाजन के अनुसार यह वर्ग प्रारंभ से ही उच्च वर्ग के यहाँ दास या श्रमिक के रूप में काम करता आया है। आदिवासियों का श्रमिक बनना, औद्योगीकरण की अधिकता और मिल रही प्राथमिकता के कारण ही है। उद्योगों की स्थापना के नाम पर अनेक जंगल कटे। इसके फलस्वरूप वहाँ के मूल निवासी, भारत के आदिवासियों को अपना जल, जंगल और जमीन छोड़ना पड़ा। ऐसी स्थिति में उनके पास दो ही पर्याय बचे रह गये। एक या तो वे वहाँ से विस्थापित हो जाएँ या फिर उन्हीं कंपिनयों के अधीनस्थ औद्योगिक श्रमिक बनने को अपनी नियति मान लें। मूल रूप से भारत के आदिवासी अपनी जमीन पर परंपरागत कृषक या कारीगर हुआ करते थे। परंतु जंगलों के कटने के कारण वे भूमिहीन हुए और जीवन यापन के लिए दूसरों के खेतों पर खेतिहर श्रमिक बने और उद्योगों में अकुशल श्रमिक के रूप में काम करने लगे। आए दिन खदानों के निर्माण के नाम पर आदिवासियों को अपने मूल जगहों से खदेड़ा जा रहा है और विवशतः उन्हें श्रमिक बनना पड़ रहा है। बीसवीं शताब्दी के

अंतिम दशक के उत्तरार्ध में हिंदी साहित्य में ऐसे अनेक उपन्यास लिखे गए हैं जिसमें आदिवासियों की इन्हीं परिस्थितियों और विवशताओं का मार्मिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन दिनों साहित्य के माध्यम से इस वर्ग की समस्याओं का प्रस्तुतीकरण हो रहा है।

भारतीय आदिवासियों का श्रमिक बनने के पीछे दो प्रमुख कारण कार्य कर रहे हैं। एक तो रोजगार की तलाश में वे अपने जंगल और पहाड़ छोड़कर शहर की ओर आ रहे हैं। शहर का अजनबीपन और शहरी-सभ्यता का डर चाहे उन्हें कितना भी क्यों न सताए पर जीवन-यापन के लिए उन्हें इसी ओर आकर्षित होना ही पड़ा। दूसरा कारण था खनिज-संसाधनों की उपलब्धता के कारण अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों की खदान स्थापना की मनोवृत्ति से जंगल और पहाड़ों की ओर आकर्षित होना तथा वहाँ पर अपने उद्योगों की स्थापना करना। उद्योगों की इस प्रकार की स्थापना ने भी आदिवासियों को श्रमिक बनने का उत्तम परिवेश प्रदान किया। इन सभी कारणों की उपस्थिति के साथ ही परिवार के अभाव और आर्थिक कठिनाइयों मे ंसुधार लाने के लिए भारतीय आदिवासी के विभिन्न वर्ग जैसे संथाल, गोंड, ओराँव, मुंडा आदि बड़े पैमाने पर असम के चाय बगानों में जा कर काम करने लगे। तथा परिवार के अन्य सभी बड़े-छोटे सदस्य शहरीकरण और औद्योगीकरण के फलस्वरूप उपजी इन जटिल परिस्थितियों का सामना करने के लिए विभिन्न उद्योगों तथा निर्माण कार्यों में मुख्यतः अकुशल श्रमिक के रूप में कार्यरत होने लगे। ओड़ीसा, झारखंड, बंगाल, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में खनिज पदार्थों की प्रचुरता के कारण यहाँ के आदिवासी क्षेत्र और आदिवासी वर्ग औद्योगीकरण के प्रभाव से सबसे अधिक प्रभावित हुए। उद्योगों की स्थापना ने इस वर्ग को रोजगार के अनेक साधन तो दिए लेकिन इसके बदले आदिवासी वर्ग को अधिक मूल्य चुकाना पड़ा।

अपने आदिम निवास स्थान से निकाले गए इन आदिवासियों की अवस्था शहरों या अन्य किसी भी स्थान पर अत्यंत शोचनीय होती है। 'इदन्नमम' उपन्यास में राउतों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण है। रोजगार की तलाश में अपनी

जगह से इतर स्थानों पर काम कर रहे इन आदिवासियों के साथ ठेकेदारों तथा पुलिस का व्यवहार पशुओं जैसा होता है। उनकी गणना मनुष्यों में नहीं की जाती है और अमानवीय अत्याचार का बाढ़ उन पर उमड़ता है। अपने साथ हो रहे इस प्रकार के व्यवहारों को बताते हुए बाबा मंदाकिनी से कहते हैं-"अफसर की अगाई और घोड़ा की पिछाई कहाँ नों करे आदमी? आगई काटी थी हमने, ऐन तो काटी थी, जब जंगलों से खदेरे गये थे। अपने पेड़-रूखों से जुरा कर दिया था हमें। जड़ों से काटकर फेंके तो मुरझाते हएु भी तीर, लाठी, बल्लम लैकें जूझ परे थे हम। हार नहीं मानी थी किसी तरियों। पर अंत में क्या बना? क्या मिला? पुलिस ने मार-मारकर घुटने फोर दिये। भेजा चटनी बना दिया, बंदुकों की बट से घिस-घिसकर। जो बचे थे, वे ठूँस दिए जेहल में। हमारी पैरोकारी किसी ने नहीं की। किसी ने नहीं गिने कि कितने मर गये? कोई नहीं आया मरत-सहायता के लानें।"[35]

अपने पिछड़ेपन और अशिक्षा के कारण आदिवासी-श्रमिक हमेशा शोषण का शिकार होता रहा है। इस कारण समाज के अलग वर्ग और तबके के लोग इनके साथ मनचाहा व्यवहार करते हैं। आदिवासी श्रमिकाओं की अवस्था और भी अधिक खराब रहती है। ठेकेदार, मालिक यहाँ तक कि पुलिस के द्वारा भी इन श्रमिकाओं का शोषण होता आ रहा है। पहाड़ों पर राउतों की स्त्रियों को भी इसी प्रकार अभिलाख के लोग तीस-पैंतीस रुपयों में शहरों में बेच आते हैं। इस वर्ग की स्त्रियों के साथ जहाँ अशिक्षा, नौकरी का डर जैसी समस्या होती है वहीं समाज में पिछड़ेपन का डर भी रहता है। आदिवासी-स्त्रियों की इन दुर्दशाओं का प्रस्तुतीकरण ‘इदन्नमम’ उपन्यास में इस प्रकार हुआ है-

"मेहनत-मजदूरी छोड़ो, खाना-पीना भूलो, पर इतेक भारी अतियाचार।

हमारी जनी-मानसें बेची जने लगी हैं अब। जिंदे आदमियत का व्यौपार करने लगे हैं अभिलाख। पिछले डेढ़ साल से होंठ सिये बैठे हैं हम,पर दिन-दिन बढ़ता ही

---

[35] इदन्नमम-पृ.282

जा रहा है यह कुव्यौपार। मालिक की अगाई कैसे करें हम? कैसे रोके-बर <?> उनको?"[36]

श्रमिकों से छूट रहे उनके अस्तित्व की पीड़ा को व्याख्यायित करते हुए मंदाकिनी कहती है-"पहाड़, वन, नदियों, महुआ, बेर, करौंदी, चिरौंदी, हल्दी, अदरक-अरे तमाम संपदा है। पर दुर्भाग्य है हमारा कि हम नहीं बरत पाते। दलालों के सुपुर्द हो जाती हैं हमारी संपत्ति। पहाड़ों की नीलामी, चनों की बोली तहस-नहस कर देती है मनोरम वातावरण को, पहाड़ टूट रहे हैं, वन कट रहे हैं। सुनसान सपाट मैदानों में फड़फड़ाते डोल रहे हैं पंछी-परेवा।"[37]

आदिवासी-श्रमिक समुदाय अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को जानने के पश्चात भी उसके सुधार के लिए कुछ नहीं कर सकता, ठेकेदार, मालिक और समाज के अन्य वर्ग का प्रभाव उन पर इतना रहता है कि वे अपने ऊपर हो रहे शोषण के प्रतिवाद में कुछ नहीं कह सकते। इस वर्ग के साथ पुलिस का व्यवहार भी बड़ा पाशविक रहता है। कंपनी और उद्योगों में बने यूनियन का नजरिया भी इन लोगों के प्रति कुछ खास नहीं रहता। अपनी अज्ञानता और शहरी-सभ्यता से डर के कारण यह वर्ग यूनियन के साथ आसानी से जुड़ नहीं पाता। संगठन की कार्यवाही में इसकी हिस्सेदारी कम होने के कारण भी इनकी समस्याओं और आवेदनों को हाशिए पर डाल दिया जाता है। समाज के अन्य वर्ग के लोगों की यह धारणा रहती है कि जंगल और पहाड़ों से उठकर आने के कारण यह किसी भी समस्या और परिस्थिति के साथ समायोजन कर जी सकते हैं और यही मनोभाव उन्हें आदिवासी या आदिवासी श्रमिकों की उन्नति और प्रगति के बारे में सोचने से रोकती है। भारत के उत्तर-पूर्व भाग के विभिन्न राज्य जैसे-ओड़िसा, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, बंगाल आदि राज्यों में खनिज पदार्थों की प्रचुरता के आकर्षण से आकर्षित अनेक राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कंपनियों यहाँ अपनी स्थापना के लिए उत्सुक रहती हैं। पर इस उत्सुकता

---

36 इदन्नमम-पृ.282

37 इदन्नमम-पृ.310

के पीछे केवल व्यक्तिगत लाभ का स्वार्थ ही रहता है बल्कि इसके लिए आदिवासी समाज अपने अस्तित्व को दाव पर लगाता आया है।

4. भूमंडलीकरण और श्रमिक

वैश्वीकरण के विभिन्न पक्ष जैसे-मशीनीकरण, तकनीकीकरण आदि सभी का सीधा प्रभाव भारतीय किसानों और श्रमिकों पर पड़ा। यहाँ पर किसानों की चर्चा करना आवश्यक है क्योंकि वैश्वीकरण की सबसे अधिक मार इन्हीं पर पड़ी और आज भी भारतीय श्रमिकों का एक बड़ा हिस्सा खेतीहर श्रमिकों या भूमिहीन किसानों का है। देशी माल का प्रस्तुतीकरण अंतर्राष्ट्रीय बजार में किया तो गया पर उसका लाभ सीधे उन कंपनियों को मिला जो वैश्विक बाजार में अपने आप को प्रस्तुत करने में समर्थ थीं। इस कारण जो भी लाभ था वह पूँजीपति के पास जाता है और गरीब श्रमिकों की अवस्था जैसे की तैसी रह जाती है। वह अपने मूल पेशे को छोड़कर अन्य के अधीनस्थ दास भी बनता है और अपनी जड़-जमीन से भी अपना अधिकार खो बैठता है। 'इदन्नमम' उपन्यास में प्रस्तुत किए गए वे श्रमिक जो क्रैशरों पर कार्यरत हैं, वे वास्तव में उसी जमीन के मूल निवासी और अधिकारी थे। लेकिन मशीनीकरण की हवा ने उनसे उनकी जमीन छीन वहाँ मशीनों का प्रयोग किया और परिस्थितिवश मूल निवासी होने के बावजूद भी वे श्रमिक बनते गए। प्रगति के नाम पर शुरू हुआ मशीनीकरण अनेक शहरी विकास को हमारे सामने प्रस्तुत करता है, लेकिन यह विकास केवल बुर्जुआ वर्ग के लिए होता है। अपने आपको अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा करने के लिए होता है।

लोगों को विकास के नाम पर छलने और प्रलोभित करने का काम समाज का उच्च वर्ग बड़े ही आसानी से करता है। गाँव वालों से वोट माँगने आए राजनेता उन्हें उल्टा लांछन देते हए‌ु कहते हैं-"सरकार विकास लाती है, उन्हें विनाश लगता है, किसी का खेत, किसी का बाग, किसी की भेड, किसी का पेड़, किसी का ताल, किसी का घूरा, किसी की पोखर संकटों से घिरे हैं। हम क्या समझायें कि मूर्खों, इतनी छोटी-छोटी चीज़ों की परवाह की तो बड़ी-बड़ी प्रगति योजनाएँ लागू कैसे होंगी?

परियोजनाओं का क्या होगा? नई-नई तकनीकों को किस स्थान पर प्रयोग करेंगे? देश आगे कैसे बढ़ेगा?"[38]

इस उक्ति से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैश्वीकरण के चलते जो विकास या विकास के नाम पर जो भी परिवर्तन होते हैं वे परोक्ष रूप से केवल पूँजीपति वर्ग के लिए ही होते हैं। इसमें सर्वहारा वर्ग केवल एक संचालक का काम करता है, जिसे अंत में वृत्त के उसी बिंदु पर पुनः छोड़ दिया जाता है जहाँ से उसने चलना शुरू किया था। प्रगति के नाम पर उससे उसकी जमीन और व्यापार छीन लिए जाते हैं और बदले में मुट्ठी भर पैसे दे कर उसे संतुष्ट रहने के लिए कहा जाता है और साथ में दिया जाता है एक अंधकार और अनिर्दिष्ट भविष्य। मंदाकिनी का यह मंतव्य पाठकों के सम्मुख इस परिदृश्य को प्रस्तुत करता है। ठेकेदार न केवल लोगों से उनकी जमीन और खेत खरीद कर ले लेता है बल्कि उसके साथ उन्हें बेरोजगारी के दलदल में भी झोंक देता है।

"क्रैशरों ने पहाड़ काटकर उसके पत्थर ही नहीं पीसे, यहाँ के लोगों का जीवन पीस डाला। राई-रेत कर दी साँसें।"[39]

एक तरफ जहाँ नवउदारवादी आर्थिक नीतियों और किसानों के प्रति सरकार की उदासीनता के कारण खेती का कार्य घाटे में जाता है वहीं दूसरी तरफ किसानों की अवस्था भी बद-से-बदतर होती जाती है। ऋण के बोझ तले दबा किसान, खेतीहर श्रमिक बनने को विवश होता है। लेकिन तकनीकीकरण के चलते खेतों में मशीनों का प्रयोग इस संभावना को भी शेष प्राय कर देता है। सरकार की इस प्रकार की नीति और स्वार्थ लाभ के प्रयोजनों पर टिप्पणी करते हुए यदु दादा कहते हैं-"खेती की समस्या एक सामाजिक समस्या है। यह जमीन की समस्या से जुड़ी हुई है। जमीन जोतेने वाले को मिले और फिर ये नये साधन खेती और देहाती समाज के नये संगठन की माँग करते हैं। छोटे-छोटे खतों में ट्रैक्टर क्या कर पाएंगे, ये छोटी जोत

---

[38] इदन्नमम-पृ.306
[39] इदन्नमम-पृ.307

वाला किसान उन्हें लाएगा भी कहाँ से? इसलिए इन साधनों के विकास के साथ-साथ सामूहिक नहीं तो कम-से-कम सहकारी खेती की ओर बढ़ना होगा। फिर उसके व्यापार और वितरण को भी ऐसी या फिर सरकारी मशीनरी के तहत करना होगा।"[40]

यह जानते हुए भी कि गरीब किसान उन आधुनिक मशीनों का प्रयोग तो दूर उन्हें खरीद या प्राप्त नहीं कर पाएगा, सरकार ऐसी योजनाओं को प्रोत्साहित करती है। इसके फलस्वरूप होता यह है कि छोटे किसान वर्ष के अंत में हानि प्राप्त करते हैं और उन्हें लाभ प्राप्त करने के लिए इन मशीनों को माध्यम बनाया जाता है। इन्हें खरीदने के लिए इन छोटे किसानों को प्रोत्साहित किया जाता है। विभिन्न प्रकार की ऋण-परियोजनाओं के तहत और मशीनों के प्रयोग से अनभिज्ञ तथा तकनीकीकरण से कोसों दूर रहने वाला यह किसान ऋण-ग्रस्तता का शिकार बनता है और खेतीहर मजदूर के वर्ग में आ जाता है।

5. विस्थापन और श्रमिक जीवन

भूमंडलीकरण ने हमारे सामने ऐसी स्थितियाँ प्रस्तुत की हैं, जो वैश्विक स्तर पर श्रमिकों के विस्थापन को बढ़ावा दे रहा है। पूँजीवाद का सदैव यह प्रयास रहा है कि वह कम दर में अधिक मुनाफा कमा सके और इसकी यही लालसा विश्व भर में विस्थापन की परिघटना को अधिक-से-अधिक पनपने का आवश्यक कारण बनी है। किसी एक स्थान विशेष में श्रम करने या रोजगार के साधनों का कम पड़ जाने के कारण और श्रम विभाजन में हो रहे अस्थिरता के चलते असंगठित और अकुशल श्रमिक जो मौसमी बेरोजगारी (Seasonal unemployment) का शिकार होता है, वह अपने जीवन निर्वाह के लिए श्रम की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान को विस्थापित होता है। यह श्रमिक न केवल एक देश से दूसरे देश को विस्थापित होते हैं, वरन अंतर्राज्यीय और अंतर-क्षेत्रीय रूप में भी विस्थापित होते हैं। किसी भी

[40] जुलूस वाला आदमी-पृ.238

समाज या समुदाय में वहाँ की आर्थिक अस्थिरता और रोजगार की उपलब्धता में आ रही विभिन्नता ही विस्थापन का प्रमुख कारण है।

विस्थापन एक वैश्विक परिघटना है, जिसका कारण किसी स्थान विशेष की आर्थिक परिस्थिति के साथ वहाँ की सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, स्वास्थ्य जनित, शिक्षा संबंधी कारण आदि सभी उत्तरदायी होते हैं और इसे प्रभावित भी करते हैं। समाजशास्त्रियों ने विस्थापन को सामाजिक परिवर्तनों का एक मुख्य कारण माना है। किसी भी समाज या क्षेत्र की आर्थिक और परिवेश-जनित स्थिरता और संचयता की संभावनाओं और परिणामों को वहाँ की विस्थापन अनुपात के आधार पर मापा जा सकता है। जनसंख्या गणना में विस्थापन को तीसरा महत्वपूर्ण घटक माना गया है।

भारतीय श्रमिकों के परिप्रेक्ष्य में विस्थापन कोई नई अवधारणा नहीं है। ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन तथा ब्रिटिशों के सत्ताधिकार के बाद से ही भारतीय श्रमिक विभिन्न रूप से विदेशों को तथा ब्रिटिशों के अन्य उपनिवेशिक देशों को विस्थापित किए जाते रहे हैं। कलकत्ता, बंबई, मद्रास आदि बंदरगाह से हजारों और लाखों की संख्या में भारतीय श्रमिक विश्व के विभिन्न देशों को प्रवासित किए गए। यह प्रक्रिया सन् 1800 के पूर्वार्ध से ही शुरू हो गयी थी। प्रारंभिक समय में अफ्रीका और वेस्ट इंडिज़ की चीनी मिलों में श्रमिकों का विस्थापन बड़े आकार में होता रहा। प्रारंभिक अर्थनैतिक व्यवस्था का विघटन और यकायक जनसंख्या में भारी वृद्धि के कारण देश में गरीबी और बेरोजगारी तेज़ी के साथ बढ़ रही थी। इसके साथ ही भूमिहीन किसान, उद्योगहीन शिल्पकार और कारीगर इस गरीब ओर बेरोजगार जनता में अपना नाम शामिल करते जा रहे थे। आगे चलकर यह अभावग्रस्त, निराश्रित और गरीब जनता ही समुद्र पार ब्रिटिश उपनिवेश को विस्थापित हुए। इस समय भारत का यह श्रमिक बंधुआ मजदूर के रूप में विस्थापित किया जाता रहा। भारतीय श्रमिकों के विस्थापन की इस प्रक्रिया को देश के संगठित उद्योगों के निष्क्रमण का पहला चरण माना जाता है। "अंग्रेज़ों द्वारा लागू की गयी

भूमि बंदोबस्त प्रथा ने भारत में बंधुआ मजदूर प्रणाली के लिए आधार प्रदान किया।"[41]

मॉरिशस, गुइना, त्रिनिदाद और जामाइका आदि द्वीप चीनी उत्पादन के लिए उस समय प्रसिद्ध थे और वे अपने उद्योगों में दास-मजदूरों की नियुक्ति करते थे।"[42] यह मिलें कम समय में अधिक काम और उत्पादन के लिए दास-श्रमिकों को अधिक प्राथमिकता देते थे। इस कारण इन देशों के उद्योगपतियों की नज़र भारत की गरीब जनता की ओर अधिक आकर्षित हुई जो किसी भी परिस्थिति और शर्तों पर, मौजूदा हालातों के आधार पर, काम करने के लिए तैयार बैठा था। भारत के उस समय के सरकार के साथ साझेदारी कर इन देशों के पूँजीपति भारी संख्या में भारतीय श्रमिकों को गिरमिटिया या बंधुआ तथा दास श्रमिक के रूप में विस्थापित कर ले जाते रहे।

बंधुआ मजदूरों को ले जाने की प्रक्रिया अपने आप में इतिहास को समाए हुए है। भारतीय श्रमिक इतिहास में इस परिघटना को सबसे शर्मनाक और अमानवीय घटना के रूप में सूचित किया गया है। ये मजदूर न तो पूरी तरह से मुक्त थे और न ही पूरी तरह से दास थे। मूलतः इन्हें पाँच वर्ष की अवधि के लिए बंधुआ बनाया जाता था और खाद्य, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य तथा मासिक वेतन आदि सुविधाओं को देने की शर्त शामिल रहती थी। लेकिन इनमें से एक भी सुविधा इन प्रवासित बंधुआ मजदूरों को नहीं मिलती थी। प्रवसन और बंधुआ मजदूरी के इसी दौर में भारतीय परिदृश्य में एक नया वर्ग सामने उभरकर आ रहा था, वह था बिचौलिए या ठेकेदारों का वर्ग। उपनिवेश देश भारत में व्यवस्थागत रूप से इन ठेकेदारों को मुहैया करवाते थे, जो ग्रामीण इलाकों से श्रमिकों को अनेक प्रकार के प्रलोभन दे कर एकत्रित करते थे। ये लोग अरकथी (Arckathis) के नाम से भी जाने जाते थे। ये अरकथी या ठेकेदार भारत के विभिन्न ग्रामीण इलाकों से लोगों को एकत्रित कर

[41] भारत में बंधुआ मजदूर, महाश्वेता देवी, निर्मल घोष, भूमिका

[42] Working class of India, Sukomal Sen-p.48

कलकत्ता, मद्रास और बंबई की विभिन्न बंदरगाह पर लाते थे और यहीं से उन चीनी मिलों तथा अन्य देशों और द्वीपों को बंधुआ मजदूर के रूप में विस्थापित करते थे। उन्नीसवीं सदी के अंत तक भारत से सात लाख से भी अधिक श्रमिक विस्थापित हो चुके थे।

एक तरफ जहाँ अंत□ीतीय स्तर पर श्रमिकों का विस्थापन जोर पकड़ रहा था वहीं दूसरी ओर भारत में अंतर-राज्यीय स्तर पर भी श्रमिक एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को विस्थापित हो रहे थे। असम के चाय-बगान, कलकत्ता के कपड़े और जूट के मिलों, बंबई का कपड़ा उद्योग तथा अन्य शहरों में हो रहे मिल, विदेशी मालों की कंपनियों में नौकरी की संभावनाएँ देश के अन्य क्षेत्रों के लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा। बिहार, ओड़िसा, आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों से भारी संख्या में श्रमिक कलकत्ता और बंबई की ओर विस्थापित हुए। विस्थापन की यह प्रक्रिया आज भी जारी है। 2001 की जनगणना के तथ्यों के अनुसार देश की 39% जनता विस्थापित जनता है जो प्रमुखतः रोजगार के लिए ही एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को विस्थापित होता है।

विस्थापन मुख्यतः दो आधार पर ही होता है। पहला तो यह कि यह किसी भी व्यक्ति की व्यक्तिगत निष्पत्ति होती है। जिस स्थान पर श्रम की माँग अधिक रहती है और वेतन का आकार उत्तम रहता है, श्रमिक उस स्थान को विस्थापित होने के लिए आकर्षित होता है। इसके चलते शहरीकरण और औद्योगीकरण भी विस्थापन के कारकों से जुड़ते हैं। विस्थापन का दूसरा कारण पूँजीवाद से जुड़ा है। पूँजीवादी व्यवस्था में यह नीति रहती है कि वह अपने विकास और लाभ के लिए बाजार में सदैव सस्ते श्रम की माँग और खोज करता रहता है ताकि कम लागत मूल्य में अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सके। इस कारण वह ग्रामीण क्षेत्र के लोगों तथा समाज के अन्य पिछड़े और अभावग्रस्त वर्ग को अन्यान्य सुविधाओं के नाम और मोह पर अपनी ओर आकर्षित करता है।

अनेक प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक, व्यक्तिगत और क्षेत्रगत कारणों के बावजूद आर्थिक कारणों को ही विस्थापन को प्रोत्साहित करने का प्राथमिक कारण माना जाता है। अनेक प्रगतिशील देशों में (जैसे भारत में ही) कृषि संबंधी कम-आय, कृषि-उत्पादों और कृषि संबंधी रोजगारों में गिरावट और मौसमी-बेरोजगार आदि कारक लोगों को एक जगह से दूसरी जगह विस्थापित होने के लिए दबाव डालता है। मानव शास्त्रीय विश्लेषण के अंतर्गत पारंपरिक निवास स्थान से किसी अन्य क्षेत्रों में प्रवसत या विस्थापन के लिए दो कारकों को उत्तरदायी माना है। वे दो कारण हैं-(अ) विस्थापन कारक (Push factors), (आ) आकर्षण कारक (pull factors)

विस्थापन के विस्थापन कारक वे कारक हैं, जो लोगों को एक जगह से बाहर निकलने के लिए बाध्य करती हैं। एक तरह से मानसिक और आर्थिक दबाव होते हैं जो किसी क्षेत्र को छोड़कर अन्य बेहतर स्थान पर जाने के लिए प्रयास करना आंरभ कर देता है। रोजगार की कमी, अवसरों की अपर्याप्तता, निकृष्ट आर्थिक स्थितियाँ, वेतन की समस्या-यह सभी आर्थिक स्तर के विस्थापन कारक हैं। इसके साथ ही प्राकृतिक जैसे-भुखमरी, अकाल, बाढ़ आदि ऐसे परिवेश जनित विस्थापन कारक हैं जो लोगों को विस्थापित होने के लिए मजबूर करता है। असमानता और वैमनस्य ऐसे ही सामाजिक विस्थापन कारक हैं जिसके चलते श्रमिक अधिक विकासशील और स्वतंत्र स्थान को जाना चाहता है। इसके साथ ही जनसंख्या की वृद्धि एक महत्वपूर्ण विस्थापन कारक है। साथ ही जनसंख्या की वृद्धि अनेक पार्श्व कारणों को पैदा करता है और मुख्य रूप से बेरोजगारी को पनपाता है। इसके साथ ही अन्यान्य कारण जैसे-पलायन, बेहतर शिक्षा या स्थास्थ का अवसर, राजनैतिक उतार-चढ़ाव आदि भी विस्थापन के विस्थापन कारक के अंतर्गत आते हैं।

विस्थापन का दूसरा कारण है आकर्षण कारक (Pull factors)। आकर्षण कारक वे हैं जो लोगों को अनेक सुविधाओं और संभावनाओं के साथ अपनी ओर आकर्षित करते हैं तथा लोग अपना मूल-निवास त्याग कर उन स्थानों पर जाना

पसंद करते हैं। विस्थापन कारक के विपरीत आकर्षण कारक लोगों को अच्छे अवसरों की पर्याप्तता, बेहतर जीवन-निर्वाह स्थितियाँ, राजनैतिक और धार्मिक स्वतंत्रता, शिक्षा की सुविधा, बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ, सुरक्षा आदि इसके अंतर्गत हैं। लेकिन इन सबसे ऊपर बेहतर रोजगार की सुविधाएँ और पर्याप्तता ही आकर्षण कारक का मुख्य घटक रहा है। क्योंकि आर्थिक दृढ़ता और सुरक्षा प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की मूलभूत आवश्यकता है।

मूल रूप से भारत में असंगठित श्रमिक ही भारी मात्रा में विकासशील राज्यों या शहरों की ओर अधिक आकर्षित और विस्थापित हो रहा है। उद्योगों की स्थापना के कारण रोजगार की संभावनाओं के कारण तथा निर्माण कार्य जैसे क्षेत्रों में कुशल से अधिक अकुशल श्रमिकों की आवश्यकता अधिक रहती है। अतः श्रमिकों को काम मिलने में सुविधा होती है।

भरतीय वर्तमान परिदृश्य में तथा वैश्वीकरण की आड़ में अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सरकार के साथ साझेदारी कर देश के प्रत्येक उन जगहों पर अपनी जड़ें जमाना चाहती हैं, जो प्राकृतिक संपदाओं से भरा पूरा है तथा उन जगहों को भी अपना लक्ष्य बना रही हैं। जहाँ कम लागत और सस्ते श्रम में अधिक मुनाफा कमाया जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत के आदिवासी क्षेत्रों में आर्थिक सुधार के नाम पर अपना वर्चस्व जमाने के प्रयास में लगे हुए हैं। यह आदिवासियों का अपने मूल निवास से शहरों की ओर विस्थापित होने का प्रमुख कारण है। इसके फलस्वरूप शहर में इन आदिवासी श्रमिकों को असमानता, पिछड़ेपन और भयानक गरीबी का सामना करना पड़ता है।

भारतीय श्रमिकों के विस्थापन के प्रारंभिक काल में उन्हें विभिन्न द्वीपों या उपद्वीपों को विस्थापित किया जाता था। ये श्रमिक गिरमिटिया या बंधुआ मजदूर के रूप में देश से बाहर ले जाए जाते थे। भारत से अनेक संख्या में मॉरिशस को श्रमिक विस्थापित हुए। उन्हें जहाजों में अन्यान्य मालों के साथ मनुष्य नहीं वरन वस्तुओं की तरह समुद्र पार अन्य देशों को बड़े ही अमानवीय ढंग से ढोया जाता

था। 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास में भारत से मॉरिशस को विस्थापित हो रहे श्रमिकों की दुर्गति को मार्मिक रूप से प्रस्तुत किया गया है। सहदेव ठाकुर जहाज में विस्थापित हो रहे श्रमिकों की हालत पर एक घटना को दुहराते हुए कहते हैं-"पहले जहाज से पहुँचे व्यक्ति ने बाद में पहुँचे एक यात्री से सवाल किया कि हम लोग तो जहाज में भेड़-बकरियों की तरह लाए गए थे, तुम कैसे आए? उत्तर मिला था-हम लोग आटे-चावल के बोरों की तरह लाए गए और गोदामों में फेंक दिए गए।"[43]

उस कालावधि में भी विस्थापन के विस्थापन एवं आकर्षण कारक काम कर रहे थे। लोग अनेक कारणों से अपना देश छोड़ने को विवश थे। "पहले जहाज ने बिहार के मजदूरों को कलकत्ता बंदरगाह से उठाया था और उन्हें समंदर पार मारीच के मॉरिशस द्वीप में जा फेंका था। तब से सत्तर वर्षों तक वह सिलसिला लगातार चलता रहा। जहाँ बेशुमार लोग देश में फैली भुखमरी, शोषण, बेकारी और जिल्लत-भरी जिंदगी से बचने के लिए अपनी मातृभूमि, अपने गाँव, अपने घरों, अपने आत्मीय जनों से विलग होकर रोटी की तलाश में निकले, वहीं कुछ लोग ब्रिटिश साम्राज्य की क्रूरता और यातनाओं से बचने के लिए देश छोड़ने को विवश हुए।"[44]

जहाज में यात्रा करते समय इन श्रमिकों को जिस प्रकार का खाना और आवास दिया जाता था उसे देखकर सहदेव ठाकुर दहल गए थे-"जो लोग कलकत्ता से यात्रा पर थे, उन्हें ऊपर डेक पर जगह दी गई थी। वे लोग गठरी और बिस्तर लिए उसी पर सोते थे। जिन लोगों ने बंबई में जहाज पकड़ा था, उन्हें चावल-दाल के बोरों के बीच पनाह दी गई थी। उनकी अपनी हालत की बोरों-जैसी ही थी। पहले ही दिन जब उन मजदूरों को खाना परोसा गया, तो सहदेव ठाकुर दहल गया था। xxx बिना पसाए चावल और उबले हुए आलू का एक टुकड़ा, वह भी अधसीझा। इसे तो जानवर भी खाने से इनकार कर देगा।"[45]

---

[43] और पसीना बहता रहा-पृ.22
[44] और पसीना बहता रहा-पृ.22
[45] और पसीना बहता रहा-पृ.23

विस्थापन की इस प्रक्रिया में देश के हर क्षेत्र और हर जाति का आदमी देश पार कर विदेश गया था। जहाज में जाते समय न तो कोई बड़े धर्म का था और न ही कोई छोटे धर्म का। फिजी में पहुँचने के बाद बाबा ब्राह्मण न रहकर एक साधारण श्रमिक बन गए थे।

"अब वे महाराष्ट्रीय देशस्थ ब्राह्मण नहीं थे, एक गिरमिटिया मजदूर थे जिसे वहाँ कुली कहा जाता था। वहाँ की भाषा में कुली का मतलब था कुत्ता और कुलियों की जिंदगी कुत्ते से बेहतर नहीं थी। नौ फुट की एक चौकोर कोठरी थी जिसमें चार कुली एक साथ रहते थे। मालिक ने मार-पीटकर काम करने के लिए कुछ सरदार रख छोड़े थे जो छँटे हुए बदमाश थे।"[46]

विस्थापित और बंधुआ बने इन श्रमिकों की अवस्था अत्यंत भयानक थी और मालिकों तथा ठेकेदारों के हाथों इन्हें अमानवीय और असह्य अत्याचार भी सहने पड़ते थे। इन अत्याचारों के बाद भी उनसे दिन में पंद्रह से अट्ठारह घंटों तक कड़ी निगरानी के अधीन काम करवाया जाता था। "सुबह चार बजे से रात आठ बजे तक काम चलता था, काम में कमी होने पर दस-पंद्रह सेर का पत्थर उठाया जाता, नरकुल की छड़ियों से पीटा जाता था। कभी-कभी जेल भी भेज दिया जाता था। जेल में देख-रेख के लिए फीजी के जंगली लोग तैनात थे जो और भी खूँखार थे। फिर वहाँ का खाना इतना खराब था कि पेट भरना मुश्किल। लोग जेल जाने से बहुत घबराते थे।"[47]

श्रमिकों के साथ इन सभी प्रकार के अत्याचारों के साथ ही ठेकेदारों या बिचौलियों का इनके साथ बेईमान एक अलग ही अध्ययन है। यात्रा के दौरान ठेकेदार इन श्रमिकों को एकत्रित कर जहाज पर चढ़ा देते थे पर इसके बाद इन श्रमिकों की हालात पर आँख उठकार भी नहीं देखते थे। उन्हें अपने हिस्से के पैसे बटोरने होते थे। यहाँ तक कि श्रमिकों की हाड़तोड़ मेहनत की कमाई से भी कुछ

[46] बेदखल-पृ.79
[47] बेदखल-पृ.79

अंश खा जाते थे। "मर्दों को साढ़े बाईस और औरतों को सवा ग्यारह रुपये तनख्वाह देने की करार होती थी, लेकिन उनमें से कुछ दलालखा जाते थे, कुछ काम न होने के बहाने बनाकर काट ली जाती थी।"[48]

अपने नियत और निर्धारित स्थान पर पहुँच कर भी इन श्रमिकों को आसानी से काम नहीं मिलता था। वहाँ भी मालिक लोग उन्हें अपने फायदे के अनुसार ही खरीदते थे और दास बनाते थे। "अट्ठाइसवें दिन जाकर जहाज फीजी टापू के तखना डीपो से लगा। एक महीना डिपो में रहे। वहाँ रोज कुलियों के व्यापारी आते थे। लोगों को चुनकर ले जाते थे। इसकी औरत उसके साथ, उसकी इसके। बिछुड़ते समय लोग रोते-कलपते थे।"[49]

लेकिन श्रमिक इसे ही अपनी नियति मान कार्य क्षेत्र में आगे बढ़ते थे।

विस्थापित हो रहे यह श्रमिक जहाँ एक तरफ अनेक प्रकार की विवशताओं के शिकार थे वहीं दूसरी ओर एक सुखद और बेहतर भविष्य की आशा उन्हें इन समस्याओं को झेलने की शक्ति प्रदान कर रही थी। "भारतीयों के हुजूम अपने देश से विदा लेकर उस अनजान द्वीप में पहुँचते रहे जहाँ उन्हें पत्थरों के नीचे से सोना मिलने की उम्मीद थी।"[50]

एक बेहतर जीवन की आशा में फिजी जा रहे उन श्रमिकों की अवस्था भी कुछ ऐसी ही थी।

"सत्ताईस दिन लगातार जहाज चलता रहा। चारों ओर पानी ही पानी। देखते-देखते मन ऊब जाता था। रह-रहकर उबकाई आती थी। कई औरतों को उल्टियाँ हो रही थीं। मन घिनाता था। बार-बार पछतावा होता था, कहाँ चले आए। आगे शायद अच्छे दिन दिखने को मिलें-सोचकर मन को दिलासा देते थे।"[51]

---

[48] बेदखल-पृ.79
[49] बेदखल-पृ.79
[50] और पसीना बहता रहा-पृ.22
[51] बेदखल-पृ.78

एक अच्छे और सुरक्षित भविष्य की आशा में पृथी और उसका पति रघु भी बिहार के एक छोटे से गाँव को छोड़कर कलकत्ता की तरफ आये थे-"उसने रघु के सामने प्रस्ताव रखा, अरे जी, सबसे अच्छा है कि हम यहाँ से भागकर कलकत्ता चलें। वहाँ पर तुम चाट लगा लेना और मैं किसी घर में काम पकड़ लूँगी।"[52]

परिस्थिति के साथ समायोजन कर लेना ही इन विस्थापित श्रमिकों का एकमात्र विकल्प बन गया था।

भारत के पारंपरिक आर्थिक संतुलन को बिगाड़कर पूँजीवाद ने इस समाज में औद्योगीकरण और शहरीकरण जैसे दो बड़े ही लुभावने स्रोतों को भारत की गरीब, भूमिहीन और बेरोजगार जनता के सम्मुख खड़ा कर दिया। इसके साथ ही अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उसने इन दो स्रोतों के साथ अनेक संभावनाओं को भी जोड़ा, जो परोक्ष रूप से उसको ही लाभ पहुँचाता है। आज पूँजीवाद इसी औद्योगीकरण के नाम पर उद्योगों व खनन कार्य के नाम पर भारत के उन जगहों पर प्रवेश ले रहा है जो विशेष कर प्राकृतिक संपदाओं से भरपूर हैं। यह क्षेत्र मूलतः भारतीय आदिवासियों का प्रारंभिक निवास क्षेत्र है। पूँजीवाद के इस प्रवेश के कारण सरकार तथा अन्य संस्थाएँ इन मूल निवासियों से उनकी जमीन छीन रही है। भूमिहीन और कर्ज के बोझ के तले दबे तथा जीवन निर्वाह के साधनों की तलाश में ये आदिवासी अपने ही क्षेत्र से प्रवसन कर रहे हैं। समाज के अन्य श्रमिक वर्ग तथा आदिवासी वर्ग शहरों तथा औद्योगिक केंद्रों की ओर आकर्षित होते हैं जहाँ रोजगार के बेहतर अवसर की संभावनाएँ होती हैं।

श्रमिकों का विस्थापन कोई नई परिघटना नहीं है। वर्तमान समय में इसे योजनाबद्ध रूप में संचालित किया जा रहा है तथा इसे मानकीकृत करने के भी प्रयास जारी हैं। विस्थापन में सबसे बड़ा भाग तथा अधिक से अधिक विस्थापन हो रहा वर्ग है-अकुशल और असंगठित श्रमिकों का वर्ग। ठेकेदार, सत्ता, राजनेता, औद्योगिक तंत्र आदि सभी के मजबूत गठजोड़ के कारण देश का श्रमिक विस्थापित

[52] पृथी की पीड़ा-पृ.12

होने के लिए अभिशप्त होता जा रहा है। एक तरफ जहाँ सरकार चुप्पी साधे बैठी है, वहीं दूसरी ओर संगठनों का इनके प्रति उदासीनता स्थिति को और गंभीरता प्रदान करती है। आज जिस अनुपात में श्रमिकों का प्रवसन हो रहा है, समय की माँग यह है कि इन्हें व्यवस्थित और योजनाबद्ध रूप से संचालित करने के लिए नियमों के पालन पर जोर दिया जाए। एक तरफ जहाँ बिचौलिए और ठेकेदारों की मनमानी पर रोक लगाना आवश्यक है वहीं दूसरी तरफ किसी भी क्षेत्र विशेष के श्रमिक संगठनों को इन विस्थापित श्रमिकों की अवस्था में सुधार लाने के लिए पहल करना चाहिए।

भारतीय श्रमिक जीवन का विविध परिप्रेक्ष्य इस बात को स्पष्ट करता है कि श्रमिक वर्ग चाहे स्त्री हो, बाल श्रमिक हो, दलित व आदिवासी तथा विस्थापित श्रमिक हो-सभी के क्षेत्र में सरकार और उसके बनाए गए अधिनियम निष्क्रिय रूप से काम कर रहे हैं और चुप्पी साधे हैं। कुल श्रम-शक्ति का एक बड़ा हिस्सा होने के बावजूद भी श्रमिकाओं को कार्यक्षेत्र में न्यूनतम सुविधाओं की उपलब्धि नहीं कराई जाती। अस्वास्थ्यकर और असुरक्षित परिवेश में कार्यरत इन स्त्रियों को दैहिक और मानसिक शोषण का शिकार होना ही पड़ता है। इसके साथ ही इनके प्रति उपयोगितावादी और उपभोक्तावादी दृष्टिकोण विकसित होने लगी है। पूँजीवादी दमन चक्र भी स्वार्थलाभ के तंत्र की ओर आकर्षित हो कर तथा गरीबी और बेरोजगारी से बचने के लिए बाल-श्रमिक जैसी अमानवीय और असामाजिक घटना में भारत अपना नाम सबसे ऊपर दर्ज कर रहा है। आदिवासियों की परंपरागत अर्थ व्यवस्था मूलतः जंगलों पर निर्भर थी। आर्थिक लाभों की पूर्ति हेतु औपनिवेशिक प्रक्रिया में सरकार और विदेशी उद्योगों ने इन आदिवासियों के प्रति अन्यायपूर्ण कदम उठाए हैं। उद्योगीकरण के नाम पर और विकास के नाम पर विभिन्न प्रकार के वन-नियमों का निर्माण किया, जो कि मूलतः पूँजीपतियों, ठेकेदारों और मालिकों के लिए लाभदायक रहा। इन सबके फलस्वरूप आदिवासी वर्गों का विस्थापन और पलायन तथा शहरी श्रमिक बनना आज समाज के लिए एक बड़ी समस्या है। श्रमिक वर्ग के हर तबके के लोगों के लिए विस्थापन धीरे-धीरे उनकी नियति बनती जा रही

है। विस्थापन जहाँ एक तरफ जनसंख्या को प्रभावित करता है वहीं दूसरी तरफ श्रम-विभाजन और श्रम-सौदाकारी (Labour Bargaining) में असंतुलन उत्पन्न करता है। लेकिन इसके लिए श्रमिक विकल्पहीन है। विस्थापन के प्रवसन और आकर्षण कारक जहाँ अपनी भूमिका निबाहते हैं वहीं बेरोजगारी और गरीबी उसे सही जमीन प्रदान करता है। इन सभी समस्याओं का समाधान या उनमें सुधार में गहरे और लंबे प्रयासों की आवश्यकता है। इस संदर्भ में श्रमिक-संगठन का दायित्व और भूमिका महत्वपूर्ण होनी चाहिए। क्योंकि संगठन, सरकार की अपेक्षा श्रमिकों को अधिक निकट से जान और समझ सकता है। सरकार ने जो भी नियम बनाए हैं वह इनके माध्यम से ही कार्यान्वित हो सकता है। परंतु राजनीति के प्रवेश, सत्ता की आकांक्षा और व्यकितगत हितों का प्रभाव इन संगठनों पर इतना रहता है कि वे अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन हैं। श्रमिक वर्ग के इन विविध क्षेत्रों की समस्याओं का समाधान और सुधार ही देश को उसके विकास के लिए एक कर्मठ और सशक्त श्रम शक्ति प्रदान कर सकता है।

* * *

षष्ठ अध्याय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : सांस्कृतिक संदर्भ और भाषा

1. त्यौहार और उत्सव
2. नृत्य-संगीत
3. रहन-सहन
4. अंधविश्वास
5. खान-पान
6. श्रमिकों की भाषा
   - 6.1 भाषा और मनोभाव
   - 6.2 श्रमिकों के गीत की भाषा
   - 6.3 लोकोक्तियाँ व मुहावरे

षष्ठ अध्याय

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में श्रमिक जीवन : सांस्कृतिक संदर्भ और भाषा

मानव सभ्यता की एकरूपता उसकी सांस्कृतिक धरोहर में निहित रहती है। सृष्टि के सभी प्राणियों में मनुष्य ही वह विवेक संपन्न और रचनात्मक प्राणी है जो अपने जीवन में संस्कृति को स्थान देता है। संस्कृति ही उसे पशु से अलग करती है। 'संस्कृति' एक व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत मनुष्य की जीवन शैली, उसका रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, नृत्य संगीत आदि सभी समाहित हैं।

संस्कृति की सुनिश्चित परिभाषा देना कठिन है। विद्वानों ने अनेक रूपों में इसकी व्याख्या की है। यह व्याख्याएँ उनके देश और काल से प्रभावित हैं। सभ्यता की तरह संस्कृति भी परिवर्तनशील है। जीवन के बाह्य परिवेश में परिवर्तन होने पर व्यक्ति, समाज अैर देश की सांस्कृतिक चेतना में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। य-परिवर्तन कभी काल की गति के अनुसार सहज अैर अनिवार्य होता है तो कभी बाहरी कारकों के अगमन के फलस्वरूप उनकी जीवन पद्धति, सभ्यता अैर संस्कृति के संपर्क में आने पर समाज या देश की संस्कृति नया रूप धारण करती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय संस्कृति अनेक जातियों की संस्कृति के संगम से विकसित हुई अैर कालक्रम में परिवर्तित होती रही है। अधुनिक युग में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव दिखाई दे रहा है। वैज्ञानिक-तकनीकी सभ्यता के आगमन के साथ संस्कृति की अवधारणा भी बदल रही है। मानवीय दृष्टि, उसके संबंध और मूल्यों के साथ संस्कृति का आंतरिक संबंध है। मनुष्य के जीवन में समष्टि चेतना, सामान्य रीति-रिवाजों का विकास, पर्व-त्यौहार, नृत्य-संगीत आदि सभी जीवन में समता

भातृत्व, समाजोन्मुखता, सुख-दुःख में सहभाव आदि सभी का विकास करते हैं। इनसे सामाजिक या समष्टिगत सांस्कृतिक चेतना विकसित होती है।

1. त्यौहार और उत्सव

हमारी परंपरा और संस्कृति ने हमें अनेक त्यौहारों को मनाने की शिक्षा दी है। यह त्यौहार प्राकृतिक या परिवेश-जनित परिवर्तनों के आधार पर भी होते हैं। श्रमिक वर्ग भिन्न-भिन्न क्षेत्रों, धर्म और समुदाय के होते हैं इन्हीं कारणों से उनके पर्व-त्यौहार भी आपस में अलग ही होते हैं। इन पर्व और त्यौहारों का पालन इन्हें सांस्कृतिक धरातल पर एक दूसरे से बाँधता है। श्रमिक वर्ग अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार अपने त्यौहारों की तैयारी करता है तथा उसमें से जीवनानंद का अनुभव करता है। दीपावली के अवसर पर क्रैशर पर काम कर रहे फुटकर मजदूर अपनी हैसियत के अनुसार इसे मनाने की तैयारी शुरू करते हैं। इनकी तैयारियाँ देख महाराज प्रसन्नचित्त हो जाते हैं। वे कहते हैं-"त्यौहार का अवसर है न ! जिससे जैसा बन पड़ा लीपपोत लिया। किसी ने गोबर से तो किसी ने पोतनी मिट्टी से। किसी-किसी ने सफेदी में नीला थोथा मिलाकर पोती है बखरी। इसी तरह किवाड़ें। तेल-पानी से चिकनी की हैं बहुतों ने और कोई-कोई उदई से रोगन तक ले आये सो ऐन रंगीन कर लिए हैं दरवाजे! अपनी अपनी आर्थिक सामर्थ्य के हिसाब से सजा-बना लिए घर।"[1]

दीवाली के इस पर्व को चुड़िहारों के यहाँ भी बड़े धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। 'मुखड़ा क्या देखे' उपन्यास में उपन्यासकार ने इन चुड़िहारों तथा गाँव के अन्यान्य श्रमिक वर्ग के बीच इस त्यौहार को मनाने के उत्साह को प्रस्तुत किया है - "फिर आ गई दिवाली। घर-घर में सफाई होने लगी कोई घर मिट्टी से पुता तो कोई चूने से। मुसलमानों ने भी अपने घरों की पुताई कराई। बच्चों ने पटाखे खरीदे।

[1] इदन्नमम-पृ.310

करमा से दो रुपए के बान और फुलझड़ियाँ बुद्धू ने भी खरीदे।"[2] पर्व-त्यौहारों को मनाने के लिए श्रमिक वर्ग धार्मिक प्रतिरोधों को नहीं मानता। इन त्यौहारों के माध्यम से ही वे सामाजिक धरातल पर एक दूसरे से जुड़ते हैं। इस उपन्यास में दशहरा पर्व को मनाए जाने के उत्साह को भी प्रस्तुत किया गया है। जैसे - "उन्हीं दिनों आा गया दशहरा। आसमान से बादल छँट गए। धरती सूखने लगी। लौकी, कुम्हड़े और सेम की लताएँ फलों - फलियों से लद गईं। ..... लोग निश्चिंत होकर रामलीला देखने लगे। नारद मोह, धनुष यज्ञ, राम बनवास और अंगद-संवाद में उन्हें बेहद मजा आया। फिर जगह-जगह दसहरे हुए। हर जगह राम-लक्ष्मण की सजी हुई चौकियाँ निकलीं। हर जगह रावण का पुतला बना।"[3]

होली पर्व के महत्व को समझाते हुए तथा उसके आयोजन की योजनाएँ बनाते हुए गोविन्द अपने साथियों से कहता है - "होलिका-दहन बुराई को खत्म करने के लिए ही होता आ रहा है। बुराई के होते खुशियाँ नहीं मनायी जा सकतीं। होली के रंगों का आनंद लेने के लिए आवश्यक रहा है कि सामने की बुरी चीजों को जला दिया जाए। .... कल फगवा है। रंगों का त्यौहार, घर-घर मिठाइयाँ पकाने और बाँटने का दिन।"[4]

श्रमिकों में त्यौहारों को मनाने की उमंग हमेशा सजीव रहती है। अपने पूर्वजों से मिली इस विरासत का पालन वे हर हाल में विधिवत करते हैं। गाँव के खेतिहर श्रमिक फूलदेई पर्व को मनाने के लिए प्रस्तुत हो उठते हैं क्योंकि यह इनके पूर्वजों की संपदा एवं संस्कृति है -"यह फूलदेई की पूर्व संध्या थी यानी चैत माह की पहली सुबह से पूर्व की संध्या। ईजा, ठुलिईजा, भौजी और काकी ने दिन में ही ताजा मिट्टी से टोकरियों को पोत दिया था। मिट्टी की सोंधी गंध हर घर को महका रही थी। ब[illegible]

---

[2] मुखड़ा क्या देखे - पृ.113
[3] मुखड़ा क्या देखे - पृ.113
[4] लहरों की बेटी - पृ.295

घर-घर में आकर जुटने लगे थे। ऐपन तैयार किया जाने लगा, जीवन कार्यकलापों की पहली शुरुआत ऐपन से करने की सीख बुजुर्ग देने लगे थे।"[5]

चाहे पर्व त्यौहार हो या शादी, भोज या मेले जैसे उत्सव श्रमिक इसमें खुलकर भाग लेते हैं। इन सभी में उनकी सामाजिक एकता और सांस्कृतिक संबद्धता नज़र आती है। शादी के अवसर पर गाँव के लोग बारातियों का हर संभव तरीके से अतिथि सत्कार करते हैं। "सरायवालों ने बारात के स्वाग-सत्कार में कोई कसर नहीं उठा रखी। जनवासे में बड़े-बड़े हौदों में बूरे का शरबत रखा था। नेवहड़ बनानेवालों के लिए लड़की, राशन, घी सब इफरात। हाथी और घोड़ेवालों को मुँहमाँगा एतिम। सारे बारातियों को सोने के लिए चारपाइयाँ दी गईं। दो-तीन गाँव के नाई-कहार और मनई-मजदूर सेवा में लगे थे।"[6] इस प्रकार कोई भी उत्सव श्रमिक वर्ग सामूहिकता की भावना से ही संपन्न करता है। शादी-ब्याह के मौके इनके लिए अपने सामाजिक जीवन और व्यक्तिगत तनाव से मुक्ति पाने का एक पर्याय है। "कोई आधे घंटे बाद ही दुलहिन की भौजी उसे घूँघट में लिये माड़ों में आ गई। सातों भाँवर और चादर के नीचे सिंदूर की रस्म पूरी होने के बाद ही मेहमानों को भोजन के लिए चटाइयों पर बिछाए जाने में दुल्हा-दुलहन के बीच खीर-खवाई पूरी हँसी-खुशी और सालियों की छेड़छाड़ के साथ पूरी हुई।"[7]

अपनी आर्थिक दुरावस्था के बावजूद भी श्रमिक अपने धर्म और आँचलिकता के अनुसार त्यौहारों और उत्सवों का पालन करते हैं तथा अपने सामाजिक व सामूहिक जीवन का आनंद लेते हैं। दैनिक जीवन की एकरसता में बदलाव लाने के लिए त्यौहार और उत्सवों का आयोजन किया जाता है। नित्य दिनचर्या से हटकर, आपसी भेदभावों को भूलकर, हर्षोल्लाास के साथ त्यौहार आदि मनाए जाते हैं। श्रमिक वर्ग भिन्न-भिन्न प्रकार के त्यौहार मनाते हैं। धार्मिक भेदभाव को भुलाकर वे एक दूसरे का साथ देते हैं।

---

[5] इदन्नमम-पृ.11

[6] बेदखल-पृ.206

[7] लहरों की बेटी-पृ.254

2. नृत्य-संगीत

सांस्कृतिक धरोहर का एक पक्ष है नृत्य और संगीत। हर सांस्कृतिक अवसर पर लोगों का गाना-बजाना अवश्य ही होता है। नृत्य और संगीत न केवल मनोरंजन के उद्देश्य से होता है बल्कि उसमें लोक-कथाओं, जीवन के अनुभव और कुछ संदेश देने की मनसा भी निहित रहती है। श्रमिकों के जीवन में नृत्य और संगीत अपना महत्व रखता है। नाच-गाकर वे अपनी समस्याओं को क्षणिक ही सही भूलना चाहते हैं। किसी विशेष अवसर या त्यौहारों पर नाच-गाने की अनुपस्थिति उसे अपूर्ण बना देती है।

गाँव में लगे मेले में बाँध-निर्माण कार्य के लिए आए ठेका-मजदूर खुलकर आनंद लेते हैं। औरतें अपने आपको सजाती-सँवारती हैं और झूमती हुई नाचती हैं। सुधीर इन श्रमिकाओं का नाच देखकर उनकी मनःस्थिति को समझने का प्रयास करता है-"उधर सामने वाला समूह आकर नाचने लगा था। सारे औरत-मर्द इधर-उधर बैठ गये थे, औरतें नाचने लगीं थीं। उनके हाथ में लकड़ी के छोटे-छोटे इन्डू आ गये थे, जिसे वे नाचते-नाचते बजाती जा रही थीं। सभी इतनी विभोर हो कर नाचती जा रही थीं, जैसे बहुत दिनों से अपने को रोके बैठी थीं, आज अवसर मिला है, मन की करके ही रहेंगी।"[8]

श्रमिक जीवन और उसकी संस्कृति में नाच का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। नाचना या फिर नाच देखना दोनों ही उनके जीवन में मनोरंजन का माध्यम है। श्रमिकों के जीवन में नाच की इस भूमिका को व्याख्यायित करते हुए लेखक कहते हैं - "जैसे धान और गेहूँ की फसल के लिए गाँवों में ऋतुएँ निश्चित थीं, उसी प्रकार नाच का भी अपना मौसम होता था। x x x । नाच यानी नौटंकी। कहीं 'सुलताना डाकू' खेला जा रहा है तो कहीं 'लैला मजनूँ'। कहीं 'दहिवाली' का खेल है तो कहीं 'खुदा दोस्त सुलतान'। ...... दर्शकों को इस बात की चिंता न होती कि मंडली कहाँ की है।

---

[8] नदी फिर लौट आई-पृ.239

उनके लिए तो बस एक ही सत्य था - नाच। तीन मात्राओं वाले इस शब्द में गाँजे की कली से ज्यादा नशा था और रसियावल से बढ़कर मिठास।"[9]

क्रैशर पर काम कर रहे श्रमिक दीपावली के शुभ अवसर पर दिबरियों को अपना नाच प्रदर्शन करने के लिए बुलाते हैं। "गहरा साँवला रंग दिबरियों का। संख्या में लगभग सोलह। विंध्याचल में बसी जनजातियों के लोग सुदूर गाँव से आए हैं नाचने के लिए। x x x सफेद धोती के फेंटे में आम के पत्ते खोंस रखे हैं। बैलों की सुरीली घंटियों का पट्टा करघनी के नीचे बँधा है। पाँवो में घुँघरू। साँवले चिकने, नंगे दमदार बदन, नाच रहे हैं, थिरक रहे हैं।

"होऽऽ! होऽऽ! होऽऽ!
दिबारी माय! लछमीऽऽ माय!
हो मोरे गनपत महाराऽऽऽज...।"[10]

अपने जीवन के तनावों और समस्याओं को भूलने के लिए श्रमिक एकजुट हो गाना-बजाना भी करते हैं। इन गानों में जीवन की रसमयता छुपी रहती है। गानों के माध्यम से एक-दूसरे को छेड़ना, अपने साथी को याद करना अथवा कभी-कभी अश्लील उपहास भी शामिल रहते हैं। बस्ती के मज़दूर अंगुरी शराब के नशे में गाते-झूमते रहते हैं-

"पोदीना बिना चटनी कैसे बनी!
गजक बिना दारु कैसे बनी
अरे बिंदिया बिना गोरी कैसे लगे!
गोरी तवा बिना रोटियां कैसे पके
हाथ घुँघरू बिना गोरिया कैसे नाचे
घघरा बिना गोरिया कैसे छमके
कैसे नाचे, कैसे छमके....।" [11]

---

[9] मुखड़ा क्या देखें - पृ.145
[10] इदन्नमम-पृ.312
[11] और पसीना बहता रहा-पृ.169

मजदूर न केवल सुखद अवसरों पर ही गाते हैं वरन् विपत्ति भरी परिस्थिति में भी गाने के माध्यम से अपने आपको डट कर रहने का साहस देते हैं। सुमेर भयावह मौसम का डटकर सामना करने के लिए हवा और लहरों के साथ ऊँचे स्वर में गाता है-

"तोरे खातिर हम ले आयबों मोती के -रवा
बाट मोर जोहना अपन असरा ने तोड़ना
न छोड़ के तू जाना सजनी मोरे अँगना
तोरे खातिर इस ले अयबों मोती के हरवा।
और ले अयबों तोरे खातिर चुटकी-भर सिंदुरवा...।"[12]

गाँव के मछुआरे होली के पर्व को पूरे हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। ढोल के ताल के साथ नाच-गा कर ही वे इस पर्व को मनाते हैं। होलिका दहन और फगवा के खेल के लिए सभी उत्साहित रहते हैं।

"कुछ ही देर बाद ढोलक और □ल पर चौताल शुरू हो गया -

होली खेले रघुबीरा, अवध में होरी.....होली....
केकर हाथ सोने की पिचकारी,
केकर हाथ होवे अबीरा।
राम के हाथ सोने की पिचकारी,
सीता के हाथ अबीरा।
होली खेले रघुबीरा, अवध में... -ोली ..... "[13]

इस प्रकार के नाच-गानों के साथ ही सभी मस्ती में झूमते हुए होली खेलते हैं।

गाँव में अकाल के बाद जब जोरों की बारिश होती है तब लोग घर-घर खुशियाँ मनाते हैं। यह खुशियाँ केवल किसान वर्ग तक ही सीमित नहीं रहता वरन् पूरा गाँव तथा अन्य जीविकाधारी श्रमिक भी इसमें भागीदार बनते हैं। इस अवसर पर चुड़िहारिन रनिया भी गाती है। एक नई चालका गीत सुनाती हुई रनिया गाती है-

---

[12] लहरों की बेटी-पृ.17
[13] लहरों की बेटी - पृ.295

"नज़र लागी राजा तेरे बंगले पर

नज़र लागी राजा .....

जो में होती राजा बन कइ कोयलिया

कुहुक रहती राजा .....

जो मैं होती राजा कारी बदरिया

बरस र-ती रा□ा ......

जो मैं होती राजा जल कई धइलिया

छलक रहती राजा ......

जो मैं होती राजा तुम्हारी दुल्हनिया

झमक रहती राजा ...... "[14]

बच्चों को रोते समय चुप कराने तथा सुलाने के लिए इस तरह के लोक गीत गाये जाते हैं। बुद्धू अपनी बेटी कल्लो को सुलाने के लिए इस प्रकार गाता है -

"अंता खंता कउड़ी पाएवें

ऊ कउड़ी घसियारा के दिहेवँ

घसियारा हमका घास दिहिम

ऊ घाँस के गइया खियाएवँ

गइया हमका दूध दिहिस

ऊ दूध के खीर पकाएवँ

सब केउ खाँए थाली में

कल्लो खाएँ प्याली में

प्याली गई फूट

कल्लो गई रूठ।"[15]

[14] मुखड़ा क्या देखे - पृ.81

[15] मुखड़ा क्या देखे - पृ.182

श्रमिक के गानों में देश की राजनीति और उसमें बदल रही परिस्थितियों की छाप भी नज़र आती है। शादी-ब्याह के अवसरों पर गाए जाने वालों गीतों पर भी इस प्रभाव को देखा जा सकता है। जैसे -

"एक दिन सखियन संग गए सैंया
चली गयी गुलजार में
नेहरूजी को गुलाब में देखा
गाँधीजी को अनार में
एक दिना सखियन संग सैंया.... "[16]

नाच-गानों के माध्यम से श्रमिक-वर्ग अपने आप को क्षणिक सुख का अनुभव कराना चाहता है। यह गाने प्रमुख रूप से लोक गीतों से ही प्रभावित रहते हैं। इनके माध्यम से श्रमिक वर्ग अपनी थकान व तनाव को मिटाने की चेष्टा करते हैं। य- सर्वमान्य है कि संगीत वह माध्यम है जो मनुष्य के अंतःमन को छू जाता है तथा उसे अवसादों से ऊपर उठने में सहायता करता है। इसके साथ ही नृत्य उसमें जीवनोल्लास के ऊर्जा को संचारित करता है।

3. रहन-सहन

श्रमिक वर्ग का रहन-सहन उनकी आर्थिक स्थिति और मानसिकता को प्रस्तुत करता है। ऐसा कहा जाता है कि लोगों का रहन-सहन उनके व्यक्तित्व और विवेक का परिचायक होता है। यह बात श्रमिक वर्ग पर पूर्णतः लागू होती है। श्रमिकों का रहन-सहन उभय सकारात्मक और नकारात्मक होते हैं। कुछ श्रमिक हर हाल में अपने रहन-सहन को स्वच्छता के साथ पालन करते हैं तथा कुछ इसकी ओर ध्यान ही नहीं देते। श्रमिकों की खोली को देख नमिता चौंक पड़ती है। उसकी सुगढ़ता उसे आकर्षित करती है। "सामान के नाम पर नज़र आई किसी साधारण कंपनी की स्टील की अलमारी। अलमारी से सटा, बैंजनी फूलों वाली स्वच्छ चादर-बिछा लोहे का

[16] मुखड़ा क्या देखे - पृ.10

पुराना पलंग। पलंग के सिरहाने तहाए रखे ये बच्ची की लंगोटियाँ, झबले, लपेटने के कपड़े।"[17]

श्रमिकों की रहन-सहन की स्थिति उनके पहनावे से भी जानी जा सकती है। किसी-किसी अवसर पर साफ-सुथरा कपड़ा, चाहे वह नया हो या न हो, उसे पहन लेना ही उनके लिए बहुत बड़ी बात होती थी। यह उनके रहन-सहन का ही हिस्सा -ोता -ै। काली जब नए कपड़े पहनकर अपने साथियों के सम्मुख आता है तो उसे सब ध्यान से देखते हैं जैसे कोई नयी घटना घटी हो-"काली ने नए कपड़े पहन अपनी संदूकची का ताला खींच पूरी तसल्ली की और कोठरी के बाहर आ गया। उसकी ओर देख सब दंग रह गए। उसने तंग मोहरी का बढ़िया लट्ठे का पाजामा और बारीक धारियोंवाली गुलाबी रंग की कमीज पहनी हुई थी और पाँव में देसी जूतों के बजाय कपड़े के सफेद बूट थे।"[18]

शादी-ब्याह के अवसरों पर वे श्रमिक जो मूलतः आदिवासी होते हैं, उनका पहनावा अपने-आप में विशिष्ट होता है। आदिवासियों की अपनी एक आदिम-संस्कृति रही है जो उन्हें विशेषता प्रदान करती आई है। भील जनजाति में विवाह (बाल्य-विवाह) के दौरान दुल्हन को विशेष रूप से सजाया जाता है। "दुलहन सामने आ खड़ी हो गयी। सात वर्षीया सिरी देवी। लाल घाघरा और उसी के संग का नन्हा-सा ब्लाउज पहने हुए, लाल धागे मं बाँधा चाँदी का तावीज गले में लटक रहा था। पाँवों में एक लड़ की पायलें। हल्दी लगे छोटे-छोटे हाथों में कचारा (काली चूड़ी), उनके साथ ही चाँदी के एक-एक बारीक कंगन। नाक में छिगुली के छल्ले भरी सोने की नथ।"[19]

गाँव में जब मेला लगता है तब बस्ती के सभी लोग सज-धज के उसमें शामिल होते हैं। उनका सजना-धजना उनकी आर्थिक अवस्था को तथा उनकी संस्कृति और पारंपरिक वेशभूषा को भी प्रस्तुत करता है। बस्ती के सभी श्रमिक

[17] आवां-पृ.108
[18] नरककुंड में बास-पृ.168
[19] इदन्नमम-पृ.235

मेले में जाते हैं और विशेषतः औरतें अपने आपको आकर्षित बनाने के लिए अपने पहनावे का पूरा ध्यान रखती हैं-"उसके बाद वाले समूह में बस्ती की लगभग सभी जवान लड़कियाँ थीं, जिनके आगे-आगे सोनी, हिरनी-सी उछलती चली जा रही थी। दमदमाते चेहरे, रंग-बिरंगी साड़ियाँ, हाथ की अंगुलियों में बंधे दो-चार घुंघरू, कसी हुई कांछ वाली साड़ी, उभरे हुए कंधे, उछलती लाल-लाल एड़ियाँ, आँखों में काजल, हाथ में पड़ी कांच की चूड़ियाँ, न जाने कौन-सा गीत गा रही थीं, उत्साह सभी के चेहरों पर छलक पड़ रहा था।"[20]

अपनी दयनीय स्थिति में भी श्रमिक वर्ग अपने घर आए अतिथियों का भरपूर सत्कार करते हैं। उनके लिए अतिथि भगवान सदृश्य होते हैं, जिसका पाठ उन्हें उनकी सांस्कृतिक मान्यताओं से प्राप्त होता है। गाँव के खेतिहर श्रमिकों के घर जब शहरों के लोग आते हैं तब वे उनका हर संभव ढंग से, हर प्रकार का जुगाड़ कर सत्कार करते हैं। "...बैठने के लिए टाट की पट्टी बिछाई गयी और सामने पीतल की थालियों में खाना परोसा गया। दाल-भात-रोटी और कटहल की तरकारी, सब एक ही थाली में। ... □से-तैसे खो□कर पीतल का एक टूटा गिलास निकाला गया।... पर संकोच में गड़े किसानों ने आश्चर्य से देखा कि लोगों ने बिना मीन-मेख निकाले प्रेम से भोजन किया।" [21]

श्रमिकों का रहन-सहन उनके सांस्कृतिक पक्ष को प्रस्तुत करता है। रहन-सहन और पहनावा बहुत मात्रा में आंचलिक वातावरण पर निर्भर करता है। उसकी आवश्यकता का प्रभाव उन पर भी पड़ा है। अतः आज श्रमिकों के रहन-सहन और पहनावे भले ही निम्न स्तर के हों पर उन पर आधुनिकता और उपभोक्तावादी संस्कृति की छाप को सहज ही देखा जा सकता है। श्रमिकों की झोपड़-पट्टियों की अवस्था चाहे कुछ भी रही हो लेकिन उनके घरों में टी.वी. और मोबाईल अवश्य उपलब्ध रहते हैं। समाज के अन्य वर्ग के लोगों के साथ रहते हुए वे अपने रहन-

---

[20] नदी फिर लौट आई-पृ.239

[21] बेदखल-पृ.113

सहन को युग-विशेष के साथ परिवर्तित कर रहे हैं। आदिवासी श्रमिकों पर भी इसका गहरा प्रभाव दृश्यमान है।

4. अंधविश्वास

श्रमिक-वर्ग अपने धार्मिक-पिछड़ेपन के कारण अंधविश्वासों से घिरा रहता है। औद्योगिक शहरों में श्रमिक बनने के पश्चात् भी वह अपने अंधविश्वासों से मुक्त नहीं हो पाते। यह अंधविश्वास उसे मूलतः पारंपरिक ढंग से ही प्राप्त होते हैं। अपने परिवारों में चली आ रही मान्यताओं और धार्मिक विश्वासों का वह खंडन नहीं कर पाते। वह उनका पालन आजीवन करता है तथा उसे अपनी अगली पीढ़ी को सौंपता है।

श्रमिक वर्ग अंधविश्वासों में इतना घिरा रहता है कि शारीरिक कष्टों तथा बीमारियों का उपचार भी वह पूजा-पाठ के माध्यम से करता है। उसे यह सब भगवान का श्राप या भूत-प्रेतों का प्रभाव लगता है। भोलू का चाचा अपनी पत्नी को खूब पीटता है। इस कारण वह दर्द से कराहती है। लेकिन बजाए उसकी दवा-पानी करने के वे इसे भूत-प्रेत का साया समझ विभिन्न प्रकार के उपाय करते हैं। हंसुली देवी सही अनुपात के दाल-चावल से खिचड़ी बना कर ले आती है और उसके माध्यम से उसका उपचार किया जाता है। "ठाकुर दिवानसिंह कोरी खिचड़ी लेकर बसंती के कमरे में गये, देखा, वह अभी जहाँ-तहाँ पसरी हुई है। वह कराह रही है अवश्य, लेकिन उसके स्वर में फर्क लगा। उन्होंने अपने मन को विश्वास दिलाया कि छल-बल को खिचड़ी देने से तत्काल आराम मिल जाएगा। उन्होंने 'कोरी खिचड़ी' भरा कटोरा कुछ बुद्‌बुदाते बसंती के ऊपर घुमाया और तेज़ी के साथ बाहर निकल गए। चंदन ने दरवाजा बंद कर दिया।"[22]

श्रमिक वर्ग इस प्रकार की परिस्थितियों में अंधविश्वासों का शिकार हो अपने ही लोगों को संकट की ओर धकेलता है। जब हरि को कुत्ता काटता है तब गाँव के लोग दवा-दारू के बजाए उसे झाड़ फूँक करने की सलाह देते हैं-"जो औरतें उसे

---

[22] आसमान झुक रहा है-पृ.85

देखने आई थीं, सभी ने कहा था कि कुत्तों का काटा हुआ है, झाड़ फूँक जरूरी है। अंजली की सास तो यहाँ तक कह गई कि पड़ोस के गाँव में कुत्ते द्वारा काटे जाने पर हर उस आदमी के सिर तक पहुँच गया था और तीन से चार दिन बाद वह चल बसा था। हरि की माँ ने तुरंत बोनोम सीरिल को खबर भिजवाई थी और वह आ गया था।"[23]

इसी प्रकार चुड़िहारिन रनिया की पोती को जब चिकन पाक्स हो जाता है तब वे उसे देवी-देवताओं का कहर मानते हैं तथा उसका कोई औषधीय उपचार न करा अंधविश्वास के शिकार बनते हैं। रनिया अपने बेटे को हिदायतें देते कहती है - "नहीं ! ई माताजी हैं बेटवा, एम्मे खाई नाँही चलत।

बैठी न रह, जाय के नीब की पताई तोड़ लियावा। अउर सुन, आज से घर में तेल-घी क कउनो चीज न बने। देख बुद्धू तुहँऊ सुन ले। जब तक बिटिया ठीक न हुई जाय, गोस-फोस न लाना घर में।"[24]

समंदर में मछली मारने जा रहे मछुआरों का यह विश्वास है कि जाते समय अगर उन्हें कोई टोक देते हैं तो मछलियाँ उनके जाल में नहीं फँसती। नदी पर जाते समय जब संतोष ग्राबियल से मछली के बारे में चर्चा करता है तब वह उसे बुरी तरह टोक देता है और कहता है- "मछुवा जब शिकार पर निकल रहा होता है तो न उससे सवाल किया जाता है और न मछली की बात की जाती है। कहते हैं ऐसा करने से मछुवे की किस्मत दिन-भर के लिए खोटी हो जाती है। मछली फँसती ही नहीं।"[25]

मछुआरों में इस अंधविश्वास का शिकार हर कोई होता है। 'लहरों की बेटी' उपन्यास में लखन की हालत भी ऐसी ही होती है-"समंदर के लिए निकलते समय धनदेव साब का मुँह देखा लेने पर वह अपने-आपको कोस उठा था। उस पर भी वह मनहूस उससे यह कह गया था कि अगर अच्छी मछलियाँ मिलें तो वह उसके घर दो किलो भेज दे। पहले तो लखन को मछुवों की इस बात पर हँसी आती थी कि समंदर

---

[23] और पसीना बहता रहा-पृ.81

[24] मुखड़ा क्या देखे - पृ.233

[25] और पसीना बहता रहा-पृ.

के लिए निकलते समय कोई न तो उन्हें टोके और न पहले से मछली की माँग कर ले। लेकिन आज वह भी यह मान बैठा था कि वैसा होने पर सचमुच मछुओं के हाथ मछलियाँ आती ही नहीं।"[26]

कभी-कभी इस श्रमिक वर्ग को परिस्थिति का शिकार बन कर भी अंधविश्वासों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। जब महीनों तक बारिश नहीं होती तब हतभागे किसान और खेतिहार मजदूर अपने आपको बेरोजगारी और आनेवाली अकाल की कु-संभावनाओं से बचाने के लिए बारिश कराने के टोटकों पर विश्वास करते हैं तथा उन्हें प्रयोग में लाते हैं। "गाँव के लड़के जमीन पर पानी डालकर, उसके कीचड़ में लोट-पोटकर 'काले माघ पानी दे नहीं तो अपना नानी दे', गाते हुए पूरे गाँव में घूम आए। सुनाई पड़ा है कि बगल के गाँव में औरतों ने आधी रात तक अंधेरे में नंगी होकर हल भी चलाया। लेकिन सारे टोटकों के बावजूद अभी तक बारिश नहीं हुई।"[27]

श्रमिक-वर्ग पर अंधविश्वासों का प्रभाव इतना रहता है कि वे अपने परिवार के लोगों की भलाई करने के लिए तथा अपने संपर्कों को सुधारने के लिए भी वे जादू-टोनों पर विश्वास करते हैं। शिवदास और उसके बेटे गोविंद के बीच मनमुटाव हो जाता है तथा शिवदास घर छोड़ काशी चला आता है। वह कुछ पाखंड बाबाओं के सामने जा पूजार्चना और जादू-टोने के माध्यम से अपने बेटे को सुधारना चाहता है क्योंकि गोविंद के व्यवहार में आए बदलाव को वह पिशाच का प्रभाव मानता है। इसलिए वह बाबा से कहता है-"रुपया तो घर पर नहीं है बाबा, शिवदान सिंह की मुद्रा में बोला, 'फिर भी जब उसके बिना काम नहीं चलेगा, कहीं से उधार लेकर भेज दूँगा-क्या करूँगा। लेकिन पिशाच तो उसे छोड़ देगा। उसकी मति लौट तो आएगी?'"[28] आर्थिक दुरावस्था के बाद भी वे लोग अंधविश्वास के दास बन इस प्रकार पाखंड बाबाओं और ओझा के फाँस में पड़ ही जाते हैं। मज़दूरों की इस

[26] लहरों की बेटी-पृ.15
[27] बेदखल-पृ.122
[28] धारा के बीच से-पृ.190

स्थिति पर अपना मत देते हुए गोविंदा कहता है कि इन पाखंड बाबाओं के प्रति वे स्त्री-श्रमिक अधिक आकर्षित होती है जिन्हें संतान ग्रहण करने में असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। "...या फिर ऐसी जवान लपकती हैं, जो माँ बनने के लिए ताबीज, गंडे बंधवाती फिरती हैं, किसी घाट पर नहीं लगीं तो नये आये बाबा जी के किनारे आकर बैठ गईं, जो मिल गया उसी को परसाद सम□ लेतीं हैं। और परसाद के लिए ही घाट-घाट घूमती हैं।"[29] इन परिस्थितियों में यह बाबा लोग भी इन स्त्री-श्रमिकों का यौन शोषण करते हैं। अंधविश्वाास के अधीन रह यह स्त्री-श्रमिकाएँ अपना डॉक्टरी इलाज न करवाकर इन्हीं पाखंडों के पास ही जाती हैं।

निराशा, अनिश्चित भविष्य और दुरावस्था वह मुख्य कारण हैं जिनके चलते श्रमिक-वर्ग अंधविश्वासों का दास बनता है। 'आसमान झुक रहा है' उपन्यास में भोला की मनःस्थिति और अंधविश्वास का एक अलग ही संबंध स्थापित हुआ है। जीवन की निराशाओं से तंग आकर भोला उन मान्यताओं पर विश्वास करने के लिए तैयार हो जाता है जिसे उसने हमेशा ही पछाड़ा था। भोला की मनःस्थिति को प्रस्तुत करते हुए लेखक लिखते हैं- "उसने पूछारी पर कभी विश्वास नहीं किया। □ब भी कोई चर्चा हुई तो वह उसे हवा देता रहा। लेकिन आज यदि पूछारी ने बसंती काकी के साथ हुई वारदात का सही-सही लेखा-जोखा वर्णित किया तो वह भी उसके श्री चरणों में जायगा और अपने अविश्वास पर प्रायश्चित करेगा। उसने मन-ही-मन ठान ली कि वह अपने भविष्य के बारे में भी सवाल करेगा कि और कितने दिनों तक वह रो□ी-रोटी के चक्कर में भटकता फिरेगा? कि कब उसे नौकरी मिलेगी? कि गाँव में कब स्कूल का कार्य शुरू होगा और वह मजदूरी कर सकेगा।"[30]

इस प्रकार देखा जाए तो श्रमिक वर्ग विभिन्न कारणों के अधीन आकर अंधविश्वासों को मानता है। उसकी संस्कृति का ही एक पक्ष है-यह अंधविश्वास। जहाँ एक तरफ धार्मिक कुरीतियाँ उसके अंतर्मन पर हावी रहती हैं वहीं दूसरी तरफ

[29] नदी फिर लोट आई-पृ.203
[30] आसमान झुक रहा है-पृ.90

वर्षों से चली आ रही मान्यताओं को वह परिस्थितिवश नकार नहीं सकता। गाँव से शहरों में आ जाने पर भी श्रमिक वर्ग अपने अंधविश्वासों और धार्मिक संकीर्णताओं को पीछे नहीं छोड़ पाता। अंधविश्वाास, किसी भी सभ्यता या समाज की संस्कृति का नकारात्मक पक्ष है जो उसे रूढ़िग्रस्त बना देता है।

5. खान-पान

खान-पान का संबंध संस्कृति और सभ्यता से अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। संस्कृति सर्वांश में जीवन का समुच्य होता है। अतः संस्कृति का अनिवार्य आधार होने के नाते खान-पान का उससे संबंधित होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि विभिन्न अंचल और परिवेशों की संस्कृतियों में पले-बढ़े लोगों की खान-पन की सामग्रियों, व्यंजनों और रुचियों में अंतर रहता है। इस प्रकार खान-पान की विभिन्नताएँ संस्कृति के निर्माण तथा विकास में सहायक होती हैं।

श्रमिक वर्ग का खान-पान अत्यंत सरल होता है। वे उतना ही खाते हैं जितने की आवश्यकता उन्हें जीवन व्यतीत करने के लिए होती है। बाँध पर काम करने वाले मजदूरों को देखते हुए सुधीर उनके सादेपन पर मुग्ध हो जाता है-"कुछ मजदूरों ने अपनी अपनी पोटली खोल ली थी। ज्वार की लाल-लाल कड़ी सेंक वाली बड़ी-सी रोटियों पर मिर्ची की चटनी अथवा किन्हीं रोटियों पर मिर्च के साथ महुए का साग और किन्हीं की रोटियों पर हरी-हरी ार-पाँच मिर्चियाँ, साबुत प्याज, किन्हीं की रोटियों पर मिर्च के साथ नमक का चूरा था। रोटियाँ किसी की लाल, किसी की काली हुई सी, कड़ी सी।"[31]

चमड़े कारखाने में काम करनेवाले दिहाड़ी मजदूर भी इसी प्रकार अपनी कमाई के अनुसार ही सादा खाना ही खाते हैं। उन्हें खान-पान के लिए तंदूरियों पर निर्भर करना पड़ता है-"तंदूरिए ने चारों रोटियाँ तंदूर में रख दी। दाल का तसला उठा दो कटोरियों में बराबर उँडेल दिया और पिटारी में बचा कटा हुआ प्याज

[31] नदी फिर लौट आई-पृ.124

थालियों में रख दिया। उसने तंदूर से रोटियाँ निकाल उन्हें झाड़ा और दोनों थालियों में रख उन्हें बंसे और काली की ओर खिसका दिया।"[32]

श्रमिक वर्ग में खान-पान की भिन्नता होने के बावजदू भी वे एक-दूसरे के साथ मिलकर ही खाना खाते हैं। खान-पान का समय उनके लिए आपसी मिलाप का समय होता है। खाना चाहे कम हो या अधिक उसे वे मिल जुल कर खाते हैं और आनंद लेते हैं-"एक-एक पराठँ खा लेते हैं। जल्दी में बन नहीं सके। कालू ने पोटली खोल दी और फिर एक-एक पराँठा सबकी हथेली पर रख दिया और ऊपर आम के अचार की फाँक टिका दी... वे आम की फाँक को चूसते हुए गाँव की याद में और भी ज्यादा डूब गए।"[33]

पर्व-त्यौहार व उत्सव ही ऐसे मौके होते हैं जब इन मजदूरों को अच्छा खाना खाने को नसीब होता है। श्रमिकों की इस स्थिति पर दृष्टि डालते हुए महाराज मंदाकिनी से कहते हैं-"मंदा, सामूहिक भोज का आनंद विशिष्ट होता है। आदमी से आदमी का विभेद नहीं रहता। सामाजिक सद्भावना बढ़ती है। प्रयोजन सार्थक है। जो गरीब मेहनती परिश्रम करने के बाद भी परब-त्यौहार पर अच्छा भोजन नहीं जुटा पाते, जो साधु-संन्यासी हफ्तों व्रत-उपवास में निकाल देते हैं, ऐसे लोगों को वह भोजन भी तो मिले, जिसे समृद्ध लोग रोज ग्रहण करते हैं।"[34]

सामूहिक भोज की विशेषता को समझ मंदा क्रैशर पर काम कर रहे मजदूरों के लिए भोज का आयोजन करती है। इस भोज में बने खाद्य और व्यंजन उन श्रमिकों के लिए अमूल्य प्रतीत होते हैं-"आलू की रसेदार सब्जी की माँग उठ रही है ज्यादा करके। अरईं का साग तो पत्तल पर ठहरता ही नहीं। पानी की तरह बह रहा है। ... बूंदी के लड्डू गहने-जेवर की तरह सुरक्षित हैं। द्वारिका कक्का कुंडली मारे बैठे हैं

---

[32] नरककुंड में बास-पृ.164
[33] नरककक्कुंड में बास-पृ.119
[34] इदन्नमम-पृ.301

वहाँ। हर पत्तल पर दो लड्डू के हिसाब से दे रहे हैं। बेईमानी का कोई काम नहीं। ... राउत-राउतिनें अंडी-बच्चा समेत आये हैं पंगत में।"[35]

अपनी आर्थिक विपन्नताओं के कारण श्रमिक जीवन निर्वाह के लिए जब जो उपलब्ध होता है उस हिसाब से खाते हैं। श्रमिकों की इस स्थिति के बारे में हरि कहता है-"इस देश में मजदूरों के सौ वर्षों के अपने इतिहास में फ्रीआपें, जिसका अर्थ रोटी फल है, लोगों को उसी तरह भूख से मरने से बचाता आया था जिस तरह श्वेत, कंद, मान्योक और मकई। मजदूरों के अपने आँगनों में अगर कंद, मान्योक, मकई और रोटीफल के पेड़-पौधे नहीं होते तो चावल-आटे के अभाव में कितने ही लोग मर गए होते।"[36]

श्रमिकों के बीच अपने पारंपरिक भोजन का बड़ा महत्व और उनके प्रति बहुत मोह रहता है। इसलिए खाना चाहे कितना भी सादा क्यों न हो अगर उनके अंचल विशेष और सांस्कृतिक रहन-सहन के अनुसार हो तो वह उसे पूरी रुचि के साथ खाते हैं। अपने गाँव से शहर में आए अली चूड़िहार की स्थिति यही है। "तामचीन की प्लेटों में कच्चे आम की फाँक पड़ी अरहर की दाल थी और गोनई यानी जौ-गेहूँ की रोटियाँ। सब्जी में चौराई का साग था। साथ में नई अँमिया का अचार। एक छोटी-सी तश्तरी में आम की मीठी चटनी भी। खाना सादा था, मगर अपने गाँव-देस का खाना खाए पूरा एक युग बीत गया था। अतः अली अहमद के लिए वह अमृत के समान था।"[37]

शहरों में रह रहे महदूरों की हालत यही थी। अपनी कमाई के अनुसार ही खाना पड़ता है। अपने घरों से दूर रह रहे इन श्रमिकों को न तो घर का खाना मिलता है और न ही अपने सांस्कृतिक तौर-तरीकों के हिसाब से खाने को मिलता है। तंदूरियों के खराब खाने पर खीजे हुए भीमे को बंसा खान-पान के महत्व को समझाता है-"रोटी क्या खाई है, जहर मार की है। भीमे ने बुरा-सा मुँह बना लिया।

---

[35] इदन्नमम-पृ.313
[36] और पसीना बहता रहा-पृ.199
[37] मुखड़ा क्या देखे-पृ.102

अन्न परमेश्वर को कभी निदंना नहीं चाहिए। बंसे ने समझाया, शुक्र है रबजी का। अच्छा न सही मिल तो रहा है।"[38]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्रमिकों का खान-पान उनकी आर्थिक स्थिति के साथ-साथ आँचलिकता पर भी निर्भर करता है।

श्रमिक वर्ग अपने सांस्कृतिक धरोहर को जीवित रखने के लिए अपने आर्थिक सामर्थ्य और सीमित साधनों के माध्यम से भरसक प्रयास करता रहता है। हे वह अपने पैतृक क्षेत्र में रहें या न रहें लेकिन अपने पर्व-त्यौहार, उत्सव का पालन अवश्य करते हैं। अवसर मिलने पर अपने नृत्य-संगीत के माध्यम से अपने जीवन के अवसाद को कम करने का प्रयास भी करता रहता है।

6. श्रमिकों की भाषा

मनुष्य के जीवन की अनुभूतियों और भावनाओं को मूर्त रूप देने का साधन है भाषा। भाषा मनुष्य के पास वह सशक्त अस्त्र है जिसके माध्यम से वह न केवल दूसरों से संपर्क स्थापित करता है वरन अपनी मनोभावनाओं को भी प्रस्तुत करता है। हमारे शब्द हमारे विचारों के परिचायक होते हैं। भाषा के उतार-चढ़ाव और प्रस्तुतीकरण से हम दूसरों की मनःस्थिति को भाँप पाते हैं। श्रमिक वर्गों द्वारा व्यवहृत भाषा मूलतः उनकी आँचलिकता से प्रभावित रहती है तथा शहरी सभ्यता से संक्रमित भी। भाषा के माध्यम से श्रमिक अपने जीवन की व्यथा को प्रस्तुत करता है।

6.1 भाषा और मनोभाव

जैसा कि यह सर्वविदित तथ्य है कि भाषा मनुष्य की मनःस्थिति को अनचाहे ही बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर देती है, अतः यही सत्य श्रमिकों पर भी लागू होती है। अपनी सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति, दयनीय अवस्था, पिछड़ापन, शोषण के अनुभव यह सभी जिस प्रकार उनकी मनःस्थिति और विचार को कुरेदती हैं वैसे ही उसकी भाषा भी बदलती है।

---

[38] नरककुंड में बास-पृ.149

अपने जीवन की निराशा और एकरूपता को श्रमिक अपनी भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करता है। शिवदास जो मूलतः धोबी है और बेगार श्रमिक बन रायबहादुर के यहाँ काम करता है, अपने जीवन के नैराश्य को इस प्रकार प्रस्तुत करता है-"वहाँ उसके चिर अभ्यस्त हाथ मशीन की तरह काम से जुड़ जाते हैं, जैसे वे उसके शरीर के अंग न हों, जैसे उनका कोई अलग अस्तित्व हो, जैसे वे किसी अज्ञात इच्छा शक्ति से प्रेरित और परिचालित हों और वह स्वयं एक मूक ओर तटस्थ दर्शक भर हों। x x x साँझ को जब वह घाट से लौटने लगता है तो उसके पैर अपने आप उसे सँभाले घर की ओर बढ़े जा रहे हैं-जैसे सूर्यास्त की सारी उदासी, सारी खामोशी, सारा दर्द उसके चेहरे पर केंद्रित हो उठा हो। और वह लौटता है हारा-थका, जैसे गधों का सारा बोझ वही ढोकर लाया हो।"[39] शिवदास के यह शब्द उसके यंत्र बद्ध जीवन की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं।

श्रमिकों का जीवन विभिन्न तानों-बानों से जुड़ा रहता है। एक का संबंध दूसरे के साथ बहुत गहरे छुपा रहता है। भोला अपने गाँव के श्रमिकों के जवीन की व्यथा और पूरी प्रक्रिया के बारे में सोचता है। उसे लगता है आर्थिक विपन्नता में जन्में और पले श्रमिकों का भाग्य उसी दिन निर्धारित हो जाता है जब वे इस धरती पर आते हैं। उन्हें अनचाहे ही श्रमिक जीवन की विषम परिस्थितियाँ विरासत में मिल जाती हैं। अपने गाँव के इन श्रमिकों पर भोला के मनोभाव इस प्रकार के हैं-"यहीं से होती है उसके जीवन की शुरुआत। और फिर धीरे-धीरे उसे गाँव की जिंदगी का बोझ इन पहाड़ों से कम नहीं लगता। उस बोझ को यहाँ ढो पाना संभव नहीं लगता और तब एक अफसोस, निराशा और घुटन के बाद लगता है टोकरी बनाने वाले शेरीराम ही उनका भाग्य निर्माता है। टोकरी बुनते समय ही जैसे बांस की खपचियों के साथ ही उसने उनके भाग्य को भी बुन दिया है।"[40]

[39] धारा के बीच से-पृ.25
[40] आसमान झुक रहा है-पृ.12

'बेदखल' उपन्यास में लेखक सुचित के माध्यम से अनेक खेतिहर किसानों की व्यथा को प्रस्तुत करते हैं-"शाम के धुँधलके में घर लौटते समय पेट खाली होता, देह थकी होती और मन निराश। पर जंगल की ओर से करोंदे, मकोय और आछी के फूलों की महक लेकर आती हवा के झोंके बरन को सहलाते तो मुँह से बरबस कभी बिरहा तो कभी भगुआ तो कभी कोई निरगुन फूट पड़ता।"[41] इसके माध्यम से लेखक खेतिहर किसानों और श्रमिकों की मनःस्थिति को प्रस्तुत करते हैं।

मनुष्य के जीवन में कभी-कभी भावनाएँ उसकी सोच पर इतनी हावी हो जाती हैं कि उस समय भाषा नहीं निरवता ही उसके बीच संचार का माध्यम बन जाती हैं। अपने भाई और माँ के बीच के मनमुटाव को दूर कर विदुला जब उन दोनों को मिलाती है तब उस क्षण भावनाओं का ज्वार ही उनकी मौन-भाषा बन जाती है। बिना कहे ही वे एक-दूसरे की बात को समझ रहे हैं। इस स्थिति को व्याख्यायित करते हुए अभिमन्यु अनत कहते हैं-"उनके बीच की लंबी खामोशी एक लड़खड़ा आई आत्मीयता का ही बोध कराती रही। शायद सभी को यही एहसास हुआ कि ऐसे क्षणों में शब्द निरर्थक होते हैं। एक दरार जो बनते-बनते अपने-आप मिट चली थी उसके कसैले एहसास से बचने के लिए बातचीत का विषय कुछ और ही रहा।"[42]

धनदेव साहब के यहाँ ठेके पर मछली मारने का काम कर रहे अनेक मछुआरों के जीवन के बारे में विदुला सो□ती है। नदी के बीच मछली मारते हुए मछली मारने की प्रक्रिया के साथ वह इन श्रमिकों के जीवन की तुलना करती है-"अंकुश बंधा धागा हिल उठा। उसे हौले से खींचकर उसने छोड़ दिया और फिर से खींचा। समझ गई कि मछली चारे को चुगने की बार-बार कोशिश कर रही है। धागे को अपने दोनों हाथों में लपेटकर वह इंतजार करती रही कि उधर से धागा तने और वह मछली को झटके से फँसाकर खींचे। ... शुरू में कठिनाई हुई, फिर बड़ी सफलता से धागा ऊपर को

---

[41] बेदखल-पृ.90

[42] लहरों की बेटी-पृ.273

आने लगा। और जब अंकुश ऊपर आ गया तो विदुला ने देखा कि वह खाल थी। चारा भी गायब था।"[43] मछुआरों को हर तरह की आर्थिक समस्याओं में फँसाकर धन देव साब ने उन्हें अपने वश में कर लिया है। दिन-रात उनके लिए मेहनत करने के बाद भी इन श्रमिकों के हाथों कुछ नहीं रहता।

मनिया लोहार की मृत्यु भोला के लिए अनेक प्रश्न पैदा करता है। उसके पास किसी के भी उत्तर नहीं हैं। न उसके पास है न ही कोई उसके मन को शांत कर पाता है। अपने इस मनोभाव को बड़े ही दार्शनिक ढंग से प्रस्तुत करता है-"सवाल का अनुत्तरित रह जाना एक भयावह सत्य था और गाँव पंचायत तथा आम ग्रामवासी की नियति भी... यदि कोई उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास करता है तो उसे कहा जाता है, वक्त बलवान होता है। हर सवाल का जवाब वक्त के पास है, वह स्वयं उत्तर दे देगा। मनिया का उनके बीच से उठ जाना कोई बड़ी बात नहीं थी। और न उसके मौत के सवाल का अनुत्तरित रह जाना। ऐसे ही कई सवाल थे जो पीढ़ियों से अनुत्तरित रह गये थे उन्हीं में एक और सवाल जुड़ गया था।"[44]

श्रमिक अपनी भाषा के माध्यम से केवल अपने दुखद मनोभावों को ही प्रस्तुत नहीं करता वरन वह अपने आक्रामक मनोभावों को भी अभिव्यक्त करता है। चमड़े कारखानों में कार्यरत कलि फोरमैन की प्रलोभनों के आगे नहीं झुकता। वह अपने साथी कर्मियों के विश्वास और अपने आत्मसम्मान को बचाए रखता है। उसकी भाषा में उसके संकल्प की दृढ़ता साफ नज़र आती है। वह कहता है-"मेरा अन्न-□ल इस कारखाने में खत्म हो गया है। यूँ समझें, हालात ने खत्म करा दिया है।" फोरमैन काली की ओर झाँका, 'तो तुम देसी घी की पूरी और घी मिला दूध पचा नहीं सके।'

'फोरमैन जी, गरीब आदमी का हाजमा तो बहुत मजबूत होता है। अगर घी और दूध में खोट हो तो उसे कैसे पचाया जा सकता है।'"[45]

---

[43] लहरों की बेटी-पृ.273
[44] आसमान झुक रही है-पृ.163
[45] नरककुंड में बास-पृ.306

अपने इस जवाब में काली मूलतः पूँजीवादी व्यवस्था और मालिकों के शासन और शोषण तंत्र को ही कोसता है। वह प्रतीकात्मक रूप से शब्दों का प्रयोग करता है।

अली अहमद अपने ऊपर हुए अत्याचार की सिफारिश लेकर नेहरू जी से मिलने जाता है। लेकिन एक आम और साधारण से चुड़िहार की बात को कोई महत्व नहीं मिलता। अली को अपनी यह स्थिति अंदर-ही-अंदर खाए जाती है। "अली अहमद पराजित हो गया था और पराजय का यह बोध उसे बाहर-भीतर से मथे डाल रहा था। ... मनुष्य की सबसे बड़ी पराजय तभी होती है जब वह अपनी दृष्टि में पराजित होता है। संसार जिसे जानता है वह संसार की भांति ही फैलकर व्यापक हो जाता है। किंतु जिसे मनुष्य अकेला ही जानता है, वह उसके एकांत में सिमटकर दुरूह हो जाता है।"[46]

भाषा की अभिव्यक्ति शक्ति मनुष्य को अपने विषादों एवं अवचेतन मन की प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत करने में सहायक बनती है। कभी प्रतीकों के माध्यम से तो कभी घटनाओं के परिणामों के माध्यम से वह अपने मनोभाव को प्रस्तुत करता है। श्रमिकों की सीधी, सरल व गहन अर्थधारी भाषा उनकी मनःस्थितियों को प्रस्तुत करती है।

6.2 श्रमिकों के गीत की भाषा

श्रमिकों के परिप्रेक्ष्य में उनके गीत अपना ही महत्व रखते हैं। एक तरफ जहाँ वह संस्कृति से जुड़ा रहता है वहीं उनकी भाषा श्रमिकों के संघर्ष, विद्रोह और उत्तेजनाओं को भी प्रस्तुत करता है। श्रमिकों के गीत और उनकी परिस्थितियों का संबंध भारतीय श्रमिक आंदोलन के दौर से जुड़ा हुआ है।

हड़ताल के समय श्रमिकों को प्रोत्साहित करने के लिए यूनियन नेता जोशीली भाषा का प्रयोग कर उन्हें आंदोलन की ओर आकर्षित करते हैं। इन गीतों की भाषा प्रभावोत्पादक होती हैं, जिनके माध्यम से वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हो उठते

[46] मुखड़ा क्या देखे-पृ.40

हैं। ‘और पसीना बहता रहा’ उपन्यास में श्रमिकों को जुलूस में शामिल करने के लिए संतोष गीत लिखता है-"

"हम चुप रहे सोते रहे, जुल्मों को सब सहते रहे
मजदूरों, लेकिन अब तो नींद से जागना है
उठो! अब नहीं सहेंगे अब नहीं डरेंगे
बढ़ो हर जुल्म से अब टकराना है
हम माटी के बेटे खेतों में खेलते
चट्टानों की छाती से गन्ने हम उगाते हैं
फिर नंगे हम क्यों रहें भूखे हम क्यों मरें
खेतों के हित मरते हैं देश के हित जीना है।"[47]

श्रमिकों का गीत ऊर्जा से ओत-प्रोत रहता है ताकि दबे हुए, पिछड़े हुए और शोषित श्रमिक इनसे अनुप्राणित हो आंदोलन की तरफ आगे आएँ।

‘कामगार अघाड़ी’ के कार्यकर्ता भी कारखानों में काम कर रहे हज़ारों श्रमिकों को उनकी स्थिति से परिचित कराते हैं और अपनी यूनियन के माध्यम से उनमें जागरूकता लाने का प्रयास करते हैं। श्रमिकों के लिए उनका गीत इस प्रकार है-

"दाल चाहिए भात चाहिए और बच्चों की शिक्षा।
है बुनियादी हक की लड़ाई, नहीं माँगते भिक्षा।"
"आज नहीं तो कल तुमको होगा देना हिसाब
पैरों तले रौंद रखे हैं, जिन ख्वाबों के ख्वाब!"
"हमसे जो टकराएगा, मिट्टी में मिल जाएगा!"
"कामगार आघाड़ी जिंदाबाद! लोकशाही जिंदाबाद!"[48]

यूनियन के नेता श्रमिकों को अपनी राजनीतिक भूमिका समझने में भी मदद करते हैं। वह उन्हें उस सरकार के विरुद्ध संघर्ष करने का आह्वान देते हैं जो उनके

[47] और पसीना बहता रहा-पृ.213
[48] आवां-पृ.92

हितों और अधिकारों की सुरक्षा नहीं करता और जो उनके उत्थान के लिए तत्पर नहीं होता। तात्कालिक सरकार के विरुद्ध श्रमिकों को सचेतित करते हुए माक्यूनिस्ट पार्टी के लोग इस प्रकार नारे लगाते हैं-

"रोटी रोजी दे न सके जो...
वो सरकार निकम्मी है
जो सरकार निकम्मी है
वो सरकार बदलनी है।
इंकलाब...
□दाबाद... जिंदाबाद।"[49]

श्रमिकों का गीत उनकी दयनीय परिस्थितियों को भी प्रस्तुत करता है। उनकी विवशता और परिस्थिति के साथ समझौता करने की विकल्पहीनता को भी प्रस्तुत करता है। सुचित गा रहा है-

"आई गवनवाँ की सारी उमरि अवहीं मोरी बारी।
साज सिंगार पिया लै आए और कहँरवा चारी।
बभना बेदरदी अँचरा पकरि के जोरत गँठिया हमारी।
सब सखियन मिलि गावत गारी।
□ई के पहुँचे नदिया किनारे देत घूँघट पट टारी।
आई गवनवाँ की सारी उमरी अबहीं मोरी बारी।"

अधंरे भविष्य के खौफ में डूबे और व्यवस्था की जकड़ में पस्त अवध के बेदखल किसान की छटपटाहट थी जिसके स्वर शाम के धुँधलके में डूबकर गुम होते जा रहे थे।"[50]

मजदूरों को मालिकों की षडयंत्रवादी प्रवृत्ति से अवगत करा उनके विरुद्ध प्रतिवाद का आह्वान करते अन्ना साहब श्रमिकों को हर समय प्रस्तुत रहने के लिए कहते हैं।

---
[49] जुलूस वाला आदमी-पृ.250
[50] बेदखल-पृ.90

श्रमिकों को हड़ताल के प्रति सदैव जागृत रहने और 'कामगार आघाड़ी' पर अपना विश्वास रखने का अनुरोध करते हैं। एक कवि की पंक्तियों को दुहराते हुए कहते हैं-

"एक कवि ने क्या सच कहा है-
चिमनियाँ हैं गर्म हमसे ही यहाँ,
पर हमारी आग पानी हो गई,
बात छोटी-थी कहानी हो गई,
जाने किसकी मेहरबानी हो गई...।"[51]

'इदन्नमम' उपन्यास में रेडियो पर बज रहे इस गीत को सुनकर मंदाकिनी बहुत प्रभावित होती है। मजदूरों की आवाज़ बना यह गीत उनमें संघर्ष की ऊर्जा को बढ़ाता है-

"हम मेहनतकश, इस दुनिया से जब अपना हिस्सा माँगेंगे।
इक बाग नहीं, एक शहर नहीं, हम सारी दुनिया माँगेंगे।"[52]

पूँजीवादी समाज में अपने अधिकारों की प्राप्ति अपने खून-पसीने की लड़ाई से ही हो सकती है। इसके लिए संघर्ष, प्रतिवाद, आक्रोश की आग और ऊर्जा को अपने आप में जलाए रखना ही होगा। आवां उपन्यास के अंत में लेखिका अवतार सिं- 'पाश' की कविता के माध्यम से संघर्ष की ओर वापसी का संदेश देती है। श्रमिक संगठन की कार्यकर्मी नमिता जो उपभोक्तावादी संस्कृति की शिकार बनती है, अंत में उसका मोहभंग होता है और वह पुनः उन्हीं श्रमिक बस्तियों में उनके संघर्ष और अधिकार की लड़ाई को अपने जीवन का लक्ष्य व उद्देश्य बनाती वापस लौटती ै। संघर्ष की सार्थकता को प्रस्तुत करता तथा नमिता को अनुप्रमाणित करता 'पाश' की कविता इस प्रकार है -

हम लड़ेगें साथी
उदास मौसम के खिलाफ
हम चुनेंगे साथी

---

[51] आवां-पृ.179
[52] इदन्नमम-पृ.217

जिंदगी के टुकड़े ।

हम लड़ेगें, जब तक दुनिया में

लड़ने की जरूरत बाकी है।

हम लड़ेगें की लड़े बगैर

कुछ नहीं मिलता ।

हम लड़ेगें की अब तक

लड़े क्यों नहीं !

जो लड़ते हुए मर गए

उनकी याद जिंदा रखने को

हम लड़ेगें साथी

हम लड़ेंगे.....[53]

श्रमिकों के गीत केवल आंदोलन या हड़ताल के लिए नहीं होते वरन उनमें फैली विसंगतियों को दूर करने के लिए भी होते हैं। श्रमिकों के बीच शराब की बढ़ती आदत को दूर करने के लिए हरि व उसके यूनियन के साथी श्रमिकों को गीत के माध्यम से इस प्रकार समझाते हैं-

"छोड़ो भाई, छोड़ो भाई छोड़ो शराब पीना

शराब पीना है शराबी बनना छोड़ो भई शराब पीना

बाल बच्चे भूखे हो रहे हैं, भई छोड़ो शराब का पीना

छोड़ो भाई, छोड़ो भाई छोड़ो शराब का पीना

शराब पीना है, जहर पीना, हाँ भाई जहर पीना

छोड़ो भाई इस जहर को छोड़ो जीते जी मरना।

शरबा पीना समझो भाई है बाल-बच्चों का खून पीना

छोड़ो भाई छोड़ो भई शराब का पीना।"[54]

---

[53] आवां - पृ.540

[54] और पसीना बहता रहा-पृ.270

इस प्रकार श्रमिकों के संदर्भ में लिखे जानेवाले गीतों के पीछे उनकी कल्याण की भावना छुपी रहती है। इन गीतों में अत्यधिक रूप से सरल शब्दों का प्रयोग अधिक व साहित्यिक शब्दों का प्रयोग बहुत ही कम रहता है। सरल भाषाओं का प्रयोग इस कारण अधिक रहता है क्योंकि यह गीत श्रमिकों के लिए होते हैं जो मूलतः अनपढ़ और अशिक्षित होते हैं। अतः गीत वेसे हो जिसे वे लोग सहजता से समझ पाएँ और उनके गूढ़ अर्थ को ग्रहण कर पाएँ। इन गीतों में देहाती शब्दों व आँचलिक भाषाओं का प्रयोग स्वाभाविक है। यह गीत श्रमिकों के जीवन की दुरावस्था को प्रस्तुत कर उन्हें संघर्ष के लिए तैयार कराते हैं। उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग बना वास्तविकता से परिचित भी कराते हैं।

6.3 लोकोक्तियाँ व मुहावरे

लोकोक्तियाँ या कहावतें किसी भाषा की संपदा होती हैं। इनके प्रयोग से भाषा में रोचकता आ जाती है तथा अभिव्यक्ति थोड़े में अधिक प्रभावशाली हो जाती है। लोकोक्तियाँ का प्रयोग किसी बात के खंडन अथवा समर्थन करने के लिए किया जाता है।यह हमारी संस्कृति का एक प्रमुख अंग है। लोकोक्तियाँ तथा मुहावरों का प्रयोग ग्रामीण परिवेश की भाषाओं में अधिक होता है। लोकोक्तियाँ सभी स्तर के लोग तथा उनकी अनुभूतियों को अपने आपमें संजोए हुए हैं। इसलिए गाँव में घर के चूल्हे-चक्की, खेत खलिहान में काम करने वाले मजदूर और किसान, गाय-बैल-भैंस या भेड़-बकरी पालने वाले तथा बढ़ई, लुहार, कुम्हार, चमार, चुड़िहार आदि सभी अपनी बातचीत की पुष्टि में लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं।

चुड़िहार अली अहमद अपने जमींदार पंडित रामवृक्ष पाण्डेय से अकारथ मार खा उनकी शिकायत करने इलाहाबाद जाता है। वह वहाँ पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिल न्याय पाना चाहता है। आनंद भवन की ओर जाने वाले रास्ते के बारे में एक पनवाड़ी से पूछता है तथा सारी घटना बताता है। लेकिन पनवाड़ी उसे वापस गाँव और सबके साथ मिल-जुलकर रहने की सलाह देता है और अपने जमींदार की शिकायत न करने के संदर्भ में कहता है - "मगर से बैर करके पानी में क्या रहा जा सकता है?"[55]

---

[55] मुखड़ा क्या देखे - पृ.40

घटनाक्रम में अली चुड़िहार बलापुर छोड़कर दूल्लोपुर जा कर रहने लगता -ै। व- अपने दलाल चाचा और अपने भतीजे को पत्र लिखता है लेकिन किसी से भी जवाब न पा कर निराश हो जाता है। व- अपने गाँव लौटकर भी नहीं जा पाता क्योंकि अपना पेट पालने के लिए उसे कोई न कोई श्रम करना ही था जिसकी अधिक संभावना दुल्लोपुर में ही थी। वह सोचता है कि पेट के लिए मनुष्य को क्या-क्या नहीं करना पड़ता। इस संदर्भ में वह कहता है - "पेट के कारन नाचत-गावत, पेटे के कारन बाजा बजावत।"[56]

जब बुद्धू की पढ़ाई बीच में ही छूट जाती है और व- अली अहमद के साथ चूड़ियों का टोकरा लिए गाँव-गाँव जाने के लिए तैयार होता है तब रनिया खुश हो जाती है। व- सो□ती -ै अपने बेटे को घर बिठा तथा सहायता के लिए दूसरों को ढूँढने की क्या आवश्यकता है। वह कहती है - "जाके आँगन बहे नदी, सो क्यों मरे पियास?"[57]

इस उपन्यास में लेखक ने अनेक लोकोक्तियों तथा कहावतों का प्रयोग किया -ै। □ैसे - 'पूरा खीर मीठा और आखिर में जाकर कडुवा', 'बिल्ली के भाग से छींका टूटा', 'जहाँ पेड़ न रूख, वहाँ रेंडै महापुरूष', '□ब अपने सोना खोटा, त परखैया के का दोस?' आदि।

'इदन्नमम' उपन्यास में लेखिका ने बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। मन्दाकिनी अपने गाँव में क्रैशरों पर काम कर रहे श्रमिकों के बीच जागरूकता फैलाना चाहती है तो गाँव के बनिए उसका उपहास करते हैं। वे कहते हैं - "कौआ भी हंस की चाल चलना सीख र-े -ैं? □ा-र-गँवार कायदे पढ़-पढ़कर चले आ र-े -ैं।"[58]

श्रमिकों की समस्याओं को दूर करने तथा उनके जीवन में सुधार लाने के प्रयास में प्रयासरत मन्दाकिनी के साहस से ठेकेदार तिलमिला उठते हैं। अभिलाख

---

[56] मुखड़ा क्या देखे - पृ.66

[57] मुखड़ा क्या देखे - पृ.123

[58] इदन्नमम- पृ.198

सिंह उसे चेतावनी देता है। श्रमिकों के प्रति उसकी सहृदयता पर कटाक्ष कर वह कहता है - "पर मरी मइया, आसो आये आँसू।"[59]

मजदूरों में संगठन और एकता का जागरण करने हेतु हरि और मूसा अथक कोशिशें करते हैं। लेकिन अनपढ़ और गरीब श्रमिकों को यह सब मूर्खों का काम लगता है। वे -रि और मूसा पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं - "चतुर मोटाईल बकरी लकड़ी चबावेल।"[60]

-रि और परकाश गन्ने के खेतों में काम कर रहे मजदूरों के विकास के लिए अनेक कार्य करना चाहते हैं। उसका प्रयास भी करते हैं लेकिन बार-बार उन्हें विफलता ही हासिल होती है। इसका कारण यह था कि कारखानों के श्रमिक उनका साथ नहीं देते थे। हरि की माँ मीठी भोजपुरी में उसे कहती है - "हिराना मरे विराना फिकिर। जिनके लिए खतरा मोलते हो वही साथ नहीं देते।"[61]

सीमा और परकाश जब अपनी खेती का आधा भाग गाँव वालों में बाँट देते हैं तब परकाश की माँ इस बात से खुश नहीं होती । अपनी आार्थिक विपन्नताओं के बावजूद भी जब परकाश ऐसा करता है तब उसकी माँ उससे कहती है - " अपन झोंपड़ी के छप्पर उजाड़वे दूसरे के घर छावे के काम कोई दानी नाही, कोई बोराईल ही कर सकेला।"[62]

गाँव के मेले में आए पाखंड बाबाओं को देख तथा उनके स्वाभावों के बारे में सोनी को समझाते हुए गोविन्द उसे उन लोगों से दूर रहने की सलाह देता है। सोनी को समझाते हुए वह अपने बुजुर्गों की कहावत को दोहराता है। वह कहता -ै - "वृक्ष जिये छाया, बुवा तिथे बाया।"[63]

जमींदार जंगबहादुर को खुश करने तथा कुछ पैसे कमाने के लिए मुंशी उन्हें बेगार पर काम कर रहे शिवदास की जमीन हथियाने का उपाय बताता है।

---

[59] इदन्नमम- पृ.198

[60] और पसीना बहता रहा - पृ.88

[61] और पसीना बहता रहा - पृ.16

[62] और पसीना बहता रहा - पृ.31

[63] नदी फिर लौट आई - पृ.203

जंगबहादुर को और अधिक उकसाने की मनसा से वह शिवदास का अपने बेटे को पढ़ाने-लिखाने के यथार्थ पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। उसका यह मानना है कि धोबी का बेटा पढ़कर क्या करेगा? शिवदास जो हरिजन है उसकी जात और जीविका पर कटाक्ष कर मुंशी कहता है - कहावत है - "नान्ह जात लत-बसले।"[64]

अपने बेटे गोविन्द के व्यवहार से दुःखी हो शिवदास गाँव छोड़ने की बात सो□ता ै। बहुत सोचने के बाद वह काशी जाने का निर्णय लेता है। उसे लगता है पवित्र धाम काशी चले जाने पर उसके जीवन की सुख-शांति लौट आएगी। क्योंकि वह काशी संबंधी कहावत से अनुप्राणित होता है। व- सो□ता ै - "काशी ! कहा है - "चना-चबेना गंगाजल जो पुरवे कर्त्तार काशी कबहुँ न छाड़िए विश्वनाथ दरबार !" [65]

शिवदास इस निर्णय के बाद काशी चला जाता है लेकिन वहाँ फैली पाखंडता और भ्रष्टाचार को देख वह हैरान रह जाता है। ढोंगी बाबा के चँगुल में फँस तथा अपने पैसे गंवाने के बाद वह इस निर्णय पर पहुँचता है कि अब वह तीरथ के फेरे में नहीं पड़ेगा वह कहता है - "मन चंगा तो कठौती में गंगा।"[66]

चमड़े के कारखाने में पहुँचने में देरी हो जाने से फोरमैन बुरी तरह सभी को डाँटता था। उस दिन जब किशना को निकलने में देरी हो रही थी तब वह अपने भय को गुस्से के माध्यम से निकालकर कभी अपने भाई को डाँटता तो कभी मक्खियों पर खफा होता। उसकी इस स्थिति पर काली टिप्पणी करता हुआ काली कहता है - "गिरी गधे से और गुस्सा कुम्हार पर ।"[67]

'बेदखल' उपन्यास में साहूकार पदारथ के ढोंगी और बेईमान चरित्र के बारे में सभी को खबर थी इस कारण गाँव के ज्ञानी और समझदार लोग पदारथ में दूर ही रहने की सलाह देते थे।

---

[64] धारा के बीच से - पृ.11
[65] धारा के बीच से - पृ.11
[66] धारा के बीच से - पृ.192
[67] नरककुण्ड में बास - पृ.216

"साधु अक्सर कहते - पदारथ के यहाँ आना-जाना न शुरू होता तभी अच्छा था - खल से न दुश्मनी भली न दोस्ती।"[68]

इस प्रकार श्रमिक वर्ग अपनी बातों की पुष्टि के लिए तथा उसे और अधिक गहन या रोचक बनाने के लिए लोकोक्तियाँ और कहावतों का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार वे अपने वार्तालापों में मुहावरों का प्रयोग करते हैं, जो उनकी भाषा में स्वतः प्रवृत्त रूप से परिलक्षित होते ैं।

लोकोक्तियाँ की तरह, मुहावरे भी भाषा का विशेष अंग होते ैं। मुहावरा वाक्यांश मात्र ही होता है तथा संदर्भोचित वाक्य में इसका प्रयोग किया जाता है। इनके बिना भाषा निष्प्राण और नीरस होती है। मुहावरों में उत्तेजना, द्वेष, स्पर्धा, निंदा, क्रोध आदि भावों की भरमार रहती है।

बाजार में खाने-पीने की अनेकानेक चीज़ें बिक रही थीं। लेकिन पैसों की तंगी के कारण अली अहमद भूख लगने के बावजूद भी उन दुकानों के पास नहीं जा पाया।

"मुँह में पानी तो आया, मगर मन मारकर वह आगे बढ़ गया।"[69]

इसी प्रकार जब अली अहमद रामवृक्ष पाण्डे की शिकायत लेकर नेहरू जी से मिलने जाता है तो रास्ते में सोचता है कि अगर जवाहर लाल जी मिल जाऐं तो "..... उस रामवृक्ष पाण्डे की खाट खड़ी कर दूँगा।"[70]

राबिया की माँ राबिया की खलील से शादी करने से इनकार करती है। अली अहमद उसे समझाने की बहुत कोशिश करता है लेकिन वह उसकी निंदा करती है तथा उसे भला-बुरा सुनाती है। अली अहमद जोश में आ □ाता ै और आ□ ी खलील की शादी करने के लिए कहता है। रनिया भी उसका समर्थन करती राबिया की माँ से कहती है - "तब तुम अपने मुँह पर कालिख मल लेना।"[71]

---

[68] बेदखल - पृ.150
[69] मुखड़ा क्या देखे - पृ.36
[70] मुखड़ा क्या देखे - पृ.38
[71] मुखड़ा क्या देखे - पृ.85

इस प्रकार मुखड़ा क्या देखे उपन्यास में सिरमाथे लेना, भूखा बंगाली भात-भात, बंगाली क्या चाहे- माछ भात, आँख बचाना, भकुटा बनाना, भोंदू बनाना जैसे मुहावरों का सहज एवं रोचक प्रयोग हुआ है।

'नरककुण्ड में बास' उपन्यास पंजाब के आसपास के इलाकों के अँचल को प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास में अनेक संदर्भगत मुहावरों का प्रयोग हुआ है। जब ज्ञानो के साथ हुए यौन-संबंध की खबर गाँव वालों को लगती है तब सब लोग काली को मारने-पीटने के लिए ढूँढते हैं। काली अपनी जान बचाकर छुप जाता है। उसे एहसास होता है कि उस गाँव में अब उसकी मदद करने वाला कोई नहीं रहा - "उसके दिल-दिमाग पर अंधेरा छाया रहता है।"[72]

बस अड्डे के श्रमिकों में सोमा को जब भूख लगती है और वह समय से पहले नाश्ता करने की बात कहता है, तब मनसुख उससे कहता है - "तेरे पेट में तड़के से चूहों ने भगदड़ मचा रखी होगी।"[73]

बरकत अपनी अच्छी कमाई होने पर काली को अच्छी सी मिठाई की दुकान पर लेजाकर दूध-जलेबी खिलाता है मनसुख बरकत पर अनजान लोगों पर पैसे लूटाने पर कटाक्ष करता है तथा झल्ला जाता है। इस प्रतिक्रिया पर बरकत उससे कहता है - "मेरे मुँह से कुछ और निकल गया तो तू आग-बबूला होगा।"[74]

बजार में रेढ़ा खींचने का काम कर जब काली और उसके साथियों को बेहद प्यास लगती है तब वे एक धर्म स्थान पर बनी प्याऊ से मुफ्त में पानी पीने जाते हैं। डेढ़ बाल्टी पानी एक ही साँस में पी जाने के बाद वहाँ बैठा बूढ़ा आदमी बुदबुदाता है - "डेढ़ बाल्टी पानी पी गए और यूँ हाथ झाड़ते चल दिए जैसे ताऊ का प्याऊ हो।"[75]

चमड़े कारखाने में काली का मजाक उड़ाते और बातचीत करते कुछ श्रमिक एकजुट हो जाते हैं। लेकिन अगले ही क्षण वहाँ से हट जाने की सोचते हैं क्योंकि जब

---

[72] नरककुण्ड में बास - पृ.7
[73] नरककुण्ड में बास - पृ.26
[74] नरककुण्ड में बास - पृ.68
[75] नरककुण्ड में बास - पृ.97

भी वे इस तरह एकजुट हो खड़े होते हैं तो फोरमैन को उन पर शक होने लगता है। किरपू सलाह देता हुआ अपने साथी मजदूरों से कहता है - "...... उसे शक होने लगेगा कि जरूर दाल में कुछ-न-कुछ काला है।"[76]

'आसमान झुक रहा है' उपन्यास में हँसुली देवी मनिया लुहार को देख आनंदित और मुग्ध हो जाती है। अंधविश्वासों के प्रभाव के कारण हँसुली देवी अपने ही बेटे को जीवित रखने के लिए केशों लुहार, जो एक हरिजन था, उसे सौंप देती है। लेकिन जब भी मनिया को देखती उसका पूरा मातृत्व उभरकर बाहर आता - "मनिया को पल-पल बढ़ते देख-सुनकर हँसुली देवी की खुशियों का आर-पार न रहता।"[77]

भट्टी पर आग के सामने काम करते समय मनिया की स्त्री गोपुली का चेहरा एकदम लाल -ो [illegible]ता और बहुत सुन्दर दिखता। मनिया उसे निहारता ही रहता। मंत्रमुग्ध सा। इसपर भोला उससे खूब छेड़खानी करता। वह मनिया की तंद्रा को तोड़ते हुए उससे कहता -ै - "मनीदा, ऐसे देखा न करो, अपनी ही नजर खा जायेगी भौजी को।"[78]

गाँव का प्रधान घरेलू झगड़े के कारण अपनी पत्नी को भयानक गालियाँ देता -ै और उतने पर ही शांत न होकर उसे डंडे से खूब पीटता -ै। प्रधान के इस अमानवीय व्यवहार के कारण - "प्रधानी बुक्का फाड़कर रोने लगी।"[79]

मनिया लोहार को अपने पुश्तैनी धंधे में कमाई नहीं होती। अवस्था इतनी खराब हो जाती है कि उन्हें ठीक से खाने को भी नहीं मिलता। मनिया गोपुली से कहता -ै-"दोनों इसी काम पर मरते-खटते रहे तो पेट की आग बुझ नहीं सकेगी।"[80]

इस प्रकार इस उपन्यास में हथिया लिया, धौंस जमाना, आगबबूला होना, आसमान फट पड़ना जैसे मुहावरों का प्रयोग हुआ -ै।

जब तारा लखन से अपने गहने बेच नयी नाव बनाने के लिए कहती है तो लखन साफ मना कर देता है। वह लखन से पूछती है कि क्या वह उसके मर जाने के

---

[76] नरककुण्ड में बास - पृ.168
[77] आसमान झुक रहा है - पृ.16
[78] आसमान झुक रहा है - पृ.18
[79] आसमान झुक रहा है - पृ.150
[80] आसमान झुक रहा है - पृ.152

बाद भी नयी नाव नहीं बनवाएगा। इस पर लखन उदास हो उठता है और तारा को डाँटते हुए कहता है - "यह कैसी ऊटपटाँग बातें करने लगी हो?"[81]

धनदेव साहब जब मछुआरों की खाली या अधखाली टोकरी देखता तो व- उनकी समस्या या कारणों को जानने की बिल्कुल भी कोशिश न करता। उसके लिए उसका लाभ ही सबसे बड़ी चीज़ है। "धनदेव साब उसे खाली या अधखाली टोकरी के साथ पाता तो खूब खरी-खोटी सुनाता था।"[82]

शांति से प्रतिशोध लेने के लिए धनदेब साब गाँव भर में उसके नाम पर य- अफवाह फैलाते हैं कि वह उनके घर से गहने चुरा कर भाग गयी -ै। झुमकी काकी पनघट पर हो रही इस अफवाह की चर्चाएँ सुनकर आती -ै। □ब व- य- सारी बातें गौतम और शांति को सुनाती है तो वे कोई प्रतिक्रिया नहीं दे पाते। "झुमकी जो बात दोनों को बता गई थी, उससे दोनों को जैसे काठ-सा मार गया था।"[83]

विदुला सालों बाद फौज से लौट रहे अपने भाई जीवनदत्त के स्वागत के लिए बंदरगाह पर जाती है। टोलियों के बाद टोलियाँ जहाज से उतरती हैं, परन्तु अपने भाई को न देख पाने की बेचैनी उसमें बढ़ने लगती है - "विदुला की बेचैनी का बाँध टूटता जा रहा था।"[84]

'धारा के बीच से' उपन्यास में लेखक ने विभिनन संदर्भों में मुहावरों का प्रयोग कर उसे और सार्थक बनाया है। मुंशी और जमींदार अपनी आर्थिक स्थिति को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए गुण्डों की सहायता से अनुपस्थित शिवदास की पूरी-की-पूरी फसल काट लेते हैं। शिवदास जमींदार के यहाँ बेगार पर काम करता था। जब उसकी फसल काट ली जाती हे तब पूरा गाँव वहीं उपस्थित रहता है। पर कोई कुछ नहीं बोल पाता। इस स्थति का ब्यौरा देते हुए मोहन गोविन्द से कहता है - "कोई कुछ न कर सका। किसी के मुँह में ज़ुबान नहीं थी।"[85]

---

[81] लहरों की बेटी - पृ.19
[82] लहरों की बेटी - पृ.20
[83] लहरों की बेटी - पृ.112
[84] लहरों की बेटी - पृ.128
[85] धारा के बीच से - पृ.55

अपने बुरे समय में गोविन्द की सहृदयता देख मुंशी का उसके प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है। उसे और उसके पिता को नान्ह कह कर न जाने उसने उनकी कितनी बेईज्जती की होगी। गोविन्द की मदद और सुव्यवहारों को देख मुंशी पश्चाताप करता है और कहता है - "बड़ा आदमी वही है जो अपने पसीने की कमाई खाता है।"[86]

तस्करी के काम में लिप्त जमींदार साहजी कभी अपने श्रमिकों को सही समय पर वेतन न देते। अंत में पुलिस उनहें पकड़ लेती है। इस घटना पर टिप्पणी करते हुए वैदजी कहते हैं - "सारी कमाई चली गई और इज्जत भी धूल में मिल गई।"[87]

मज़दूरों को उनके वोट की महत्ता समझाते हुए तथा सही व्यक्ति को चुन कर अपना प्रतिनिधि बनाने का परामर्श अध्यक्ष जी अपने भाषण में देते हैं। वोट देने से पहले वे श्रमिकों को इस बात की परख कर लेने को कहते हैं कि - "जिसे आप अपना वोट देने जा रहे हैं, वह भेड़ की खाल ओढ़े भेड़िया तो नहीं।"[88]

लोकोक्तयों और मुहावरों के माध्यम से कम में अधिक बात कही जा सकती है। इनका प्रयोग सांकेतिक अर्थ को प्रस्तुत करने के लिए अधिक किया जाता है। लोकोक्तियाँ और मुहावरे लोक प्रवृत्ति के दर्पण होते हैं अतः वाक्यों में इनका प्रयोग माधुर्य, चमत्कार, विशाद, ओज लाने के लिए किया जाता है।

श्रमिक जीवन का सांस्कृतिक पक्ष अनेक विविधताओं से भरा है। उनका रहन-सहन, उनके पर्व-त्यौहार, खान-पान, नृत्य संगीत सभी पर संस्कृति का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। संक्रमण के इस दौर में श्रमिक वर्ग भी अपने सांस्कृतिक धरोहरों से दूर हो गया। उपभोक्तावादी संस्कृति और बाजारवाद के बढ़ते वर्चस्व के परिणामों ने जिस अपसंस्कृति को जन्म दिया है उससे श्रमिक वर्ग अछूता नहीं रहा। उसके खान- पान, रहन-सहन, व्यवहार में बहुत प्रकार के आधुनिक परिवर्तनों की उपस्थिति को परिलक्षित किया जा रहा है। द्वंद्व यह है कि एक तरफ जहाँ वह बाजारवाद के आकर्षण में घिर रहा है, वहीं दूसरी ओर धार्मिक अंधविश्वासों से पूरी

86 धारा के बीच से - पृ.101
87 धारा के बीच से - पृ.199
88 धारा के बीच से - पृ.205

तरह मुक्त नहीं हो पाया है। श्रमिक वर्ग की संस्कृति और भाषा पर आधुनिकता और शहरीकरण की गहरी छाप पड़ रही है।

* * *

उपसंहार

आज का समय वैश्विक पूँजीवाद के वर्चस्व का समय है। पूँजीवाद का आधार केवल पूँजी ही न होकर उसके मुनाफों और विकास के लिए कार्यरत श्रम और श्रमिक भी है जिसने इसे ठोस आधारशिला प्रदान की। भूमण्डलीकरण, सूचना-प्रौद्योगिकि का विकास, उपभोक्तावादी संस्कृति का आगमन - ये सभी इस वैश्विक पूँजीवाद के ही आधुनिक पर्याय हैं। भारत में पूँजीवाद के आगमन ने उसके पारंपरिक आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था पर क्रूर प्रहार किया इसके फलस्वरूप भारत के किसान और शिल्पकार इसके अधीन अपने श्रम को बेचने के लिए विवश होते गए। समयक्रम में उद्योगों की स्थापना, उसमें मशीनों का प्रयोग, बढ़ती बेरोजगारी, निबटतम गरीबी आदि सभी घटनाएँ अपनी भूमिका निभाते हुए भारत के श्रमिक वर्ग को उसका स्वरूप और अस्तित्व प्रदान करने में सहायक बने। भारत के भूमिहीन किसान और बेरोजगार शिल्पकारों की अगली पीढ़ी ही भारत का श्रमिक वर्ग बना। भूमण्डलीकरण के इस दौर में वह आज भी अपने अधिकारों की लड़ाई के लिए संघर्षरत है।

'श्रमिक' शब्द एक व्यापक संकल्पना है। अलग-अलग विषयों में इसके संदर्भगत अर्थ को ग्रहण किया गया है। इस शब्द को 'कामगार', 'मजदूर', 'मेहनतकश' जैसे पर्याय भी मिले हैं। मार्क्स ने इसे 'सर्वहारा वर्ग' का नाम दिया। मूलरूप से श्रमिक वही है जो अपने श्रम को बेचता है। जो व्यक्ति श्रम की चेष्टा या श्रम का कार्यान्वयन कुछ पाने के उद्देश्य से करता है, ताकि अपना जीवन निर्वाह कर सके तथा अपनी मौलिक आवश्यकताओं की आपूर्ति कर पाए श्रमिक कहलाता है। श्रमिक-वर्ग के अंतर्गत कारखानों के मजदूर, शिल्पकार व बुनकर, घरों में काम करने वाले नौकर, खदानों के श्रमिक, निर्माण-कार्य में लगे श्रमिक, बंधुआ-श्रमिक, ठेका मजदूर, दिहाड़ी मजदूर आदि सभी आते हैं। अर्थशास्त्र में उत्पादन के मूल्य में

श्रम की भागीदारी के अनुसार श्रमिक को कुशल तथा अकुशल श्रमिक के रूप में बाँटा गया है। देश की श्रम-शक्ति का 80 प्रतिशत अकुशल श्रमिक ही है। शोधकार्य में श्रमिक से तात्पर्य इसी अकुशल श्रमिक वर्ग से ही -ै □ा मूलरूप से असंगठित भी है।

भारत में श्रमिक वर्ग का उद्‌भव और विकास अपने आप में इतिहास को समेटे हुए है। अंग्रेजों के साम्राज्य-विस्तार तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी के उपनिवेश के साथ पूँजी के आगमन से ही इस वर्ग को धीरे-धीरे उसका स्वरूप प्राप्त होता गया। भारत की ग्रामीण आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था में असंतुलन, पूँजीवाद के बढ़ते वर्चस्व तथा उद्योगों की स्थापना जहाँ एक तरफ पूँजी को बढ़ावा दे रही थी व-ीं दूसरी ओर भारत का श्रमिक वर्ग भी पूर्ण रूप से उभर कर सामने आ रहा था। कम लागत में अधिक मुनाफा कमाने के स्वभाव के कारण पूँजीवाद श्रमिकों से न्यूनतम मजदूरी पर अधिक से अधिक काम करवा रहा था। अपने वर्चस्व और आतंक को बनाए रखने के लिए उसने श्रमिकों पर अकथनीय अत्याचार भी किए। अपनी आर्थिक परिस्थितियों से त्रस्त तथा बेरोजगारी की मार सहता हुआ श्रमिक इन शोषणों को मूक हो सहता जाता था। वैश्विक फलक पर रूसी क्रान्ति की सफलता तथा भारत में मार्क्सवादी विचारधाराओं का प्रवेश इस वर्ग में वर्ग-संघर्ष की भावना को जगाता है। अपनी समस्याओं के प्रस्तुतीकरण हेतु तथा कुछ सहुलियतों को पाने के लिए छुट-पुट हड़तालों के माध्यम से ही इस वर्ग का संघर्ष आरम्भ हुआ। श्रमिक संगठनों की अवधारणा इसी दौर में सामने उभर कर आई। इन संगठनों ने जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता के आधार पर बँटे श्रमिकों को इन सीमाओं से ऊपर उठा उन्हें एकता के सूत्र में बाँधने का भरपूर प्रयास किया। इन संगठनों की उपस्थिति के साथ ही श्रमिकों की हड़तालें, चाहे सफल हो या विफल, विद्रोह और संघर्ष का रूप धारण करने लगीं। देश का शासन तंत्र और पूँजीवाद इससे डगमगाने लगा। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन की हवा श्रमिकों में संघर्ष करने की ऊर्जा को और तेज करता गया। अंततः भारत का श्रमिक आंदोलन अपने विकास और प्रक्रिया का रूप धारण करने लगा।

हिन्दी साहित्य में श्रमिक जीवन पर रचनाओं का आरम्भ देश में मार्क्सवादी विचारधाराओं के आगमन के साथ ही दृष्टिगत होता -ै। 'नवयुग', 'रूपाम्भ', '-ंस', 'जागरण', 'जनशक्ति' जैसे अग्रणी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही इस वर्ग पर लेखन-कार्य आरम्भ होता है। हिन्दी साहित्य का प्रगतिवादी युग पूर्ण रूप से देश के सर्वहाराओं की व्यथा-कथा को लिपिबद्ध करता रहा। उस समय के लगभग सभी कवि, निबंधकार, उपन्यासकारों की रचना ने श्रमिक वर्ग की समस्याओं का चित्रण और पूँजीवाद के शोषण तथा इसके फलस्वरूप समाज को प्रभावित कर रहे संकट-तत्वों की ओर संकेत करते हुए मुक्त स्वर में रचनाएँ की। यशपाल, दिनकर, भगवतीचरण वर्मा, डॉ. रामविलास शर्मा, रांगेय राघव, जगदीशचन्द्र, भगवतीचरण वर्मा आदि रचनाकारों के उपन्यासों में श्रमिक जीवन, उनकी समस्याओं, अधिकारों के लिए उनके विद्रोह व संघर्ष, संगठनों की भूमिका जैसे विषयों को मुख्यधारा में रखकर या कहें कि उपन्यास की कथावस्तु बनाकर रचनाएँ होने लगीं। साहित्य का विषय समाज के परिवर्तन के साथ ही बदलता है। अतः मार्क्सवाद की निष्क्रियता और बहुत हद तक राजनैतिक विफलताओं के कारण साहित्य में भी इस वर्ग को पृष्ठभूमि पर धकेल दिया गया। सत्तर के दशक के अन्तिम समय तक इस वर्ग पर रचनाएँ होती रहीं, लेकिन अस्सी और नब्बे का दशक जो देश में भूमण्डलीकरण और आधुनिकता के दौर का समय था उस समय का साहित्य इस वर्ग के प्रति मौन धारण किए हुए है। अन्तिम दशक (वर्ष 1991 से लेकर वर्ष 2000 तक) का साहित्य अधिक-से-अधिक विमर्शवादी साहित्य रहा और मुख्यधारा से जुड़ने की ललक इसे विषय केंद्रित बनाती गयी। हर युग का साहित्य उसकी सामाजिक समस्याओं और बदलाव को प्रस्तुत तथा मुखरित करता है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में सूचना-प्रौद्योगिकि के उत्तरोत्तर विकास तथा पूँजी के खुले आवाजाही के चलते, समाज के इतने बड़े हिस्से, उसके श्रमिक वर्ग के लिए उस दौर का उपन्यास साहित्य इतना उदासीन क्यों प्रतीत होता है आदि को दृष्टि में रखकर शोध कार्य के

लिए इस समयावधि के उन्हीं उपन्यासों का चयन किया गया है जिनमें श्रमिक जीवन, उनकी समस्याएँ, उनका संघर्ष आदि को मुख्य विषय बना रचना की गई है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में श्रमिक जीवन को शोषण व संघर्ष एक तरफ जहाँ पूँजीपतियों के शोषण के विभत्स रूप को प्रस्तुत करता है वहीं दूसरी तरफ शोषण से मुक्ति पाने के लिए श्रमिकों के निरंतर संघर्ष को उपस्थित करता है। पूँजीपति नामक शोषक वर्ग ने पूँजी एवं क्षमता के आधार पर श्रमिकों का अकथनीय शोषण किया है। सर्वहारा वर्ग से उसकी श्रम-शक्ति को हर संभव रूप में प्राप्त करने के लिए पूँजीपति वर्ग मानव से दानव बनता गया। पूँजीपति वर्ग जमींदारों या साहूकारों की भाँति शोषितों को प्रत्यक्ष रूप से कोई शरीरिक कष्ट नहीं देता, वरन् मानसिक-स्तर पर उनके हृदय पर अपने शोषण के आतंक को जमा धीरे-धीरे उसे खोखला बनाता जाता है। पूँजीपतियों का व्यवहार श्रमिकों के अस्तित्व को झकझोर कर ही रख देता है। उन्हें लगता है मजदूर वर्ग अपनी समस्याओं के समाधान की कोशिश स्वयं न कर मालिकों के पास भागे-भागे आ जाते हैं। 'नरककुण्ड में बास' उपन्यास में चमड़े के कारखाने में काम कर रहे निहाल को जब अपनी पत्नी के इलाज के लिए कुछ पैसों की जरूरत रहती है और वह फोरमैन से सहायता माँगता है तो वह उसे गालियाँ दे वहाँ से निकाल देता है। 'इदन्नमम' उपन्यास में क्रैशर का ठेकेदार अभिलाख सिंह अपने श्रमिकों को दवा के लिए पैसे न देकर शराब पी काम करने की सलाह देता है। ऐसी परिस्थितियाँ जहाँ मानव-धर्म को जीवित रखने के लिए अपरिचित व्यक्ति भी दूसरों की सहायता करता है वहीं पूँजीपति स्वयं अपने ही मजदूरों की पीड़ा एवं असहायता का प्रत्युत्तर अमानवीय व्यवहारों से देता है। इस प्रकार के व्यवहार ही शोषक वर्ग के शोषण की प्रतिछवि को प्रस्तुत करते हैं। दरअसल मनुष्य पर जब अपना स्वार्थ सिर चढ़कर बोलने लगता है तब वह मनुष्यता को किनारे फेंक सिर्फ अपने लाभ की चिंता ही करता है। मजदूरों के बीच की एकता को भंग कर उनमें अलगाव भाव पैदा करने में पूँजीपतियों को अपना लाभ दिखता है क्योंकि जब एकता ही नहीं रहेगी तो विद्रोह

या संघर्ष कहाँ पनपेगा। 'धारा के बीच से' उपन्यास के जंगबहादुर, 'इदन्नमम' का अभिलाख सिंह, 'नदी फिर लौट आई' का माधो व अन्य ठेकेदार, 'नरककुण्ड में बास' का फोरमैन, 'सोनबरसा' के बालेश्वर चौधरी, 'लहरों की बेटी' के धनरेव साब तथा 'और पसीना बहता रहा' में गन्ने के खेतों के मालिक पूँजीपति वर्ग की इन प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय श्रमिक वर्ग के परिप्रेक्ष में बिचौलियों की अपनी ही भूमिका रही है। अंग्रेज शासन काल में ये बिचौलिये दलाल के रूप में थे जो किसानों और शिल्पकारों से लगान की वसूली हर हाल में करते थे। ये पूँजीपतियों के प्रतिनिधि तो बन गए लेकिन श्रमिकों के हितैषी कभी नहीं बन पाए। भारत में पूँजीवाद के शुरूआती दौर के यही बिचौलिये या दलाल ही भविष्य के देशी पूँजीपति बने। 'नदी फिर लौट आई' उपन्यास का माधो बिचौलियों की इस स्थिति को प्रस्तुत करता है। भारत के विस्थापित तथा बंधुआ मजदूर वर्ग के निर्माण और दुर्दशा में इस बिचौलियों की प्रमुख भूमिका रही है। 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास का सोमु ठेकेदार बिचौलियों की इस भूमिका को प्रस्तुत करता है।

शोषण की समष्टिगत प्रतिक्रिया ही संघर्ष है। संघर्ष जीवन को गतिशीलता प्रदान करता है। मानव जाति के प्रारम्भिक इतिहास से लेकर सभ्यता की प्राप्ति तथा व्यक्ति का अपने जीवन गठन की प्रक्रिया से लेकर अधिकारों की पहल-सभी के मूल में संघर्ष विद्यमान है। समय में बदलाव आने के साथ ही श्रमिक वर्ग पूँजीपतियों के शोषण चक्र को समझ पाता है। वह उनके अत्याचारों के विरुद्ध अपनी अस्मिता की रक्षा तथा अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष कर उठता है। भारतीय श्रमिक वर्ग में संघर्ष करने की मनोभावना बहुत देर से आई। इस वर्ग की असहनीय गरीबी और पिछड़ापन इसका कारण तो था ही, साथ ही अपनी दयनीय स्थिति को वह अपना भाग्य मान बैठा था। उसका पिछड़ापन, उसकी मानसिक स्थिति उसे आत्मपीड़ा की ओर ले जा रही थी। इस कारण वह संघर्ष या विद्रोह से दूर ही रहता था। उनके जीवन की विवशता उन्हें परिस्थिति और भाग्य के साथ समझौता करने के अलावा

और कोई विकल्प नहीं देती। श्रमिकों की इस विवशता को चमड़े के कारखाने के नरक रूपी वातावरण में काम कर रहे श्रमिकों के माध्यम से तथा क्रैशरों पर काम कर रहे फूटकर श्रमिकों की दुरावस्था के माध्यम से देखा जा सकता है। शोषण की यह स्थिति हमेशा नहीं रहती। जैसे-जैसे पीढ़ियों का अंतर होने लगा तथा उसे अपनी नियति, परिस्थिति और भविष्य की अनिश्चितता सताने लगी। वह जागरूक होता गया। जागरण की इस वर्गगत चेतना में वह अपनी दशा और स्थिति को समझता है। यह चैतन्य ही उसे शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की शक्ति और ऊर्जा देता है। श्रमिकों के बीच जागरण और एकता का आगमन परस्पर अनुकूल शक्ति के समागम की भाँति ही आया। आक्रोश को संघर्ष के चेतनामयी साहस का प्रथम चरण कहा गया है। युवा श्रमिकों के बीच संघर्ष के लिए इस आक्रोश का जन्म लेना उन्हें पूँजीवादी तंत्र के शोषण के विरुद्ध पूरे आत्मविश्वास के साथ खड़ा करता है। 'नदी फिर लौट आई' उपन्यास का गोविन्दा ऐसा ही युवा श्रमिक है, जो माधो जैसे ठेकेदारों से हर संभव लड़ाई लड़ने के लिए तैयार है तथा सभी को प्रोत्साहित करता है। एकता, जागरण, आक्रोश इन सभी के समन्वय से श्रमिक वर्ग विद्रोह करता है। वह पूँजीवाद के तानाशाही के विरुद्ध तथा अपने अस्तित्व को संकटरहित करने के लिए संघर्ष शुरू करता है। इस पूरे घटनाक्रम में श्रमिकों का संगठित रूप उभर कर आता है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यासों में श्रमिक जीवन और उसके संगठन की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। भारत में संगठन की संकल्पना औद्योगिक विकास की देन है। यही कारण है कि भारतीय श्रमिक वर्ग इस संकल्पना से बहुत विलम्ब से ही जुड़ा। संगठनों का मुख्य उद्देश्य श्रमिकों को एकत्रित कर उनकी समस्याओं को पूँजीपति-वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत करना है। एक लम्बे समय के अंतराल के बाद जब श्रमिक संगठित होते हैं तब वे संगठित रूप से संघर्ष करते हैं। संगठन की शक्ति उसके श्रमिकों की एकता, मनोबल और सर्वोपरि संगठन पर विश्वास और आस्था से है। श्रमिकों का संगठित रूप उन्हें हड़ताल करने के लिए

प्रोत्साहित करता है। श्रमिकों के संकल्पबद्ध संगठित रूप तथा हड़तालों में भागीदारी को 'और पसीना बहता रहा' उपन्यास प्रस्तुत करता है। अनपढ़, अज्ञान और पिछड़े हुए श्रमिकों को हर संभव तरीके से संगठित करने के उत्साह को 'इदन्नमम' और 'बेदखल' उपन्यास में देखा जा सकता है। संगठन एक शक्ति है और क्रांति भी। लेकिन जब उसमें अवसरवादीता और सत्ताधिकार की ललक प्रबल हो उठती है तो वह अपने संकल्प से दिग्भ्रमित -ो □ाता -ै। श्रमिक उसके लिए राजनीति के खेल का मोहरा बन जाते हैं। संगठन के इस नकारात्मक पक्ष और अन्नासाहब जैसे अवसरवादी श्रमिक नेताओं का सजीव चित्रण 'आवां' उपन्यास में मुखरित हुआ है। आज संगठन अपने आपमें ही एक नकारात्मक सोच को प्रस्तुत कर रहा है। श्रमिकों के अधिकार और सुरक्षा के लिए कटिबद्ध उसका सुरक्षा कवच, संगठन जब पूँजीपतियों के हाथों की कठपुतली बन जाता है तब उसके वैचारिक पक्ष और सामाजिक छवि का पतन होता है। वास्तव में श्रमिक संगठनों का वर्तमान रूप य-ी -ै। न ही वह लाखों संख्या में बिखरे अकुशल श्रमिकों को एकत्रित कर पाने में सफल हो पायें हैं और न ही उनके विकास में कोई योगदान दे र-े -ैं। संगठन में राजनीति का प्रवेश इसे और अधिक भ्रष्ट और लोलुप बनाता □ा र-ा -ै। मारूती कम्पनी के श्रमिक तनावों में संगठन का प्रबंधन के साथ गठजोड़ आज भी सभी की स्मृति में ताजी -ै। स्वार्थी हड़तालें, तालाबंदी, चक्काजाम आदि संगठन की प्रवृत्तियाँ बनती □ा र-ी -ैं। आदिवासी क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रवेश में भी संगठन अपनी ही राजनैतिक भूमिका निभा रहा है और व्यक्तिगत लाभ को भोग रहा -ै। वर्तमान वैश्विक आर्थिक व्यवस्था में श्रम के भूमण्डलीकरण के पक्ष में सशक्त तर्क होने के बावजूद भी श्रमिक संगठन इस कामगार आबादी के लिए सार्वजनिक और अनिवार्य काम के अधिकार की माँग करने में असफल रहा है। हमारी ट्रेड यूनियनें, जो राज्य, सरकार और प्रबंधन के वैचारिक दायरे में काम करती हैं, वर्तमान समय की इस माँग को समझने में विफल हैं, क्योंकि वह अपने संकुचित स्वार्थ-संबंधी विचारधारा से ऊपर नहीं उठ पा रहे। वैश्विक श्रम बाजार की स्थापना

तथा राजनीति में श्रमिकों का हस्तक्षेप तथा इसमें भारत जैसे विकासशील देशों के श्रमिकों की भूमिका पर गौर करने की जिम्मेदारी संगठनों को अपने कंधों पर लेनी होगी। श्रमिकों को विश्व बाजार की जरूरत जितनी है उससे कहीं अधिक जरूरत बाजार को श्रमिकों की है। इन दोनों ही खेमों के बीच निर्णायक की भूमिका निभाने वाले संगठन को आवश्यक है कि वह अपनी कूपमंडूकता को छोड़ व्यापक संभावनाओं की ओर अग्रसरित हो नहीं तो समय की दौड़ में इसका स्वरूप विनाशमुखी होगा जिसकी शुरूआत अंतिम दशक के अंत से ही दिखाई पड़ रही है।

सामाजिक प्राणी होने के नाते श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ अपना एक अलग ही रूप लेकर सामने आई हैं। श्रमिक अपने परिवेश के लोगों के साथ आपसी संबंध के सौहार्द से जुड़ता है। सहकारी संस्था से जुड, अखबारों के माध्यम से तथा शराब विरोधी अभियान कर वह विविध सामाजिक कार्यक्रमों में भी शामिल होता है। 'और पसीना बहता रहा', 'लहरों की बेटी', 'मुखड़ा क्या देखे' में श्रमिकों के सामाजिक पक्ष को उभारा गया है। श्रमिकों की निबटतम गरीबी ही उनकी भयानक आर्थिक स्थिति का द्योतक होता है। आर्थिक दूरावस्था के कारण जहाँ वह अपनी मौलिक आवश्यकताओं की आपूर्ति नहीं कर पाता वहीं दूसरी तरफ अपनी इच्छाओं का दमन करता है। अर्थाभाव के कारण उसमें मूल्यों का विघटन भी होता है। वैश्विक धरातल पर श्रमिक और राजनीति का संबंध विकासमान है। भारत जैसे विकासशील और श्रमिक बाहुल्य देश में आज भी श्रमिकों को किसी प्रकार का राजनैतिक सरोकार प्राप्त नहीं है। उसे केवल वोट देने की मशीन के रूप में ही याद किया जाता है। सरकार इनके नाम पर अनेक परियोजनाओं का निर्माण तो करती है, लेकिन वह इसके चुनावी रणनीतियों के अंग मात्र होते हैं। विडम्बना यह है कि अपने राजनीतिक महत्व और भूमिका से अनभिज्ञ श्रमिक पूँजीवादी शक्तियों से परिचालित राजनीति के सम्मुख स्वयं ही अपना वोट बेचता है। श्रमिक वर्ग धार्मिक भेदभाव का भी शिकार होता है। लेकिन इस के साथ ही वह धार्मिक समता का प्रयास भी करता है। भारतीय श्रमिक आंदोलन के दौर में

पूरे देश के श्रमिक अपने भेदभावों को भुलाकर एक ही स्वर में अपने अधिकारों के लिए लड़े थे। चयनित सभी उपन्यासों में श्रमिक जीवन की विविध परिस्थितियों का संदर्भगत प्रस्तुतीकरण हुआ है।

स्त्री श्रमिक, बाल-श्रमिक, दलित और आदिवासी श्रमिकों के साथ-साथ विस्थापित श्रमिकों का जीवन और उनकी समस्याएँ चयनित उपन्यासों में विशेष रूप से दिखाई देती हैं। अकुशल श्रमिक वर्ग में स्त्री-श्रमिकों का एक बड़ा हिस्सा अपनी भागीदारी को प्रस्तुत कर रहा है। अपने परिवार की आर्थिक विपन्नता ही स्त्रियों को मेहनत-मजदूरी करने के लिए बाध्य करती है। कार्यक्षेत्र में इन स्त्री-श्रमिकों का शारीरिक और मानसिक शोषण होता है। वे ठेकेदारों, बिचौलियों और अपने सहकर्मियों द्वारा यौन शोषण का शिकार होती हैं। इन्हें मर्दों वाले भीषण कार्य सौंप दिए जाते हैं लेकिन मजदूरी कम मिलती है। स्त्री-श्रमिकों को स्वास्थ्य संबंधी कोई अवकाश नहीं मिलता। स्त्री-श्रमिकों के जचकी संबंधी अवकाश, वेतन और प्रबंधन के व्यवहार की प्रस्तुती ‘आवां’ उपन्यास में हुई है। कार्यक्षेत्र के साथ ही उन्हें अपने व्यक्तिगत जीवन में भी पति और परिवार द्वारा शोषण का सामना करना पड़ता है। ‘पृथ्वी की पीड़ा’, ‘आसमान झुक रहा है’, ‘इदन्नमम’, ‘मुखड़ा क्या देखे’ उपन्यासों में इनके व्यक्तिगत संघर्ष को बाखूबी दिखाया गया है। वर्तमान समय में देह व्यवसाय कर रही वेश्याओं का श्रमिक रूप धारण कर लेना एक सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन है। ‘आवां’ उपन्यास में ‘जागो री’ संगठन के द्वारा इस प्रकार के प्रयासों को प्रस्तुत किया गया है। ‘और पसीना बहता रहा’ तथा ‘जुलूस वाला आदमी’ उपन्यासों में संगठनों में स्त्री-श्रमिकों की सक्रियता को दिखाया गया है।

शोध-कार्य के दौरान उपन्यासों के चयन के समय यह तथ्य सामने आया कि अंतिम दशक में बाल-श्रम जैसे सामाजिक अपराध को विषय बनाकर एक भी उपन्यास नहीं लिखा गया है। ‘इदन्नमम’, ‘पृथी की पीड़ा’ तथा ‘और पसीना बहता रहा’ उपन्यासों में न के बराबर एवं संदर्भगत रूप में ही बाल-श्रम को दिखाया गया है। दलितों का श्रमिक रूप पहले से ही विद्यमान है। उच्च वर्ग के यहाँ दास तथा

उसके बाद श्रमिक बन ही यह वर्ग अपना जीवन निर्वाह करता आया है। अस्तित्व के संकट में धीरे-धीरे आदिवासियों का श्रमिक बनना बीसवीं शताब्दी की त्रासद घटनाओं में से है। बहुराष्ट्रीय कपनियों का प्राकृतिक संपदाओं के प्रति लोभ तथा पूँजीवादी दृष्टिकोण इन आदिवासियों को उनके मूल निवास क्षेत्र से खदेड़ श्रमिक बनने पर विवश कर रहा है। सरकार की उदारवादी नीतियाँ आदिवासियों के संकट को और बढ़ावा दे रही हैं। भूमण्डलीकरण के दौर में भारत के श्रमिक वर्ग की अवस्था और भी खराब होती गई। विकास के नाम पर जो भी परिवर्तन आए वे प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से पूँजीपतियों के लिए ही थे। पूँजी के आगमन, शहरों की स्थापना, शिल्पकारों की बदहाली, पुश्तैनी जीविकाओं का उन्मूलन आदि परिघटनाओं को 'मुखड़ा क्या देखे', 'आसमान झुक रहा है', 'बीच में विनय' उपन्यासों में देखा जा सकता है।

भारत का श्रमिक-वर्ग अपने प्रारंभिक काल से ही विस्थापित होता र-ा ै। बंधुआ श्रमिक तथा गिरमिटिया श्रमिकों की प्रथा भी यहीं से शुरू होती है। अकुशल और असंगठित क्षेत्र के श्रमिक ही सबसे अधिक विस्थापित होते हैं। श्रमिकों का विस्थापित होना किसी क्षेत्र के प्रवसन व आकर्षण कारकों पर निर्भर करता है। आज जिस अनुपात में श्रमिक विस्थापित हो रहे हैं उसके अनुसार यह आवश्यक है कि उसे योजनाबद्ध रूप प्रदान किया जाए। श्रमिक वर्ग के विविध परिप्रेक्ष में सुधार ही भारत जैसे विकासशील देश को एक कर्मठ और सशक्त श्रम-शक्ति प्रदान कर पाएगा।

श्रमिकों के सांस्कृतिक धरोहर के साथ-साथ उनकी भाषा और मनोभाव, लोकोक्तियाँ-मुहावरे आदि विशिष्ट हैं। आर्थिक विपन्नता, विस्थापित जीवन तथा आधुनिकता के दौर में भी श्रमिक वर्ग अपने पर्व-त्यौहार, रहन-सहन, नृत्य संगीत, खानपान की शैली को जीवित रखने का भरपूर प्रयास करता है। श्रमिकों की भाषा उनके मनोभाव को प्रस्तुत करती है। उनके तनाव, अवसाद, मनःस्थिति का प्रस्तुतीकरण उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा के माध्यम से देखा जा सकता है। श्रमिकों के लिए लिखे गए गीतों की भाषा ऊर्जा और उत्साह को जगाने वाली होती है।

युगीन परिस्थितियों एवं परिवर्तनों को, चाहे वह समाज से जुड़ा हुआ हो या व्यक्ति तथा समूह से, उसका प्रस्तुतीकरण ही साहित्य का उत्तरदायित्व है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में औद्योगिक क्रांति अपनी चरम ऊँचाई को छू रही थी। इसके साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर अकुशल श्रमिकों के लिए खुले बाजार को भी प्रस्तुत कर रहा था। सरकार की उदारवादी नीतियों का प्रभुत्व भी इस दौर में बढ़ता ही गया। उदारवादी नीतियाँ सबके लिए उदार नहीं होतीं। अतः इससे देशी-विदेशी पूँजीपतियों को काफी लाभ मिला, लेकिन देश के मेहनतकश आवाम का भूमिहीन होना, उनके खेतों पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का वर्चस्व विस्तार तथा किसानों की आत्महत्या भी इसी दशक की घटनाएँ हैं। परिवर्तनों भरे इस दौर का साहित्य देश की इस 80 प्रतिशत जनता के प्रति आकर्षित नज़र नहीं आता। अंतिम दशक का साहित्य अधिक से अधिक विमर्शवादी और मुख्यधारा से जुड़ता गया है। इसमें दो राय नहीं हैं कि इस समय का साहित्य अनेक नवीन विषयों को भी उजागर करता है। स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक वर्ग इन सभी पर साहित्य ने नज़र दौड़ायी है, लेकिन सर्वहारा मजदूर वर्ग पर केवल कतिपय लेखकों ने ही लिखा और अगर लिखा भी तो इस विषय को पृष्ठभूमि के रूप में ही रखकर देखा गया है। वास्तविकता यह है कि श्रमिकों की पहचान एक वर्ग के रूप में होनी चाहिए। इस विशाल मेहनतकश वर्ग को स्त्री, दलित, आदिवासी या अल्पसंख्यक के खेमों में बाँट और अधिक असंगठित नहीं करना चाहिए। हर विमर्श में इस वर्ग की उपस्थिति रहने के बावजूद भी समाज के साथ-साथ साहित्य भी इस वर्ग को हाशिए की ओर धकेल र-ा -ै। अस्मिता का संकट और आर्थिक विपन्नता का व्यूह आज भी उसके चारों ओर वैसा ही है जैसा की प्रेमचंद के होरी के साथ था। सामाजिक व आर्थिक विकास क्रम में अपने श्रम को होम कर रहे इस वर्ग की स्थिति प्रगतिशीलता पर अनेक प्रश्न चिन्ह लगा रही है। समय की माँग यही है कि आधार-रूपी इस वर्ग के प्रति समाज व साहित्य जागरूक बने ताकि आने वाला कल संभावनाओं की पहल कर पाए।

* * *

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ सूची

1. त्रिवेदी, रज्जन, नदी फिर लौट आयी, हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली-110031, प्रथम संस्करण-1991
2. रमाकांत, जुलूस वाला आदमी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण-1993
3. अनत, अभिमन्यु, और पसीना बहता रहा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-1993
4. प्रकाश, स्वयं, बीच में विनय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
5. अनत, अभिमन्यु, लहरों की बेटी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण-1994
6. जगदीशचंद्र, नरककुंड में बाढ़, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, 1994
7. मैत्रेयी, पुष्पा, इदन्नमम, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-1994
8. बिस्मिल्ला, अब्दुल, मुखड़ा क्या देखे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-1996
9. भगवती, राकेश, धारा के बीच से, सर्जना प्रकाशन, नई दिल्ली-110064, प्रथम संस्करण-1993
10. त्रिपाठी, कमला कांत, बेदखल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-02, प्रथम संस्करण-1997
11. अग्रवाल, डॉ.प्रमोद कुमार, पृथी की पीड़ा, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद-211003, प्रथम संस्करण-1998
12. विष्ठ, हरिसुमन, आसमान झुक रहा है, श्री अल्मोडा बुक डिपो, अल्मोडा-263 001, प्रथम संस्करण-1998

13. मुद्गल, चित्रा, आवां, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली-02, प्रथम संस्करण-1999
14. जोशी, ज्योतिष, सोनबरसा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2000

सहायक ग्रंथ सूची

1. शर्मा, डॉ.माखनलाल, मार्क्सवादी काव्यशास्त्र की भूमिका, प्रेमशील प्रकाशन, दिल्ली-09
2. सक्सेना, डॉ.ओमवती, प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों में वर्ग संघर्ष, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बिकानेर-110052, प्रथम संस्करण-1986
3. शर्मा, डॉ.भक्तराम, मार्क्सवाद और हिंदी कविता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण-1980
4. त्रिपाठी, डॉ.सत्यदेव, हिंदी उपन्यास समकालीन विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर-208012, प्रथम संस्करण-2000
5. केसर, डॉ.कीर्ति, हिंदी साहित्यःइक्कसवीं सदी की चुनौतियाँ, नवराज प्रकाशन, दिल्ली-53, संस्करण-2002
6. त्रिपाठी, सत्यदेव, हिंदी उपन्यास समकालीन विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर-208012, प्रथम संस्करण-2000
7. भट्टाचार्य, सत्यदेव, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-110002
8. अमिन, शाहिद, ज्ञानेंद्र पांडेय, निम्नवर्गीय प्रसंग, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-1995
9. शर्मा, हरिदत्त, लेनिन भारत के संदर्भ में, आत्मराम एंड संस, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण-1970
10. देवी, महाश्वेता, निर्मल घोष, अनुवाद-आनंद स्वरूप वर्मा, भारत में बंधुआ मज़दूर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-02, प्रथम हिंदी संस्करण-1981
11. देवी, जी.पद्मा, साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में युवा पीढ़ी, मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद-500 195, प्रथम संस्करण-1991

12. सिंह, डॉ.रामवीर, नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष (आलोचना), धरती प्रकाशन, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण-1985
13. कुमार, डॉ.रविंद्र, पं.जवाहरलाल नेहरू और किसान वर्ग (1920-47), सारा पब्लिकेशन्स, मेरठ, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण-1998
14. रामगोपाल, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण-1986
15. यशपाल, मार्क्सवाद, विप्लव प्रकाशन, लखनऊ, पंचम संस्करण-1973
16. वाजपेयी, डॉ.पुरुषोत्तम, हिंदी कथा साहित्य पर सोवियत क्रांति का प्रभाव, पुस्तक संस्थान, कानपूर-12, संस्करण-1976
17. प्रसाद, डॉ.सुरेंद्र, हिंदी की प्रगतिवादी कविता, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद-06, संस्करण-1985
18. गुप्ता, रमणिका, स्त्री विमर्श (कलम और कुदाल के बहाने), शिलान्यास प्रकाशन, दिल्ली32, संस्करण-2007
19. शर्मा, राजकुमार, विचारधारा और साहित्य, राज पबिलशिंग हाऊस, दिल्ली-31
20. सिंह, योगेंद्र, भारत में सामाजिक परिवर्तन, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-16, संस्करण-1999
21. मोहन, डॉ.नरेंद्र, आधुनिक हिंदी उपन्यास की भूमिका, (संकट और समुत्थानपरकता), मैक मिलान प्रकाशन, दिल्ली-02, संस्करण-1925
22. कृष्णकांत, सुमन, इक्कीसवीं सदी की ओर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-110002, संस्करण-2001
23. नागर, सविता, भारतीय समाज में कार्यशील महिलाएँ, क्लासिक पब्लिकेशन्स, जयपुर, संस्करण-1998
24. शर्मा, रामविलास, मार्क्स और पिछड़े हुए समाज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-32, द्वितीय संस्करण-1986
25. मोहन, अरविंद, प्रवासी मज़दूरों की पीड़ा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-02, संस्करण-1998

26. कौल, नरेंद्र नाथ, भातर और अंतर्राष्ट्रीय श्रम संस्था, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1956

27. वर्मा, जनेश्वर, हिंदी काव्य में मार्क्सवादी चेतना, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर-21, संस्करण-1974

28. कुशवाहा, आनंद, भारत में किसान संघर्ष (1956-1975) क्लाउन्स वागेनबारण प्रकाशन, बर्लिन-30, प्रथम हिंदी संस्करण-1980

29. ऐंगेल्स, मार्क्स, कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली-110005, संस्करण-2008

30. मिश्र, शिवकुमार, मार्क्सवादी साहित्य चिंतन (इतिहास और सिद्धांत), मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ आकार, इलहाबाद-3, संस्करण-1973

31. श्रीवास्तव, हेमलता, भारतीय समाज की संरचना, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-1993

32. सिंहा, सच्चिदानंद, 'पूँजी' का अंतिम अध्याय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-02, प्रथम संस्करण-2008

33. जलील, डॉ.वी.के.अब्दुल, आधुनिक हिंदी साहित्य विविध आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-02

34. दुबे, अभय कुमार, भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2003

35. कुम्भर, बी.आर., रमाकांत अग्रवाल, भारत में सहकारिता आंदोलन, संस्करण 1956

36. सिंह, कुँवरपाल, मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र और हिंदी कथा साहित्य, धरती प्रकाशन, बीकानेर-01, संस्करण-1984

37. सिंह, आदित्यनारायण, (अनुवादक), पूँजीवादी समाज में राजसत्ता, ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1981

38. अग्रवाल, अमरनाथ, अर्थशास्त्र कोश, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण-1977

39. लॉरेन्स, डॉ.जास्मिन, महिला श्रमिक (सामाजिक स्थिति एवं समस्याएँ), आदित्य पब्लिशर्स, मध्य प्रदेश-470002, संस्करण-1999

40. सिंह, डॉ.श्रीमती प्रेम, डॉ.रिम्पीखिल्लन, समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2009

41. राय, गोपाल, उपन्यास की संरचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2006

42. ज़ेवेलेव, आलेक्सान्द्र, समाजवाद तथा पूँजीवाद के अंतर्गत राष्ट्रीय प्रश्न, प्रगति प्रकाशन, मास्को, संस्करण-1978

43. □ौबे, शिवानी कंकर, भारत में उपनिवेशवाद, स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रवाद, ग्रंथशिल्पि प्रकाशन, दिल्ली-92, संस्करण-2000

44. नारायण, प्रकाश, भारत में सामाजिक समस्याएँ, पोईन्टर प्रकाशन, जयपुर, संस्करण-2000

45. प्रसाद, बदरी, प्रगतिवादी हिंदी उपन्यास, ओम प्रकाशन, दिल्ली-33, संस्करण-1978

46. सिंह, श्रीचंद्र, आधुनिक हिंदी उपन्यास साहित्य में चित्रित समस्याएँ (औद्योगीकरण के संदर्भ में), राष्ट्रीय साहित्य सदन, लखनऊ-226003, संस्करण-1985

47. पाव्लोव, वी., भारत का पूँजीवाद में संक्रमण-ऐतिहासिक पूर्वधारा, प्रगति प्रकाशन, मस्को, प्रथम हिंदी अनुदित संस्करण-1983

48. शर्मा, रामविलास, आज की दुनिया और वे दिन, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली-110052, संस्करण-1992

49. राय, गोपाल, हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-110032, संस्करण-2005

50. मधुरेश, हिंदी उपन्यास का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2008

51. तिवारी, डॉ.रामचंद्र, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणासी, संस्करण-2008

52. वास्तायन, सच्चिदानंद, आधुनिक हिंदी-साहित्य, राजपाल एंड सन्स प्रा.लिमिटेड, दिल्ली, संस्करण-1976

53. शर्मा, क्षमा, औरतें और आवाज़ें, आलेख प्रकाशन, दिल्ली-110032, संस्करण-2005

54. शर्मा, डॉ.ज्ञानचंद, आधुनिक हिंदी कहानी में वर्णित सामाजिक यथार्थ, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्करण-1996

55. शर्मा, रामकुमार, विचारधारा और साहित्य, राधा पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, संस्करण-1979

56. सोभा, डॉ.सोबती चंद्र, समाज और संस्कृति, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, संस्करण-1976

57. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद-संस्करण-1956

58. जोशी, रामशरण, आदमी, बैल और सपने, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2008

59. झा, प्रफूल्ल रंजन, बदनलाल, दीपशिखा, भारतीय मानवशास्त्र, पीयूष बुक पब्लिकेशंस, दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2003

60. मिश्र, डॉ.रामदरश, हिंदी उपन्यास के सौ वर्ष, गिरिराज प्रकाशन, गुजरात, प्रथम संस्करण-1984

61. राय, डॉ.सुधीर कुमार, ग्रामीण सामाजिक संरचना और परिवर्तन, नीलकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2006

62. श्रीवास्तव, ओंकारनाथ, हिंदी साहित्यःपरिवर्तन के सौ वर्ष

63. नारायण, बद्री, साहित्य और सामाजिक परिवर्तन, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1997

64. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, द्वितीय संस्करण-1998

65. दीक्षित, रमेशचंद्र, शह, डॉ.गिरिराज, मानवाधिकारःदशा और दिशा, हिंदी साहित्य निकेतन प्रकाशन, संस्करण-2005

66. अग्रवाल, चंद्र मोहन-नारीःअंददर्पण व समाज, इंडियन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, संस्करण-2006

67. प्रसाद डॉ.सुरेंद्र, हिंदी की प्रगतिवादी कविता, चित्रलेखा प्रकाशन, संस्करण-1985

68. मार्क्स, कार्ल, पूँजी-भाग-1, अनुवादक-ओमप्रकाश संगल, प्रगति प्रकाशन, मास्को, दूसरा संस्करण-1975

69. सिंह, कुँवरपाल, साहित्य और हमारा समय, एकांत पब्लिकेशन्स, प्र.सं. 2007

70. मार्क्सवाद और हिंदी उपन्यास, डॉ.एन.रविंद्रनाथ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1979

71. परमार, दुर्गा, श्रमजीवी महिलाएँ और समकालीन पारिवारिक संगठन, साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, संस्करण-2000

पत्र-पत्रिकाएँ

1. हंस, जुलाई-1947
2. हंस, जनवरी-फरवरी, 1947
3. आलोचना, जनवरी-मार्च, 1976
4. आलोचना, जुलाई-सितंबर, 1977
5. आलोचना, जुलाई-सितंबर, 1988
6. हंस, जुलाई, 1989
7. हंस, अगस्त, 1994
8. हंस, मार्च, 1995
9. आजकल, मई-जून, 1995
10. मधुमती, जून, 2000
11. हंस, जनवरी-फरवरी, 2000
12. आलोचना-जुलाई-सितंबर 2001
13. आलोचना, अप्रैल-जून 2002
14. हंस-अगस्त 2004
15. मधुमती, जनवरी, 2005
16. हंस (विशेषांक), अगस्त, 2006
17. आजकल, नवंबर-दिसंबर, 2007
18. हंस, फरवरी, 2011

शब्दकोश

1. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत-हिंदी कोश, मोतिलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली-07, संस्करण-1996
2. Monier, Monier Williams, संस्कृत अंग्रेज़ी कोश, मोतीलाल, बनारसीदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-28, संस्करण-1972
3. वर्मा, डॉ.धीरेंद्र, हिंदी साहित्य कोश-भाग-2, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी-1, तृतीय संस्करण-1985
4. पाठक, पंडित रामचंद्र, भार्गव आदर्श हि.कोश, भार्गव बुक डिपो, वारणासी, संस्करण-1978
5. वर्मा, रामचंद्र, मानक हिंदी कोश (पाँचवा खंड), हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण-1966
6. बाहरी, हरदेव, राजपाल अंग्रेज़ी-हिंदी शब्दकोश, राजपाल एंड संस, दिल्ली, ग्यारहवां संस्करण-1996
7. प्रकाश, सत्य, बलभद्र प्रकाश, मानक अंग्रेज़ी-हिंदी कोश, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण-1983
8. ब्र□मोहन, डॉ.बद्रीनाथ कपूर, मीनाक्षी हिंदी-अंग्रेज़ी कोश, मीनाक्षी प्रकाशन, मीरट-250001, प्रथम संस्करण-1980
9. तिवारी, भोलानाथ, हिंदी पर्यायवाची कोश, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-6, संस्करण-1994
10. वर्मा, फूलदेव सहाय, हिंदी विश्वकोश (Vol-II), नागरी प्रचारणी सभा, वारणासी, संस्करण-1969
11. राजपाल हिंदी शब्दकोश, डॉ.हरदेव बाहरी
12. मानक हिंदी प्रयोग कोश, डॉ.हरदेव बाहरी, विद्या प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002
13. बृहत् अंग्रेज़ी हिंदी कोश, सं.हरदेव बाहरी, खंड-1, जनमंडल लिमिटेड, संस्करण-1969
14. वर्मा, डॉ.रामकुमार, मानक हिंदी कोश, चतुर्थ खंड, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण-1966

अंग्रेज़ी ग्रंथ

1. Karnik, V.B., Indian Labour:Problems and Prospects, Popular Prakashan, Bombay-400034, Edition-1972
2. Karnik, V.B., Indian Trade Unions (A Survey), Popular Prakashan, Bombay-400034, 3rd Edition-1978
3. McMiller, Glenn, Problems of Labour, The McMillar Company, New York, Edition-1951
4. Brock, Ger.Vanden, Regional Development and the International Divison of Labour, Cocept Publishing Company, New Delhi-110054, Edition-1989
5. Chokroborthy, Dipesh, Rethinking Working Class History (Bengal 1890-1940), Oxford University Press, Delhi-110001, Edition-1989
6. Gidem, Anthony, Capitalism and Modern Social Theory (An analysis of the writtings of Marx, Durkheim and Max Weber), Cambridge Unviersity Press, Edition-1971
7. Simeon, Dilip, The Politics of Labour under late colonialism (Workers, Unions and the State), National Publishers and Distributors, New Delhi-110002, 1st Edition-1995
8. Ramaswamy, E.A., The Worker Consciousness and Trade Union Response, Oxford University Press, Delhi-110001, Edition- 1988
9. Crouch, Harlod, Indian working class, Sachin Publications, Ajmen, Edition-1979
10. Sen, Sukomal, Working class of India, History of Emergence and Movement 1830-1990 (with an overview upto 1995), K.P.Bagchi & Company, culcutta-700012, 2nd Edition-1997
11. Sen, Sunil Ku., Working class movement in India, Oxford University Press, Delhi-110020, Edition-1994

12. Central Publication Branch, Govt. of India, Report of the Royal Commission on Labour in India, Agricole Publising Academy, Culcutta, Edition-1931

13. Chinna, S.S., Women Labour, Problem and policy implications, Regal publications, New Delhi-110027, 1st Edition-2009

14. Rao, P.Arjun, Women Workers in Unorgainsed section, N.Mani Publications, Hyderabad-500008, 1st edition-2006

15. Balakrishna, A., Rural Landless women labourers, Prolems and prospects, Kalpaz publication, Delhi-110052, 1st edition-2005

16. Sen, Raj Kumar and Asis Dasgupta, Problems of Child Labour in India, Deep & Deep publications Pvt. Ltd., New Delhi-110027, Edition-2003

17. Savitri, Arpurthumurthy, Women worker and Discrimination, Ashish Publishing House, New Delhi, Edition-1990

18. Banarjee, Nirmala, Women workers in the unorganized section (the Calcutta Experience), Sangam Books, Hyderabad-500 001, Edition- 1985

19. Tripathy, S.N., Soudamini Das, Informal Women Labour in India, Discovery Publising House, New Delhi, Edition-1991

20. Dutt, R.Palme, India Today, Manisha Granthalaya, Calcutta-700001, 2nd Edition-1970

21. Srivastave, Narendra Nath, Lenin:Revolution and peace, Vishal Publications, Kurukshetra-132119, Edition-1984

22. Banargee, Pratap Kumar, Basic Labour Problems, Workers Publication House, Calcutta, Edition-1958

23. Das, Rajani Kanta, Factory Labour in India, W.de Gruyter & Co., Edition-1923

24. Das, Rajani Kanta, The Labour Movement in India, W.de Gruyeter & Co, Edition-1934
25. Chakroborty, Sudip, Child Labour in Rural Context:Concern, Causes and use, Mittal Publication, New Delhi, Edition-2006
26. Kulshrestha, J.C., Child Labour in India, Ashish Publications, New Delhi, Edition-1978
27. Desai, A.R., Labour Movements in India, Pragati Prakashan, New Delhi, Edition-2006
28. Neera, Burra, Born to work : Child labour in India, Delhi Oxford University Press, Delhi, Edition-1995

शब्द कोश (अंग्रेज़ी)

1. Bannock, G., R.E.Baxter & R.Rees, The Penguine Dictionary of Economics, Penguine Books, Autralion, Edition-1972
2. Tylor, Philip A.S., Routledge & Kegan Paul, A new dictionary of economics, Boston, USA, Edition-1966
3. Bargalla, Edgen F., Encyclopedia of Sociology (Vol-III), New York-19, 2nd Edition-2000
4. Pruthi, Raj, Belarani Sharma, Encylopedia of Women Society and culture, Anmol Publications, New Delhi-110002, 1st Edition-1994
5. Shukla, C.K., S.Ali, Encyclopedia of Child Labour (Priorities for 21st Century), Swanup & Sons, New Delhi-02, Edition-1998
6. Darity, William A., International Encyclopedia of Social Sciences, McMillen Reference, USA, 2nd Edition-1991

Kethy, Michel, Encyclopedia of Aesthetics (Vol-III), Oxford University Press, New York, Edition-1998

* * *